आद्य–वक्तव्य

सुप्रसिद्ध और प्रकाड महाविद्वान् दिगम्बर जैनाचार्यों में भदन्त गुणभद्राचार्य का नाम अन्यतम है। आपके द्वारा निर्मित अनेक रचनाओं में आत्मानुशासन भी जैन साहित्य मे बहुत ही ऊंचा स्थान रखता है। सासारिक प्राणियों को ससार बधन से छुड़ाने के लिए जो इस रचना में उपदेश को शैली है वह बहुत ही आकर्षक और अनुपम है।

आत्मानुशासन ग्रथ का हिन्दी अनुवाद जयपुर निवासी स्वनामधन्य स्वर्गीय पडित टोडरमलजी महोदय और पडित वशीधरजी शास्त्री शोलापुर ने किया है। प० वशीधरजी शास्त्री कृत अनुवाद मूलग्रन्थ सहित छप चुका है, परन्तु प० टोडरमलजी कृत अनुवाद प्रकाशित न होने से उसकी ओर धार्मिक जनता की विशेष अभिरुचि थी और प्रबल इच्छा थी कि वह अनुवाद भी प्रकाशित हो।

श्री १०८ श्री दिगम्बर जैन मुनिराज श्री मल्लिसागर जी महाराज का इस ओर ध्यान आकृष्ट किया गया और आपके उपदेश से विविध लोगों द्वारा ७३५) रुपया एकत्रित होकर श्री० बाबू चादमलजी, नेमीचदजी बडजात्या (मालिक फर्म भवरलाल चादमल कलकत्ता) के उद्योग और सहयोग से प्राप्त हुआ, जिसके लिए महाराज श्री, अर्थदाता एव उक्त दोनों बंधुओं का समिति

आभार मानती है। इसही रकम से ग्रंथमाला के बीसवें पुष्प के रूप में इस परमोपयोगी साहित्य के प्रकाशन का साहस हुआ है। मैंने इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए श्री इन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार सम्पादक "अहिंसा" जयपुर को लिखा और आपने पर्याप्त अस्वस्थ होते हुए भी संपादन कार्य को स्वीकारता दी जिसके लिए ग्रंथमाला समिति आपका आभार मानती है।

इस ग्रंथ की प्रेस कापी होजाने पर भी शास्त्रीजी महोदय की यह इच्छा रही कि यदि स्व० पंडित टोडरमलजी साहब के हाथ की लिखी प्रति से इस प्रेस कापी का संशोधन होजाय तो बहुत उत्तम रहे फलतः श्री वीर प्रेस के मालिक श्री भंवरलालजी न्यायतीर्थ के उद्योग से उसका प्रति प्राप्त कीगई और श्रीन्यायतीर्थजी ने ही मिलान कर जहां जहां कमी वेशी थी, वह दूर की। इसके लिए श्री भंवरलालजी न्यायतीर्थ के भी समिति के सदस्य आभारी हैं।

आशा है मुमुक्षु धर्मप्रेमी महानुभाव इस ग्रंथ के स्वाध्याय से आत्मलाभ करेंगे।

आषाढ शु० २ विक्रम संवत् २०१२	निवेदक— तेजपाल काला मंत्री श्री १०८ श्री मुनि मल्लिसागर दि० जैन ग्रंथमाला समिति नांदगांव (नासिक)

॥ श्री परमात्मने नम ॥

आचार्यवर्य श्रीगुणभद्रस्वामिप्रणीत

आत्मानुशासन

स्वर्गीय पं० टोडरमलजी रचित

हिंदी वचनिका सहित

हिन्दीकारका मंगलाचरण

दोहा–श्रीजिनशासन गुरु नमौं, नाना विध सुखकार।
आतमहित उपदेशतैं, करौं मंगलाचार॥ १॥

॥ सवैया ॥

सोहै जिनशासनमें आत्मानुशासन श्रुत
जाकी दुःखहारी सुखकारी सांची शासना,
जाको गुणभद्र कर्त्ता गुणभद्र जाको जानि
भद्र गुणधारी भव्य करत उपासना।
ऐसे सार शास्त्रको प्रकाशे, अर्थ जीवनिको
बनै उपकार नाशै मिथ्या भ्रम वासना,
तातैं देश भाषा करि अर्थ को प्रकाश करौं
जातैं मन्दबुद्धिनके होत अर्थ भासना॥ २॥

अथ श्री गुणभद्र नामा मुनि अपना धर्मभाई लोकसेन
मुनि विषयविमोहित भया ताका संबोधनका मिस करि सर्वजीव
निकों उपकारी जो मोक्ष मार्ग ताका उपदेश देने का अभिलाषी
होत संता निर्विघ्न शास्त्र की संपूर्णता आदि अनेक फलकी
वांछा अपने इष्ट देव को नमस्कार करता संता प्रथम ही लक्ष्मी
इत्यादि सूत्र कहे हैं—

आर्या छंद

लक्ष्मीनिवासनिलयं विलीनविलयं निधाय हृदि वीरम् ।
आत्मानुशासनमहं वक्ष्ये मोक्षाय भव्यानाम् ॥१॥

अर्थ—मैं जु हौं शास्त्र कर्ता गुणभद्र सो वीर कहिये वर्द्धमान
तीर्थंकर देव अथवा कर्म शत्रु नाशने कों सुभट वा विशिष्ट कहिये
लक्ष्मी ताकौं "राति" कहिये महै ऐसा सर्व अरहंतादिक तिनि
अपना हृदय विषैं अवधारण करि आत्मा को हित रूप शिक्षा का
देन हारा ऐसा जु आत्मानुशासन नामा शास्त्र ताहि कहूंगा ।

ऐसे अपने इष्टदेव का ध्यान रूप मंगलाचरण करि शास्त्र
करने की प्रतिज्ञा करी । कैसा है वीर, आत्म स्वभाव रूप व
अतिशय रूप जो लक्ष्मी ताके निवास करने का स्थान है
मंदिर है । बहुरि कैसा है विलीन कहिये विनष्ट भये
हैं विलय कहिये पाप स्वभाव ताका नाश जाके, ऐसा है
अविनाशी स्वरूप को प्राप्त भया है । ऐसे इनि विशेषणनि
करि अपना इष्टदेव का वीर ऐसा नाम सार्थक दिखाया ।
बहुरि ताका सर्वोत्कृष्टपना प्रकट किया । बहुरि जो मैं

शास्त्र कहौगा सो भव्य जीवनि कै मोक्ष होने के अर्थि कहौंगा, अन्य किछू मान लोभादिक का प्रयोजन नाहीं है। याहीं तैं हित अभिलाषा जीवनि को उपादेय है। आगैं शास्त्र का अर्थ विषैं शिष्यनिका भय कौं दूरि करि जैसी प्रवृत्ति पाइए है सो ही आग [illegible]या विषै है, ताका भाव कौं दिखावता "दु खात्" इत्यादि सूत्र कहै हैं।

आर्या छन्द

दुःखाद्बिभेषि नितरामभिवाञ्छसि सुखमतोऽहमप्यात्मन्।
दुःखापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुमतमेव ॥ २ ॥

अर्थ—हे आत्मा! तू अतिशय करि दु खतैं डरै है। अर सुख को सर्व प्रकार चाहै है। यातैं मैं भी दु ख का हरन हारा, सुखका करन हारा ऐसा तेरा वाञ्छित अर्थ है तिस ही कूं उपदेशू हूॅ।

भावार्थ—काहू के ऐसा भय होगा कि श्री गुरु सुख कौं छुडाय मोकू कष्ट साधन बतावेंगे। बहुरि इस भय तैं शास्त्र विषैं अनादर करै ताकौं कहै है, ऐसा भय मति करै। दु ख दूर करने का, सुख पावने का तेरा अभिप्राय है तिस ही प्रयोजन लीए हम तोकौं साचा उपाय उपदेशैं हैं।

आगे कहै हैं सो उपदेशरूप वचन यद्यपि कदाचित् तोकौ तत्काल कडवा भी लागै तो तू तिसतैं डरै मति, ऐसा उपदेश का सूत्र कहै है।

आर्या

यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकटु किंचित्।
त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात् ॥ ३ ॥

अर्थ—यद्यपि इस शास्त्र विषैं काल उपदेश किछू तत्काल कडवा लागै तो तू तिस तैं डरै मति। यह उपदेश कैसा है, फल-काल विषैं मीठा है। जैसें रोगी सम कडवा औषध तैं नाहीं डरै।

भावार्थ—जैसे स्याना रोगी यद्यपि ग्रहण काल विषैं कोई औषध किछू कडवा भी लागै तौभी तिसतैं सुख होने रूप मीठा फल होता जानि डरै नाहीं ताकौं आदर तैं ग्रहण करै है। तैसैं तू स्याना संसारी है सो यद्यपि ग्रहण काल विषैं कोई इस शास्त्र का उपदेश किछू असुहावना भी लागै तौ भी तिसतैं सुख होने रूप मीठाफल होता जानि तिसतैं डरै मति ताकौं आदर तैं ग्रहण करना योग्य है।

आगैं कोई तर्क करै कि उपदेश दाता तो बहुत हैं तातैं तुम्हारा निष्फल श्रम करन करि कहा साध्य है ऐसैं पूछैं उत्तर कहै हैं।

आर्या

जना घनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिता ।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनुष्य तो खोटा उपदेशादि रूप वचन कहनहारे अर मेघ खोटा गर्जन करनहारे बहुरि मनुष्य तो निरर्थक महंतता करि उद्धत भए अर मेघ निरर्थक पाइबा रूप उठे ऐसे तो मनुष्य वा मेघ सुलभ हैं। बहुरि मनुष्य तो अंतरंग धर्म बुद्धि करि भीजे अर मेघ अंतरंग जल करि आले बहुरि मनुष्य तो संसार दुःख तैं जीवनि का उद्धार करन की इच्छा कौं धारैं अर मेघ अग्न्यादिक

उपजावनैं तैं लोक का उद्धार करने का कारणपणा को धारे, ऐसे मनुष्य वा मेघ दुर्लभ हैं।

भावार्थ—उपदेश दाता बहुत हैं परन्तु, हम जैसे धर्म बुद्धि तैं जीवनि का उद्धार करने कूं उपदेश देवैंगे तैसें उपदेश देनहारे थोरे हैं। तातैं हमारा उद्यम निरर्थक नाहीं है।

आगे ऐसे हैं तो कैसे गुणनि करि संयुक्त उपदेश दाता होय है, ऐसा प्रश्न होत संतैं "प्राज्ञ" इत्यादि द्वाय श्लोक कहै हैं।

शार्दूल विक्रीडित छंद।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः॥५॥

अर्थ—ऐसा गणी सभानायक होय सो धर्म कथा कों कहै। कैसा ? बुद्धिवान होइ, जातैं बुद्धिहीन का वक्तापणा बनै नाहीं। बहुरि पाया है समस्त शास्त्रनि का रहस्य जिहि ऐसा होय, जातैं अनेक अग जानें विना यथार्थ अर्थ भासै नाही। बहुरि प्रगट है लोक व्यवहार जाकै, ऐसा होइ, जातैं लोक रीति जानें विना लोक विरुद्ध हो है। बहुरि प्रकर्षपनैं अस्त भई है आशा जाकै ऐसा होइ, जातैं आशावाला रंजायमान मन किया चाहै, यथार्थ अर्थ प्ररूपै नाही। बहुरि कान्ति करि उत्कृष्ट होइ, जातैं शोभायमान न भए महतपनौं शोभै नाहीं। बहुरि उपशम परिणाम युक्त होइ,

जातैं तीव्र कषायी सर्व का अनिष्ट निंदा का स्थान हो है। बहुरि प्रश्न कोऊ पहलें ही ऐसा है उत्तर जानें ऐसा होइ जातैं आप ही प्रश्न उत्तर करि समाधान करै तो श्रोतानि के उपदेश की दृढता होइ बहुरि प्रचुर प्रश्ननिका सहनहारा होइ; जातैं प्रश्न किये खिन्न होइ तौ श्रोता प्रश्न न करि सकै तब तिनि का संदेह कैसे दूरि होइ। बहुरि प्रभु होइ जातैं जाकौ आपतैं ऊँचा मानै ताही का कह्या मानिए है। बहुरि औरनिके मन का हरनहारा होइ, जातैं जो मनु हारना न गै ताकी सीख कैसे मानै। बहुरि गुणनि का निधान होइ; जातैं गुण बिना नायकपनौं शोभै नाहीं। बहुरि स्पष्ट अर मीठे जाके उपदेश रूप वचन होइ; जातैं प्रगट वचन बिना समझै नाहीं, मीठा बोल बिना रुचि न होइ। ऐसा गणी होइ सो औरनि की निंदा वा औरनि करि निंद्य न होइ, ऐसी रीति करि धर्म कथा को कहै।

भावार्थ—आप विषैं इतनें गुण होइ तब शास्त्र कथन का अधिकारी होना योग्य है।

हरिणी छंद।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने,
परिणतिरुरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा,
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ॥६॥

अर्थ—जिस विषैं ऐसे गुण होइ, संपूर्ण संदेह रहित तो शास्त्र ज्ञान होइ। बहुरि शुद्ध पापरहित यथा योग्य मन वचन काय

की प्रवृत्ति होइ। बहुरि औरनि का संबोधन विषै परिणाम होइ। बहुरि जिन मार्गका प्रवर्तावने की भली विधि विषैं बडा उद्यम होय। बहुरि ज्ञानीनि करि कीन्ही हुई नमन क्रिया होइ वा अधिक ज्ञानीनिका विनय करि नमन होइ। बहुरि उद्धतपना करि रहित होइ। बहुरि लोक रीति का ज्ञातापना होय। बहुरि कोमल-पना होय। बहुरि वाञ्छारहितपना होइ। ऐसे ये गुण होइ। बहुरि और भी ऐसैं ही यतीश्वर सम्बन्धी गुण जा विषैं होइ सो सत्पुरुषनि का उपदेशदाता गुरु होहु।

भावार्थ—पूर्वोक्त गुण सहित गुरु होइ सो सतपुरुषनि का भला करै, तातैं हमारा भी यहु आशीर्वाद है जो ऐसा ही उपदेश दाता गुरु होहु। जाकरि जीवनि का बुरा होइ सो उपदेश दाता गुरु काहू के मति होहु।

आगैं ऐसा उपदेशक होइ तो शिष्य कैसा हो है, ऐसैं पूछैं उत्तर कहै हैं —

शार्दूल विक्रीडित छन्द

व्यः किं कुशलं ममेति विमृशन् दुःखाद्भृशं भीतिमान्।
ोख्यैषी श्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम्।
र्मं शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाभ्यां स्थितं
गृह्णन् धर्मकथा श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः ॥७॥

अर्थ—जो ऐसा शिष्य है सो धर्म कथा का सुनने विषैं अधि-कारी किया है। कैसा ? प्रथम तो भव्य होइ, जातैं जाका भवितव्य भला होने का न होइ तो सुनना कैसे कार्यकारी होय ? बहुरि

मेरा कल्याण कैसे होइ है ऐसा विचारता होइ तातैं आप अपना भला बुरा होने का विचार नाहीं तो काहे का शास्त्र सुनैं। बहुरि दुःख तैं अतिशय करि डरता होइ, जातैं जाके नरकादिक का भय नाहीं सो पाप छोड़न का शास्त्र काहे का सुनैं। बहुरि सुख का अभिलाषी होय जातैं आगामी सुख पाइए तो धर्म साधन का शास्त्र सुनै। बहुरि श्रवण आदि बुद्धि का विभव जाके पाइए ऐसा होइ तहां सुनने की इच्छा का नाम शुश्रूषा है। सुनने का नाम श्रवण है। मन करि जानने का नाम ग्रहण है। न भूलने का नाम धारणा है। विशेष विचार करने का नाम विज्ञान है। प्रश्नोत्तर करि निर्णय करना ताका नाम ऊहापोह है। तत्त्व ज्ञान के अभिप्राय का नाम तत्त्वाभिनिवेश है। ऐसे ए बुद्धि के गुण हैं सो जाके पाइए है, जातैं इनि बिना शिष्यपना बनैं नाहीं। बहुरि सुखकारी दया गुणमई अनुमान आगम करि सिद्ध भया ऐसा जो धर्म ताकौं सुनि करि विचार करि ग्रहण करता होइ जातैं ऐसा ही धर्म, ऐसै ही शिष्य के कार्यकारी हो है। बहुरि नष्ट भया है खोटा हठ जाके ऐसा होइ जातैं हठ करि आपाधापी होइ ताकौं सीख लागै नाहीं।

भावार्थ—ऐसा गुण सहित होइ सोई धर्म कथा के सुनने का अधिकारी होइ वाही का भला होइ। इनि गुणनि बिना धर्म कथा का सुनना कार्यकारी न हो है।

आगैं कहै हैं-ऐसा शिष्य है सो गुरु उपदेश तैं सुख का अर्थी पना करि धर्म उपार्जन ही के अर्थि प्रवर्तौ जातैं ऐसा न्याय है।

॥ आर्या छन्द ॥

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम् ।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पाप तैं दुःख हो है। धर्म तैं सुख हो है। ऐसैं यहु वचन सर्व जननि विषैं भली प्रकार प्रसिद्ध है। सर्व ही ऐसैं मानै हैं, वा कहै हैं। तातैं सुख का अर्थी है जाकौ सुख चाहिये सो पाप को छोडि सदाकाल धर्म कू आचरो।

भावार्थ—पाप का फल दुःख अर धर्म का फल सुख ऐसे हम ही नाहीं कहैं हैं, सर्व ही कहैं हैं। तातैं जो सुख चाहिये है तो पाप को छोडि धर्म कार्य करो।

आगे कहै हैं—विशेष सुख की प्राप्ति का अर्थी हुवा धर्म को अंगीकार करता सर्व ही जीव हैं तिहितैं विचार करि कोई आप्त जो यथार्थ उपदेशदाता सो अपना आश्रय करना, जातैं सुखकी प्राप्ति का मूल कारण आप्त है, सोई कहै है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

सर्वःप्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात्
सद्वृत्तात्स च तच्च बोधनियतं सोप्यागमात् स श्रुतेः।
सा चाप्तात्स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेप्यत-
स्तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तु श्रियै ।९॥

अर्थ—सर्व जीव भला सुख की प्राप्ति को शीघ्र वाछै हैं। सो यह वांछा प्रत्यक्ष भासै है। बहुरि सुख की प्राप्ति सर्व कर्म के

नाश हैं हो है जातैं सुख का रोकनहारा कोई कर्म है ताका नाश भए बिना सुख कैसैं होइ। बहुरि सो कर्म का क्षय सम्यक्चारित्र तैं हो है। जातैं बुरा आचरण तैं निपज्या कर्म सो भला आचरण बिना कैसे नष्ट होय। बहुरि सो सम्यक्चारित्र ज्ञान तैं निश्चित है। जातैं ज्ञान बिना बुरा भला आचरण का निश्चय कैसे होइ। बहुरि सो ज्ञान आगम तैं हो है। जातैं आगम बिना बुरा भला का ज्ञान होता नाहीं। बहुरि आगम है सो श्रुति जो अर्थ प्रकाशक मूल उपदेश तिस बिना होता नाहीं। जातैं आगम रचना कोई अनुसार तैं हो है। बहुरि श्रुति है सो आप्त जो यथार्थ उपदेश दाता तिसतैं हो है। जातैं उपदेश दाता बिना उपदेश कैसे होइ। बहुरि सो आप्त सर्व दोष रहित है। जातैं दोष सहित आप्त होता नाहीं। बहुरि ते दोष रागादि हैं। जातैं राग द्वेष काम क्रोध क्षुधा निद्रा आदि होतैं यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं। तातैं एही आप्त पना के घातक दोष हैं। ऐसैं अनुक्रम कह्या। जातैं सत्पुरुष हैं ते युक्ति करि भलैं विचारि सर्व सुख का दाता जो आप्त ताकौं सुख रूप लक्ष्मी के अर्थि आश्रय करौ।

भावार्थ—जाकौं सुख चाहिये सो पहलैं आप्त का निश्चय करि ताका उपदेश्या मार्ग कौं अंगीकार करे।

आगैं तिस आप्त की सिद्धि होत संतैं तिस भगवान आप्त करि सत्पुरुषनि कौ उपाय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारि आराधना रूप दिखाया है। तहां सम्यग्दर्शन आराधना पहली ताकौं विशेषता सहित सूत्र कहै है।

शार्दूल विक्रीडित छन्द ।

श्रद्धानं द्विविधं त्रिधा दशविधं मौढ्याद्यपोढं सदा,
संवेगादिविवर्धितं भवहरं त्र्यज्ञानशुद्धिप्रदम् ।
निश्चिन्वन् नवसप्ततत्त्वमचलप्रासादमारोहतां,
सोपानं प्रथमं विनेयविदुषामाद्येयमाराधना ॥१०॥

अर्थ—श्रद्धान जो सम्यग्दर्शन, विपरीत अभिप्राय रहित आत्मा का स्वरूप सो दोय प्रकार है । उपदेशादि वाह्य निमित्त विना होइ सो निसर्गज है । अर उपदेशादि वाह्य निमित्त तैं होइ सो अधिगमज है । अथवा सो श्रद्धान तीन प्रकार है । दर्शन मोह का उपशम तैं होइ सो औपशमिक है, क्षयतैं होय सो क्षायिक है । क्षयोपशम तैं होय सो क्षायोपशमिक है । अथवा सो श्रद्धान दश प्रकार है । आज्ञा सम्यक्त्वादि इहा ही दश भेद कहेंगे । बहुरि सो श्रद्धान कैसा है, सदा काल मूढ़ता आदि पच्चीस दोषनि करि रहित है । तहाँ लोकमूढ़ समयमूढ़ देवमूढ इनि भेदनि तैं तीन मूढ़ता अर जाति कुल आदि आठ मद । अर मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र अर इनिके धारक जीव ऐसैं छह अनायतन । अथवा असर्वज्ञ, असर्वज्ञ का स्थान, असर्वज्ञ का ज्ञान, असर्वज्ञ का ज्ञानयुक्तपुरुष, असर्वज्ञ का आचरण असर्वज्ञ का आचरण सहित पुरुष, ऐसे छह अनायतन हैं । ए सम्यक्त्व के स्थान नाहीं । तातैं इनिको अनायतन कहिये हैं । बहुरि शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, च्यारि तो ए, अर उपगूहन, स्थिति

करण, वात्सल्य, प्रभावना का अभाव ए च्यारि । ऐसें आठ मद । ऐसे सम्यग्दर्शन के पचीस दोष हैं, तिनि करि जो रहित होइ है सोई निर्मल श्रद्धान है । जातैं इनि दोषनिकौं लगे सम्यक्त्व का अभाव होय, कै × सम्यक्त्व मैला होय । बहुरि सो श्रद्धान कैसा है, संवेगादि गुणनि करि निर्मलपना तैं वर्द्धमान है वा करि संवेगादि गुण बधे हैं । तहाँ संसार तैं भय वा धर्म का फल को देखि हर्ष करना ताका नाम संवेग है । आदि शब्द तैं निन्दा गर्हा आदि जानना । बहुरि सो श्रद्धान संसार का हरन हारा है । बहुरि कुमति कुश्रुत विभंग रूप तीन अज्ञान तिनिकौं सुज्ञता का देनहारा है । कुज्ञान थे ते ई सम्यक्त्व भए सु ज्ञान हो है । बहुरि जीव अजीव, आस्रव, बंध संवर, निर्जरा मोक्ष पुण्य, पाप ए नव तत्त्व अथवा पुण्य पाप गर्भित किये सात तत्त्व तिनि का निश्चय करता है । बहुरि जहां तैं जीव न आवै ऐसा प्रासाद मोक्ष मंदिर ताकौ चढत ऐसे जे शिष्यनि विषैं पंडित बुद्धिवान तिन को पहला सिवाण है । याकौं पहलै भये पीछै अन्य साधन हो है । बहुरि च्यारि आराधना विषै यहु प्रथम आराधना है । ऐसा श्रद्धान है ।

भावार्थ—ऐसा श्रद्धान का स्वरूप वा महिमा जानि अंगीकार करनौ । तहाँ उपशमिक सम्यक्त्व तो जैसे कादा आप नीचे बैठ्या ऐसा जल ऊपरि निर्मल होइ तैसा जानना । अर क्षायिक सम्यक्त्व हरितमणि समान सर्वथा निर्मल जानना । अर क्षायोपशमिक उगता सूर्यवत किंचित् रागमलसहित जानना ।

× मयला ।

अत्र दश प्रकार सम्यक्त का सूचने के अर्थि आज्ञा इत्यादि समह रूप सूत्र कहे हैं।

आर्या छन्द।

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात् सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढ़े च ॥११॥

अर्थ—आज्ञा अर मार्ग तैं उत्पन्न भया, बहुरि उपदेश तैं उत्पन्न भया, बहुरि सूत्र अर बीज तैं उत्पन्न भया, बहुरि विस्तार अर अर्थनि तै उत्पन्न भया ऐसे आठ तो ए भये। बहुरि अव अर परमाव है आदि विषै जाकै ऐसा गाढ सो अवगाढ़ परमावगाढ़ शेष ये भये, ऐसे दश सम्यक्त्व के भेद जानने।

भावार्थ—हेय उपादेय तत्त्वनि विषै विपरीत अभिप्राय रहित सो सम्यक्त्व एक प्रकार है। ताही के आज्ञादिक आठ कारणनि तै उपजने की अपेक्षा आठ भेद किये हैं। अर ज्ञान की प्रकर्षता का सहकार करि विशेषपना की अपेक्षा अवगाढ़ परमावगाढ ए दोय भेद किये हैं। ऐसे इहां दश भेद जानने।

आगे इसही का विशेप वर्णन के अर्थि आज्ञा सम्यक्त्व इत्यादि तीन काव्य कहे है।

स्रग्धरा छन्द।

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुतनिरुचितं वीतरागाज्ञयैव।
त्यक्तग्रन्थप्रपञ्चं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्ते.।

मार्गमद्वानमाहु' पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता
या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशिदृष्टिः ॥१२॥

अर्थ—हे भव्य ! जो शास्त्र-पठन बिना वीतराग की आज्ञा ही करि, वचन सुनने ही करि श्रद्धान होइ सो आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि ग्रन्थ विस्तारका सुननें बिना बाह्याभ्यंतर परिग्रहरहित ऐसा कल्याण रूप मोक्ष का मार्ग ताहि दर्शनमोह की शांति होनें तें श्रद्धान करता जोहोइ ताहि मार्ग श्रद्धान कहै हैं। बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनि का उपदेशतें जो निपजी सो सम्यग्ज्ञान करि आगम समुद्र विषै प्रवीण पुरुषनि करि उपदेश है आदि विषै जाके, ऐसी दृष्टि कही है, यहु उपदेश सम्यक्त्व है।

(स्रग्धरा छंद)

आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः,
सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः।
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद् बीजदृष्टिः पदार्थान्
संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधुसंक्षेपदृष्टिः ॥१३॥

अर्थ—मुनि के आचरण का विधान को प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि मुनि करि श्रद्धानकरता जो होइ सो सूत्रदृष्टि भले प्रकार कही है। यहु सूत्र सम्यक्त्व है। बहुरि केई बीज जे गणित ज्ञान कों कारण तिनि करि अनुपम दर्शन मोह का उपशम के वशतें दुष्कर है जाननें की गति जा की ऐसा जु पदार्थनि का समूह ताकी भई है उपलब्धि श्रद्धान रूप परिणति जाकै ऐसा

करुणानु योग का ज्ञानी भव्य ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु बीज सम्यक्त्व जानना। वहुरि पदार्थनि को सन्क्षेपपनैं ही करी जानि श्रद्धा न कों प्राप्त भया सो भली संक्षेप दृष्टि है। यहु सक्षेप सम्यक्त्व जानना।

(स्रग्ध ।। छंद)

यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं कृतरुचिरथतं विद्धि विस्तार दृष्टिं,
संजातार्थात् कुतश्चित् प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टिः।
दृष्टिः साङ्गाङ्गवाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता यावगाढा,
कैवल्या लोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेतिरूढा ॥१४॥

अर्थ—अवै जो द्वादशाग रूप वाणी को सुनि कीन्हीं जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तार दृष्टि, हे भव्य ! तू जानिं। यहु विस्तार सम्यक्त्व है। वहुरि जैन शास्त्र के वचननि विना कोई अर्थ का निमित्त तैं भई सो अर्थ दृष्टि है। यहु अर्थ सम्यक्त्व जानना। वहुरि अग अर अग वाह्य सहित जैन शास्त्र ताकौं अवगाहि करि जो निपजी सो अवगाढदृष्टि है। यहु अवगाढ सम्यक्त्व जानना। वहुरि केवलज्ञान करि जो अवलोक्या पदार्थ विपै श्रद्धान सो इहाँ परमावगाढदृष्टि प्रसिद्ध है। यहु परमावगाढ़ सम्यक्त्व जानना। ऐसे ए दश भेद कहे।

भावार्थ—इहाँ दश भेद सम्यक्त्व के कहे। तहाँ वीतराग वचन ही तैं श्रद्धान होइ सो आज्ञा सम्यक्त्व है। मोक्ष मार्ग के ही श्रद्धान तैं होइ सो मार्ग सम्यक्त्व है। उत्तम पुरुषनि का पुराणादिक सुनने तैंश्रद्धान होइ सो उपदेश सम्यक्त्व है। मुनिका

मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता
या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशिदृष्टिः ॥१२॥

अर्थ—हे भव्य ! जो शास्त्र-पठन बिना वीतराग की आज्ञा ही करि, वचन सुनन ही करि श्रद्धान होइ सो आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि ग्रन्थ विस्तारका सुनर्ने बिना बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित ऐसा कल्याण रूप मोक्ष का मार्ग ताहि दर्शनमोह की शांति होनें तें श्रद्धान करता जोहोइ ताहि मार्ग श्रद्धान कहे हैं । बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनि का उपदेशतैं जो निपजी सो सम्यग्ज्ञान करि आगम समुद्र विषै प्रवीण पुरुषनि करि उपदेश है आदि विषै जाके, ऐसी दृष्टि कही है, यहु उपदेश सम्यक्त्व है।

(स्रग्धरा छंद)

आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः,
सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ।
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद् बीजदृष्टिः पदार्थान्
संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधुसंक्षेपदृष्टिः ॥१३॥

अर्थ—मुनि के आचरण का विधान कौं प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि सुनि करि श्रद्धानकरता जो होइ सो सूत्रदृष्टि भले प्रकार कही है। यहु सूत्र सम्यक्त्व है। बहुरि केई बीज जे गणित ज्ञान कौं कारण तिनि करि अनुपम दर्शन मोह का उपशम का वशतें दुष्कर है जाननें की गति जा की ऐसा जु पदार्थनि का समूह ताकी भई है उपलब्धि श्रद्धान रूप परणिति जाकै ऐसा

योग्य होय। तैसें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व सहित क्रियानि की यद्यपि एक जाति है तथापि अभिप्राय के विशेष तैं मिथ्यात्व सहित क्रिया का बहुत भार वहै तो भी महिमा न पावे। अर सम्यक्त्व सहित क्रिया का किंचित् भी भार वहै तो बहुत महिमा योग्य हो है।

आगे ऐसै सम्यक्त्व आराधना विषै प्रवर्तै है ऐसा जु आराधकताका स्वरूपकूँ कहि ताका भय कों दूरि करता सतासूत्र कहे है।

(आर्या छंद)

मिथ्यात्वातंकवतो हिताहितप्राप्त्यनाप्तिमुग्धस्य ।
बालस्येव तवेयं सुकुमारैव क्रिया क्रियते ॥१६॥

अर्थ—मिथ्यात्वरूप महा रोग संयुक्त अर हित अहित की प्राप्ति अप्राप्ति विषै मूर्ख ऐसा बालक समान जो तू सो तेरी यहु सुकुमाल ही क्रिया करिये है।

भावार्थ—हे शिष्य ! जैसे रोगी हित अहित को न जानता बालकता का कोमल ही प्रतीकार करिये, तैसें तू मिथ्यात्व सहित हित अहित को नाहीं पहचानता। अज्ञानी है, बालक समान। सो तुमको कोमल धर्म का साधन उपदेशिए है। इहाँ ऐसा रहस्य है पुष्ट होय वा हित प्राप्ति अहित-नाश का लोभ होइ वा बड़ी अवस्था होय तो कठोर साधन भी साधै। तीनों न होइ तब उसतैं सधता भासै सो ही साधन बताइए है। तैसें श्रद्धान वन्त होइ वा मोक्ष की प्राप्ति बंधका नाश का इच्छुक होइ तो कठिन

आचार सुनन तैं श्रद्धान होइ सो सूत्र सम्यक्त्व है। बीज गणितादि करि करुणानुयोग के निमित्त तैं श्रद्धान होइ सो बीज सम्यक्त्व है। संक्षेपपनैं पदार्थनि का श्रद्धान तैं होइ सो संक्षेप सम्यक्त्व है। द्वादशांग कों सुनि श्रद्धान होइ सो विस्तार सम्यक्त्व है। कोई दृष्टान्तरूप पदार्थ तैं श्रद्धान होइ सो अर्थ सम्यक्त्व है। श्रुत केवली के श्रद्धान होय सो अवगाढ सम्यक्त्व है। केवलज्ञानी के श्रद्धान है सो परमावगाढ सम्यक्त्व है। ऐसैं दश सम्यक्त्व के अन्य निमित्त तैं दश भेद जानना।

इहाँ प्रश्न—जो चारि प्रकार आराधना विषै सम्यक्त्व आराधना पहले काहे तैं करिए है। ऐसे पूछे कहै हैं।

(आर्या छंद)

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्॥१५॥

अर्थ—पुरुष आत्मा ताकै मंद कषाय रूप उपशम परिणाम, शास्त्राभ्यासरूप ज्ञान, पापत्यागरूप चारित्र, अनशनादिरूप तप इनि को महतपणों है सो पाषाण का बोझ समान है। विशेष फल का दाता नाहीं। बहुरि सोई सम्यक्त्व संयुक्त होय तो महामणि का गुरुत्ववत् पूजनीक है। बहुत फल का दाता महिमा योग्य है।

भावार्थ—जैसे पाषाण की अर मणिकी यद्यपि एक जाति है, तथापि कांति के विशेष तैं पाषाण का बहुत भार बहै तौ भी महिमा पावै। अर मणि का स्तोक थोड़ा भार बहै तो बहुत महिमा

आगे यहु तिस चारित्र आराधना का प्रारंभ किस को करना योग्य है ऐसा कहे ।

(आर्या छंद)

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्मएव तव कार्यः ।
सुखितस्य तदभिवृद्धयै दुःखभुजस्तदपघाताय ॥१८॥

अर्थ—ससार विषै सुखी वा दुखी जो तू सो तुझको धर्म ही करना योग्य है। सुखी के तो तिस सुख की बधवारी कै अर्थि है। अर दु ख भोगता के तिस दु ख का नाश के अर्थि है।

भावार्थ—जैसे जाके पूँजी होय ताकौं भी धन कमावना ही योग्य है, अर जाके ऋण होय ताकों भी धन कमावना ही योग्य है। पूँजी होय अर धन कमावै तो भो पूँजो की वृद्धि होय, अर ऋण होय अर धन कमावे तो ऋण का नाश होय। तैसे जाके पुण्य उदय तें सुख पाइए है ताकों भी धर्म ही करना ही योग्य है। सुखी होय धर्म करै तो सुख की बधवारी होय। दुखी होइ धर्म करै तो दु ख का नाश होय। तातैं सर्व अवस्था विषैं धर्म का साधन भला है, यहु तात्पर्य जानना।

आगे विषय सुख है सो धर्म का फल है यातैं धर्म की रक्षा कर्ता पुरुष करि विषय सुख भोगना योग्य है। सोही कहे हैं।

(आर्या छद)

धर्मारामतरुणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थसौख्यानि ।
संरक्ष्य तांस्ततस्तान्युच्चिनु यैस्तैरुपायैस्त्वम् ॥१९॥

धर्म भी साधै । तीनों तेरे नाहीं, तातैं युक्ति तैं साधना भाली है सोई सम्यक्त्वादि रूप क्रमरूप धर्म का साधन बतावै है ।

आगैं अब चरित्र आराधना का विचार का अनुक्रम कों करता आचार्य सो तिसका आराधक कों योग्य ऐसी ही सुगम अणुव्रत चरित्र आराधना का दिखावता सता सूत्र कहै है ।

(आर्या छंद)

विषयविषमाशनोत्थितमोहज्वरजनिततीव्रतृष्णस्य ।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान् ॥१७॥

अर्थ— विषय रूपी विषम भोजन तैं उत्पन्न भया मोह रूपी ज्वर ता करि उत्पन्न भई है तीव्र तृष्णा जाकै, ऐसा शक्ति रहित भया जो तू सा तेरे पेय आदि अनुक्रम है सोई कल्याणकारी है ।

भावार्थ—जैसे काहू के विरुद्ध भोजन तैं ज्वर भया ता करि तृषा बहुत भई बहुरि सामर्थ्य घटि गया, ताकूं पीवने योग्य आदि भोजन का अनुक्रम सोई गुणकारी है । गरिष्ठ भोजन करै अर पचै नांहीं तब बहुत रोग बधै तैसे ही शिष्य तेरे विषम वासनातैं मोह उत्पन्न भया ताकरि पर वस्तु की तृष्णा भई । बहुरि आतम शक्ति घट गई तांकूं अणुव्रत रूप साधन का अनुक्रम सोही गुणकारी है । मुनिपद ग्रहण करै अर सधै नाहीं तब बहुत संसार बधै । इहाँ प्रयोजन यहु है यावत् अंतरंग राग परिणाम रहै तावत् अनुक्रम तैं थोरा २ साधनकरि धर्म बधावना ।

आगे यह तिस चारित्र आराधना का प्रारंभ किस को करना योग्य है ऐसा कहे ।

(आर्या छंद)

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्मएव तव कार्यः ।
सुखितस्य तदभिवृद्धयै दुःखभुजस्तदपघाताय ॥१८॥

अर्थ—ससार विषै सुखी वा दुखी जो तू सो तुझको धर्म ही करना योग्य है । सुखी के तो तिस सुख की बधवारी कै अर्थि है । अर दु ख भोगता के तिस दु ख का नाश के अर्थि है ।

भावार्थ—जैसे जाके पूँजी होय ताकौं भी धन कमावना ही योग्य है, अर जाके ऋण होय ताकौं भी धन कमावना ही योग्य है । पूँजी होय अर धन कमावै तो भी पूँजी की वृद्धि होय, अर ऋण होय अर धन कमावे तो ऋण का नाश होय । तैसे जाके पुण्य उदय तें सुख पाइए है ताकौं भी धर्म ही करना ही योग्य है । सुखी होय धर्म करै तो सुख की बधवारी होय । दुखी होइ धर्म करै तो दु ख का नाश होय । तातैं सर्व अवस्था विषैं धर्म का साधन भला है, यह तात्पर्य जानना ।

आगे विषय सुख है सो धर्म का फल है यातैं धर्म की रक्षा कर्ता पुरुष करि विषय सुख भोगना योग्य है । सोही कहे हैं ।

(आर्या छंद)

धर्मारामतरूणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थसौख्यानि ।
संरक्ष्य तांस्ततस्तान्युच्चिनु यैस्तैरुपायैस्त्वम् ॥१९॥

अर्थ—समस्त इन्द्रिय विषयनि के सुख हैं ते धर्म रूपी बाग ताके सम्यक्त्व संयमादिक वृक्ष तिनि के फल हैं। तातें तू जिहिं तिहिं उपायनि करि तिन वृक्षनि कौं राखि तिन का फलनि का चूंटि ग्रहण करिहू।

भावार्थ—जैसे स्याना पुरुष है सो जिनि बागनिका वृक्षनि के पोल फल लागे तिनि वृक्षनि को तो रक्षा करे अर उनके फल लागे तिनि को ग्रहण करे। तैसें तू विवकी है तो जिस धर्म का अंगनि का सुख रूप फल निपजै तिस धर्म के अंगनि को तो रक्षा करि अर उनका फल सुख निरन्तर ताको भोगि। ऐसे ही किये सुख का विच्छेद न हो है। इहाँ विषय सुख की प्राप्ति के अर्थि धर्म का आचरना जो जीव ताके विषय सुख का अभाव हो है। ऐसी आशंका करि तू धर्म तैं विमुख मति होहु जातें ऐसा न्याय है।

(आर्या छंद)

धर्मःसुखस्य हेतुर्हेतुर्न विरोधकःस्वकार्यस्य ।
तस्मात् सुख भंगभिया मा भूर्धर्मस्य विमुखस्त्वम् ॥२०॥

अर्थ—धर्म है सो सुख का कारण है। बहुरि सुख का कारण होइ सो अपने कार्य का विरोधी नाहीं। तातें सुख का भंग होने का भय करि धर्म तै विमुख मति होहु।

भावार्थ—लोक विषैं यहु प्रसिद्ध है जिस कार्य का जो कारण होइ तिस कार्य का सो कारण विरोधी नाश करण हारा न होइ।

इहाँ सुख तो कार्य है अर धर्म कारण है सो धर्म सुख का भंग कैसे करेगा ? क्यों कि सुख तो धर्म का फल है। सो अपने फल को आप ही कैसे घाते ? तातैं धर्म का साधन करता "मेरा सुख विषै भग होगा" ऐसा भय करि धर्म विषै अनादर मति करे। कारण तैं कार्य की वृद्धि ही हो है। तातैं धर्म साधै सुख की वृद्धि ही होहै, ऐसा निश्चय करि धर्म विषैं प्रीति ही करनी योग्य है।

आगे इस ही अर्थ कूँ दृष्टान्त द्वारा दृढ करता सता सूत्र कहे हैं।

(आर्या छन्द)

धर्मादवाप्तविभवो धर्मं प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु ।
बीजादवाप्तधान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव ॥२१॥

अर्थ—धर्म ते पाया है सुख सम्पदा रूप विभव जाने, ऐसा जीव है सो धर्म को पालि करि भोग को भोगवो। जैसे बीज तैं पाया है अन्न जिहिं ऐसा खेतहड सो तिस अन्न का बीज को राखै।

भावार्थ—जैसे अन्न निपजै है सो बीज बोयां निपजै है। बीज विना खेद खिन्न भये भी अन्न निपजै नाहीं। तातैं स्याना खितहड़ ऐसे विचारे—जो मेरे बीज तैं अन्न भया है सो अब भी बीज राखे मेरे आगे भी अन्न की प्राप्ति होसी। तातैं बीज कौं राखि अन्न भोगवना। तैसें सुख हो है सो धर्म किये हो है। धर्म विना खेदखिन्न भये भी सुख होइ नाहीं। तातैं तू स्याना है तो

ऐसे विचारि आ मेरे धर्म का फल तें सुख भया है सो अब भी धर्म सार्धै तें मेरे आगामी सुख की प्राप्ति होसी। तातें धर्म कौ राखि सुख भोगवना। बहुरि ऐसे विचारि जैसे धर्म रहे तैसे पुण्य का उदय तें निपज्या सुख का भोगवो।

आगे धर्म तें कैसा फल पाइए है ऐसे पूछे उत्तर कहै है।

(आर्या छंद)

सकल्प्य कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि ।
असंकल्प्यमसंचिन्त्य फलं धर्मादवाप्यते ॥२२॥

अर्थ—कल्पवृक्ष का तो संकल्प योग्य जाको वचन करि जाचिये ऐसा फल है। बहुरि चिंतामणि का भी चिंतवन योग्य मन करि जाकौं जाँचिये ऐसा ही फल है। बहुरि धर्म तें संकल्प योग्य नाहीं अर चिंतवन योग्य नाहीं। ऐसा कोई अद्भुत फल पाइए है।

भावार्थ—लोक विर्षे कल्पवृक्ष चिंतामणि को उत्तम फल के दाता बताइए है सो वे तो वचन मन करि जाकौं जाचे ऐसा किंचित विषय सामग्री रूप ही फल को निपजावे है। बहुरि धर्म है सो वचन मन गोचर नाहीं ऐसा अद्भुत सुख रूप मोक्ष फल को निपजावे है। तातें कल्पवृक्ष चिंतामणि तैं भी धर्म की प्राप्ति कौं उत्तम जाणि याके साधन विर्षे तत्पर रहना योग्य है। आगैं ऐसा धर्म काहे तें उपाजन करिए है ऐसे पूछे कहै है।

(आर्या छंद)

परिणाममेवकारणमाहुः खलु पुण्यपापयोः प्राज्ञाः ।
तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः ॥२३॥

अर्थ—बुद्धिवंत हैं ते निश्चय करि पुण्य पाप का कारण परिणाम ही को कहे हैं। तातैं पाप का नाश अर पुण्य का संचय भले प्रकार करना योग्य है।

भावार्थ—कोई शरीर की सामर्थ्य न होने करि, कोई धनादिक न होने करि, कोई सहायादिक न होने करि धर्म साधन न होता माने है सो यहु भ्रम है। पर को दोष लगाय उपदेश को निरर्थक करो मति, तुम सुनो। पुण्य अर पाप का कारण परिणाम ही है। जातैं पर का किया पुण्य पाप होता नाहीं। अपने ही परिणामनि तैं पुण्य पाप होहै तातैं अशुभ परिणाम छोंडना, शुभ परिणाम करना। ऐसे तुम को पाप नाश, पुण्य का संचय करना योग्य है।

आगे जे जीव धर्म का संचय कौं न करते संते विषय सुखनि कौं भोगवे हैं तिनकी निंदा दिखावता सूत्र कहे है।

(आर्या छंद)

कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात् ।
आच्छिद्य तरून्मूलात् फलानि गृह्णन्ति ते पापाः ॥२४॥

अर्थ—जे जीव मोह भ्रम तें धर्म का घात करि विषय सुखनिकौं भोगवे हैं ते पापी मूल तैं वृक्षनि कौं छेदि करि फला को ग्रहे हैं।

भावार्थ—जैसे कोई पापी फल ही को चाहै परंतु रौद्र भावनि तैं वृक्ष कौं जड़तें काटि के फल हाथि लागै तिनकौं महण करै, तैसे मोही जीव सुख ही कूँ चाहे। परंतु पाप बुद्धितैं धर्म का घात करि जो सुख उदय आय ताकौं भोगवै। इहाँ इतना समझना जैसे वृक्ष कौं काटो या राखो फल तो जेता पाइए है तितना ही हाथि लागै। अर वृक्ष कौं काटैं आगामी फल की प्राप्ति होनी नाहीं अर राखे आगामी फल की प्राप्तिहोइ। तैसें धर्म को राखो वा घातो। सुख तो जेता उदय होना है सो ही होसी। धर्म कौं घातें आगामी सुख की प्राप्ति होनी नाहीं। राखे आगामी सुख की प्राप्ति हो है। इहाँ प्रश्न जो धर्म का घात करि सुख का भोगवना कहा, अर धर्म कौं राखि सुख का भोगवना कहा, ता का उत्तर। धर्म का अवसर विर्षे भी पाप रूप रहना, अन्याय रूप पाप कार्य करना मिले विषयनिविषै घनें विषयनि की तृष्णा करनी, कषाय परिणाम तीव्र राखने। इत्यादि प्रवृत्ति लिए विषय सुख का भोगवनां सो तौ धर्म का घातकरि सुख का भोगवनां जाननां। बहुरि धर्म का अवसर विर्षे धर्म साधना। अन्याय रूप पाप कार्य न करना। मिले विषयनि विर्षे संतोष रूप रहना। कषाय बहुत न करनी। इत्यादि प्रवृत्ति लिए। किछू विषय सुख का भोगवना सो धर्म राखि सुख का भोगवना जानना। बहुरि जहाँ कषाय हीन होय तहाँ विषय सामग्री का त्याग किए दुख सामग्री मिले भी निरकुल रहे है। तहाँ परमार्थ धर्म कौं राखि परमार्थ सुख का भोगवना जानना। इहाँ तर्क—जो यहु उपदेश छिपावने मात्र है। ध्यक रूप

नाहीं जातैं तिस विषय सुख का भोगवने विषै धर्म उपार्जन करने को सर्वथा असमर्थपनो है ऐसे तर्क किये कहै हैं —

(आर्या छंद)

कर्तृत्वहेतुकर्तृत्वानुमतैः स्मरणचरणवचनेषु ।
यः सर्वथाभिगम्यः स कथं धर्मो न संग्राह्यः॥ २५ ॥

अर्थ—कर्तापनो सो कृत, अर हेतु को कर्तापनो सो कारित, कर्ता की अनुसारि अभिप्राय सो अनुमोदन, इनि तीनूं करि स्मरण, मन का विचार, आचरण, काय करि अंगीकार अर वचन भाषा करि बोलना इनि विषैं जो धर्म सर्व प्रकार पावने योग्य है सो धर्म कैसे संग्रह न करना ?

भावार्थ—जो एक ही प्रकार धर्म होता होय तो सर्व विषयनिका त्याग किये ही धर्म होय परंतु यावत्सर्व विषय का त्याग न हो इस के तावत् अनेक प्रकार करि थोरा थोरा धर्म ही का संचय करना। जैसे अनेक व्यापारनि करि धन भेला करै तैसे अनेक प्रकार धर्म साधनिकरि धर्म का संचय करना। सो धर्म का संचय नव प्रकार हो है। मन करि धर्म करना, करावना, अनुमोदना। वचन करि धर्म करना, करावना, अनुमोदना। काय करि धर्म करना, करावना, अनुमोदना। बहुरि धर्म के अनेक अंग हैं तिनि विषैं जो धर्म बनै सोई करना। बहुरि एक भी धर्म थोरा घना जेता बनै तेताही करना। ऐसे सर्व प्रकार धर्म का संचय

हो है। तातैं सुगम है। बहुरि तू कठिनता प्रकट करि धर्म विषैं निरुद्यमी भया चाहै है सो जैसे निरुद्यमी पुरुष दुखी होय दुःख पावै तैसे पुण्य हीन होइ नरकादि विषै दुःख पावैगा। तातैं धर्म का संग्रह ही करना योग्य है।

आगे ऐसा धर्म जीवनि का चित्त विषै वर्तमान होत संते बहुरि न वर्तमान होत संते जो फल होय है सो दिखावता सूत्र कहै हैं—

(वसन्ततिलका छन्द

धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावत्,
हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथ तस्मिन्।
दृष्टा परस्परहतिर्जनकात्मजानां
रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव ॥२६॥

अर्थ—हे शिष्य! तू देखि, यावत् मन विषै अत्यर्थपनैं धर्म वसै है, तावत् अपने हनने वाला का भी आप हनने वाला न हो है। बहुरि तिस धर्म का गए सतैं पिता पुत्रनि कै भी परस्पर घात क्रिया देखिए है। तातैं प्रकट इस जगत का रक्षा धर्म ही है।

भावार्थ—धर्म बुद्धि होतैं तो काहू कौं न मारै अर धर्म बुद्धि न हाइ तब वह वाकौं मारे। तातैं धर्म न होइ तो बलवान् निर्बल कौं मारे। उनतैं बलवान् वाकौं मारै। ऐसे सर्व लोक नष्ट होइ। परंतु स्वयमेव लोक विषै धर्म की प्रवृत्ति है, तातैं जीवनि कै परस्पर रक्षा करनें के भ। परिणाम हैं। तिर्यंचादिक भी बिना

प्रयोजन छोटे जीवनि कौं भी न मारते देखिए है। तातैं लोक का रक्षक धर्म ही है। बहुरि जो धर्म लोक का रक्षक है सो ताके साधनेवाले का रक्षक कैसैं न होगा? तातैं अपना भी रक्षक धर्म ही कौं जानि ताका सेवन करना योग्य है।

इहाँ प्रश्न — जो विषय सुख कौं भोगते प्राणी तिनकै पाप का उपजना सभवै है, तातैं धर्म कैसे होइ? ऐसी आशका करि उत्तर कहै हैं —

(आर्याछन्द)

न सुखानुभवात् पाप पाप तद्धेतुघातकारम्भात् ।
नाजीर्ण मिष्टान्नान्नु तन्मात्राद्यतिक्रमणात् ॥२७॥

अर्थ—सुख के भोगवनें तैं पाप नाहीं है। तिस सुख का कारण जो धर्म है ताका घात करनें वाला जो कार्य ताका आरभ करने तैं पाप हो हैं — इहाँ दृष्टान्त कहै है। मिष्ट अन्न का भोजन तैं अजीर्ण न हो है। तिस भोजन की मात्रादिक का उल्लघन तैं अजीर्ण हो है।

भावार्थ—जैसैं अजीर्ण का कारण मिष्ट भोजन नाहीं, आसक्तता तैं अधिक भोजनादिक अजीर्ण का कारण है। तैसैं पाप का कारण विषय सेवन नाहीं, धर्म का घात करि बहुत कषायादिक की प्रवृत्ति सो पाप का कारण है। इद्रादिक देव वा भोगभूमिया वा तीर्थंकरादिक कै बहुत विषय सामग्री पाइए है तिनि

का सेवन भी है। परंतु नरकादिक का कारण पाप बंध होता नाहीं। बहुरि तंदुल मच्छादिक के बहुत तृष्णा तैं वा पर्वतादिक के मिथ्यात्वादिक तैं बहुत विषयसेवन किये बिना ही धर्म का घात करने करि नरकादिक का कारण पाप बंध हो है। मोतैं विषय छूटै नाहीं, विषय छूटैं बिना धर्म होय नाहीं, ऐसी आशंका करि धर्म की अरुचि करनी नाहीं। इहाँ प्रश्न--जो ऐसे है तो विषय छांरि मुनि पद काहे को ग्रहण करे है। ताका समाधान--नरक तिर्यंचादि रूप बंध को कारण जो पाप ताका अभाव तो गृहस्थ अवस्था में ही साधन किये हो है। परंतु इहाँ स्वर्गादिक का कारण परंपरा मोक्ष कौं साधै ऐसा धर्म सधै है। तातैं धर्म बुद्धि करि जो जीव साक्षात् मोक्ष कौं साध्या चाहै सो सर्व विषय छोरि मुनिपद अंगीकार करै है।

ऐसे आगैं कोऊ तर्क करै है--जो शिकार खेलना आदि हिंसादि रूप कार्य ताके भी धर्मवत् सुख का कारणपणां की सिद्धि है। जैसे धर्म तैं सुख उपजता कह्यो है तैसे शिकार आदि कार्यनितैं भी सुख होता देखिये है तातैं धर्म का घातक आरम्भ तैं पाप हो है ऐसा कैसे कह्यो हो ? अर्तैं पाप का कारण के सुख का कारण पना का विरोध है। ऐसी आशंका करि ताकौं निराकरण करता संता सूत्र कहै है --

(शार्दूल विक्रीड़ित)

अभ्यस्यन्मृगयादिकं यदि तव प्रत्यक्षदुःखास्पदं ।
पापैराचरितं पुरातिभयदं सौख्याय संकल्पतः ॥

संकल्प तमनुज्झितेन्द्रियसुखैरासेविते धीधनै-
र्धर्म्ये कर्मणि किं करोति न भवान् लोकद्वयश्रेयसि ॥१८॥

अर्थ—जो यहु शिकार आदि कार्य है सो प्रत्यक्ष दु ख का ठिकाना है। वहुरि पापी जीवनि करि आचरया हुवा है। वहुरि आगै नरकादि विषै वहुत भय का दाता है। ऐसा है तो भी तेरे सकल्प जो मन का उल्लास तातैं सुख कै अर्थि हो है। तिस सकल्प कौ तू धर्म कार्यनि विपै क्यों न करै है? कैसा है धर्म कार्य-मिले हैं इ द्रिय सुख जिनकौ ऐसे बुद्धिरूप धन सयुक्त जीव तिन करि सेवनीक है। अर इस लोक परलोक विषैं कल्याणकारी है।

भावार्थ—शिकारादि कार्य कौ तू सुख का कारण मानै है सो है तो त्यक्ष दु ख का स्थानक, जातै तहाँ खेद, क्लेश, आकुलता विशेष हो है। परतु तेरे तिस कार्य करने का उल्लास भया सो तेरी मानितैं सो कार्य सुख के अर्थि हो है। वहुरि जो दु ख का स्थानक हो तेरी मानितैं सुख के अर्थि भया अर जो खेद, क्लेश, आकुलता घटने तैं प्रत्यक्ष सुख का स्थानक धर्म कार्य तिस विपै तैसी जो मानि करै तो सुख के अर्थि कैसे न होय? वहुरि तू जानेगा शिकार आदि कार्य तो भोगी पुरुपन के करने के हैं अर धर्म कार्य योगीन का करने का है, सो ऐसे नाहीं, शिकार आदि कार्यको तो अहेडी आदि पापी ही करै हैं। अर धर्म क र्य कूँ चक्रवर्त्ती आदि महाभोगी सो आदरैं है। वहुरि आगामी भला जातैं होइ तिस दु ख विपै भी सुख मानिये सो शिकार आदि कार्य तो नरकादि

दुःख कौं कारण है। धर्म है सो स्वर्ग मोक्ष के सुख कौं कारण है। तातैं शिकारादि कार्य छोरि सुख के अर्थि धर्म ही अंगीकार करना योग्य है।

आगैं शिकार व्यसन विषै आसक्त जे जीव तिनि कै अत्यन्त निर्दयपना कौं दिखावता संता सूत्र कहै हैं —

(अनुष्टुपछन्द)

भीतमूर्तीगतत्राणा निर्दोषा देहवित्तिका ।
दन्तलग्नतृणा घ्नन्ति मृगीरन्येषु का कथा ॥ २६ ॥

अर्थ—भयवान है मूर्ति जिन की अर रक्षा करि रहित अर दोष करि रहित अर शरीर मात्र धन करि सहित अर दांतनि विषै लगा है तृण जिनके ऐसी जे हिरणी तिनि कौं मारे है औरनि विषै कहा की कहा बात है?

भावार्थ—लोक विषै राजादिक समर्थ पुरुष हैं ते भी एक तो भयवान कूँ न मारें, ताकूँ अभयदान करि राखें। बहुरि जाका रक्षक न होय ताकूँ न मारें अनाथ की रक्षा ही करें। बहुरि जामैं चोरी आदि दोष नाहीं ताकौं न मारें शिष्ट की प्रतिपालना ही करें। बहुरि जाके धन न होय ताकूँ न मारें रंकनि की सहाय ही करें। बहुरि दांतौं तिणौं लियौं होय ताकौं न मारें। मान छोड़े कूँ निर्भय ही करें। बहुरि स्त्री को न मारें। स्त्री आदि की हत्या पुरुषार्थ का घाती न करें। ऐसें एक एक बातौं जाके पाइये ताकौं भी मारना युक्त नाहीं। सो हरिणीनि विषैं तो ए सर्व बात पाइए है।

तिनकों भी शिकार खेलने वाले मारे हैं तो उनके औरन की दया कैसे होय ? तातैं शिकारी पुरुष महा निर्दय महा पापी जानने।

आगे हिंसा का त्याग रूप व्रत विषै दृढ़पनो करि अनृत स्तेय का त्याग रूप व्रत विषैं तिस दृढपना करने कौ सूत्र कहै हैं --

(आर्याछन्द)

पैशुन्यदैन्यदम्भस्तेयानृतपातकादिपरिहारात् ।
लोकद्वयहितमर्जय धर्मार्थयशः सुखाऽऽयार्थम् ॥२०॥

अर्थ--दुष्टता अर दीनता, कपट अर चौरी अर असत्य अर हत्या आदि पातिक इत्यादि पाप कर्मनि का त्याग करने तै हे भव्य ! तू दोऊ लोक सम्बन्धी हित का उपार्जन करि। इहा प्रयोजन कहै हैं। धर्म, अर्थ, जस, सुख पुण्य इनके अर्थि ऐसा कार्य करि ऐसे हम तोकौं प्रेरैं हैं।

भावार्थ--अनृत स्तेय विषै गर्भित ऐसा दुष्टपना दीनपना, ठिगपना, चोरपना, असत्य बोलना महा पाप रूप पातक कार्य करना इत्यादिक कार्यनि का त्याग करना योग्य है। इनका त्याग इस लोक परलोक विषै हितकारी है। जातैं इनिके त्यागतैं अणु व्रत महाव्रत रूप धर्म हो है। बहुरि लोक विषैं विश्वास होने करि धन उपार्जन के निमित्त बनै हैं। बहुरि लोक विरुद्ध कार्य छोड़ने तैं जस हो है। बहुरि आकुलता मिटने तैं वा सुख का कारन होने तैं सुख हो है। बहुरि साता वेदनीयादि पुण्य का बन्ध हो है। तातैं

इस लोक परलोक विषैं इनका त्याग कौं हितकारी जानि हे भव्य ! तुम ऐसा काय करो।

यहाँ तर्क—जो प्रवीनि के भी उपसर्ग दुःख आवैं आपनी रक्षा के अर्थि हिंसा असत्य आदि पाप कदाचित् होइ। ऐसा तर्क किए यहाँ सूत्र कहे हैं —

(वसन्ततिलका छन्द)

पुण्यं कुरुष्व कृतपुण्यमनीदृशोपि
नोपद्रवोभिभवति प्रभवेष भूत्यै ।
सन्तापयन् जगदशेषमशीतरश्मि
पद्मेषु पश्य विदधाति विकासलक्ष्मीम् ॥२१॥

अर्थ—हे भव्य हो ! तुम पुण्य कौं करो। जातैं पुण्य किया तिसको, जिस सारिसा न देख्या ऐसा भी उपद्रव है सो नाहीं पीडै है। बहुरि वह उपद्रव है सो ही विभूति के अर्थि हो है। तू यहाँ दृष्टान्त देखि—समस्त जगत कौं आताप देता ऐसा सूर्य है सो कमलनि विषै विकासरूप लक्ष्मी कूं करै है।

भावार्थ—उपसर्ग दुःखदायक कारण है सो पुण्यवाननि कौं दुःख देन को समर्थ नाहीं। जैसे सूर्य औरनि कौं आताप उपजावै कमलनि को प्रफुल्लित करै। तैसे उपद्रव है सो पाप उदय होय तिनकूं दुःख देवै है। जिनके पुण्य का उदय है तिनिकूं विभूति का दाता हो है। सो प्रत्यक्ष देखिये है। जिस उपद्रव विषै सर्व कूं बड़ा दुःख होय अर कोई के पुण्य उदय होय तातैं तिस उपद्रव ही

विषै धनादिक का लाभ होय । तातैं धर्मात्मा पुरुष है सो उपसर्ग आए भी धर्म को छोडि हिंसादि पाप रूप नाहीं प्रवर्तैं हैं ।

आगे पुरुषार्थ ही तें शत्रुनि कौं दूरि करि उपसर्ग निवारनि कौं समर्थपना है । तातैं पुण्यकरि पूरी प(?) किछू सिद्धि नाहीं ऐसी आशका करि समाधान करने रूप सूत्र कहे हैं ।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

नेता यत्र बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुरा सैनिकाः,
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः खलु हरेरैरावणो वारणः ।
इत्याश्चर्यबलान्वितोपि बलभिद्भग्नः परैः संगरे,
तद्व्यक्तं ननुदैवमेव शरणं धिग्धिग् वृथा पौरुषम् ॥३२॥

अर्थ—जहा बृहस्पति तो मन्त्री अर वज्र हथियार अर देव सेना विषै चाकर, स्वर्ग गढ़ अर हरि जो ईश्वर ताका अनुग्रह सहाय, अर ऐरावत हाथी पाइए ऐसा आश्चर्यकारी बल सहित है तो भी इन्द्र है सो औरनि करि सग्राम विषै हार्‍या । तातै निश्चय करि यह प्रगट है — दैव है सो ही शरण सहायक है। वृथा नि फल जो पुरुषार्थ है सो ताकूं धिक्कार है, धिक्कार है ।

भावार्थ—जो जीव पुरुषार्थ करि दु ख निवारना मानि जैसे अपना पुरुपार्थ सधै तैसे उपाय करै है । ताकौं कहै हैं —पुरुषार्थ तो निष्फल है । पुण्य कर्म है ताही का नाम दैव है, सोई सहाय है । ताकौं होतैं पुरुषार्थ भी कार्यकारी हो है । उस विना पुरुषार्थ

किछू कार्यकारी नाहीं। इहां पैप्य्ब मत अपेक्षा उदाहरण कहा। जो देवतानि का इन्द्र बलवान है तो भी दैत्यनि करि संग्राम विषै हारया। अथवा याही का जैन मत अपेक्षा अर्थ कीजिये तो इन्द्र नामा विद्याधर भया है। तातैं मंत्री आदिक का बृहस्पति आदि नाम धरया है, सो बहुत पुरुषार्थ करि सयुक्त भया तो भी रावण करि हारया, तातैं पुरुषार्थ को निरर्थक जानि पुण्य कर्म ही कार्यकारी जानि पुण्य का साधन करना योग्य है।

इहां तर्क —जो हिंसादिक का त्याग करना देख्या नाहीं ताका आचरण करने वाले भी असमव भासै है। तातैं तिनकी पहले भई वार्ता मात्र ही सुनने में आवे है। ऐसे कहतां पुरुष को उत्तर कहे हैं—

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

मसार कुलपर्वता इव भुवो मोहं विहाय स्वयं
रत्नानां निधयः पयोधय इव व्यावृत्त वित्तस्पृहाः।
स्पृष्टाः कैरपि नो नभोविभुतया विश्वस्य विश्रान्तये।
सन्त्यद्यापि चिरन्तनान्तिकचरा सन्त कियन्तोऽप्यमी॥३३॥

अर्थ—चिरकालवर्ती बडे मुनि तिनि के शिष्य उनके मार्ग विषै प्रवर्तते ऐसे कई सत्पुरुष अब भी प्रत्यक्ष पाइए हैं। कैसे है सत्पुरुष—आप मोह को छोडि कुलाचलवत् पृथ्वी का भर्ता है। जैसे कुलाचल पर्वत पृथ्वी कू धारै है अर पृथ्वी विषै मोह करि रहित तैसे सत्त पुरुष हित विषैं लगाई पृथ्वी-स्थित जीवनि कौं

पोखे है अर तिन जीवनि विषै मोह करि रहित है। बहुरि कैसे हैं—समुद्रवत् रत्ननि के निधि हैं, अर नाहीं है धन की वांछा जिनकै ऐसे भी हैं। जैसे समुद्र मोती आदि रत्ननि की खानि है अर धन की वांछा करि रहित है तैसे सन्त पुरुष सम्यग्दर्शन आदि रत्ननि की खानि हैं अर धनादिक की वांछा करि रहित है। बहुरि कैसे हैं? आकाशवत् किनि हू करि स्पर्शित नाहीं हैं। अर विभुता जो परम महतता करि सर्व जगत की विश्राति के अर्थि होइ रहे हैं। जैसे आकाश कोई पदार्थनि करि लिप्त नाहीं, अखण्डपना करि सर्व जगत का रहने का स्थान है, तैसे सन्त पुरुष कोई पर भावनि करि लिप्त नाहीं, अर महतपना करि सर्व जगत का दुःख दूरि करने का ठिकाना है। ऐसे केई सत्पुरुष अब भी पाइए हैं।

भावार्थ—जिस काल विषै इस ग्रंथ की रचना भई है तिस काल विषै यथार्थ मुनि धर्म के धारक कोई जीव रहि गए अर शिथिलाचारी बहुत भए। तहाँ काहू ने ऐसी तर्क करी जो मुनि धर्म बहुत कठिन है ताका आचरण की चौथे काल विषै भई वातैं ही सुनिए हैं। परन्तु कोई आचरने वाला तो दीखता नाहीं। ताको कहै है—अब भी कोई कोई मुनि धर्म का धारक प्रत्यक्ष पाइए है। तू धर्म का अभाव करि अपना शिथिलाचार को पुष्ट काहे को करै है। कोई क्षेत्र काल विषै धर्मात्मा थोरे होंहि वा न होय तो धर्म का स्वरूप तो यथावत् ही मानना योग्य है।

आगे इन संतनि करि आचर्या जो मार्ग तिसतैं जुदा जु

किछू कार्यकारी नाहीं। इहां वैष्णव मत अपेक्षा उदाहरण कह्या। जो देवतानि का इन्द्र बलवान है तो भी दैत्यनि करि संग्राम विषै हारया। अथवा याही का जैन मत अपेक्षा अर्थ कीजिये तो इन्द्र नामा विद्याधर भया है। ताकैं मंत्री आदिक का बृहस्पति आदि नाम धरया है, सो बहुत पुरुषार्थ करि सयुक्त भया थोभी रावण करि हारया, तातैं पुरुषार्थ को निरर्थक जानि पुण्य कर्म ही कार्यकारी जानि पुण्य का साधन करना योग्य है।

इहां तर्क —जो हिंसादिक का त्याग करना देख्या नाहीं ताका आचरण करने वाले भी असमव भासै है। तातैं तिनकी पहले भई वार्ता मात्र ही सुनने मैं आवे है। ऐसे कहता पुरुष को उत्तर कहे हैं—

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

भर्तार कुलपर्वता इव भुवो मोहं विहाय स्वय
रत्नानां निधय पयोधय इव व्यावृत्त वित्तस्पृहाः।
स्पृष्टाः कैरपि नो नभोविभुतया विश्वस्य विश्रान्तये।
सन्त्यद्यापि चिरन्तनान्तिकचराःसन्त कियन्तोऽप्यमी॥२३॥

अर्थ—चिरकालवर्ती जे मुनि तिनि के शिष्य अनेक मार्ग विषै प्रवर्तता ऐसे कई सत्पुरुष अब भी प्रत्यक्ष पाइए हैं। कैसे हैं सत्पुरुष—आप मोह का छाडि कुलाचलवत् पृथ्वी का भर्ता है। जैसे कुलाचल पर्वत पृथ्वी कू धारे है अर पृथ्वी विषै मोह करि रहित तैसे मग्न पुरुष हित विषै लगाई पृथ्वी-स्थित जीवनि कौं

आगे विषयनि विषै मोहित जो जीव ताकै पुत्र का मारना आदि अकार्य की प्रवृत्ति हो है ता विषै कारण कहा है सो कहै है —

अंधादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः ।
चक्षुषाऽन्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ॥२५॥

अर्थ-विषयनि करि अन्ध किये है-सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र जाका ऐसा यहु जीव है सो अन्ध तैं भी महाअंध है। इहाँ हेतु कहै हैं। अंध है सो तो नेत्रनिही करि नाहीं जानै है अर विषय करि अंध है सो काहू करि भी न जानै है।

भावार्थ—अंध पुरुष कूँ तो नेत्रनिही करि नाहीं सूझै है। मन करि विचारना, काना करि सुनना इत्यादि ज्ञान तौ वाकै पाइए है। बहुरि जो विषय वासना करि अंध भया है ताकै काहू द्वारै ज्ञान न होइ सकै है। विषयनि विषैं दुःख होता नेत्रनि करि दीसै, मन करि विचारैं, भासै, सीख देने वाला सुनावै इत्यादि ज्ञान होने के कारन बने परंतु विषय वासना करि ऐसा अंध होइ काहू कौ गिनै नाहीं। तातैं अंध होना निषिद्ध है। तिस तैं भी विषयनि करि अंध होना अति निषिद्ध जानना।

आगे कहै हैं किंचित् विषय की वाछा करि तिनि कै अर्थि तेरी प्रवृत्ति है सो यह वाछा तो सब ही प्राणीनि कै है परंतु या वाछा करि कौन कै मन वाछित पदार्थ की सिद्धि भई? काहू कै ही न भई।

यहु लोक मो संसार की स्थिति को न देखता मया फला करै है, सो कहै है—

(शिखरिणी छंद)

पिता पुत्रं पुत्रं पितरमभिसन्धाय बहुधा ।
विमोहादीहेते सुखलवमवाप्तुं नृपपदम् ॥
अहो मुग्धो लोको मृतिजननदंष्ट्रान्तरगतो ।
न पश्यत्यश्रान्तं तनुमपहरन्तं यममम्मुम् ॥२४॥

अर्थ—पिता तो पुत्र कूँ अर पुत्र पिता कौं बहुत प्रकार ठिग करि मोहतें सुख का है अंश जामें ऐसा राजपद पावने कू वांछै है। अहो बड़ा आश्चर्य है मूरख लोग मरण जन्म रूप डाढ के मध्य प्राप्त भया निरंतर शरीर कौं हरता जो यहु यम ताकौं नाहीं अवलोकै है।

भावार्थ—जैसे कोई सिंह की डाढ विषै आया पशु सो अपना शरीर कौं खावता जो सिंह ताका तो विचार ही करै नाहीं अर क्रीड़ा करने का उपाय करै। तहाँ बड़ा आश्चर्य हो है। तैसे जन्म मरण दोऊ है सो यम की डाढ है। ताके बीचि (काल) विषै प्राप्त भया यहु लोक सो अपना आयु कौं हरता जो काल ताका तो विचार ही करै नाहीं अर राज्यादिक पद लेने का नाना उपाय करै है सो यहु बड़ा आश्चर्य है। ऐसा मूरखपना को छोड़ि यम का निवारण होनि विषय यत्न करना योग्य नाहीं है।

इत्यार्या सुविचार्य कार्यकुशलाः कार्येऽत्र मंदोद्यमा
द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्तेतराम् ॥३७॥

अर्थ—या जीव कै सुर मनुष्यादि विषै दीर्घायु, लक्ष्मी, सुन्दर शरीर जो होय है सो पूर्व जन्म पुण्य उपार्जित करि है। जाने पुण्य उपार्ज्या होय ताकै सर्व होय। अर जो पुण्य उपार्ज्या न होय तो अनेक उद्यम खेद करै तोऊ सर्वथा कछू ही न होय। तातैं कार्य विषै प्रवीण पुरुष विचारि या भव के कार्य विषै तो मंद उद्यमी है अर शीघ्र ही आगामी भव के अर्थि सेती निरतर अत्यन्त यत्न करे है।

भावार्थ—पूर्व भव विषै जानैं दया, दान तपादिक करि विशेष पुण्य उपार्ज्या होय ताही के दीर्घ आयु, सुन्दर काय, विभूत्यादिक होय है। अर जानें पुण्य न उपार्ज्या सो अधिक उद्यम करै, अति खेद खिन्न होय तोहू कछू ही न होय, ऐसा विचारि विवेकी पुरुष या भव के कार्य विषै तो मद उद्यमी हैं अर शीघ्र ही पर भव के सुधारवे अर्थि अति प्रीति करि विशेष यत्न करै हैं।

आगे कोऊ प्रश्न करै है कि या भव के सुख के साधक जे विषय ते पूर्व पुण्य के प्रसाद तैं आय प्राप्त भये, तिनि विषै काहे को मद उद्यमी होय, ताका समाधान करै हैं —

(शार्दूल विक्रीडित छद)

कः स्वादो विषयेष्वसौ कटुविषप्रख्येष्वलं दुःखिना
यानन्वेष्टुमिव त्वयाऽशुचि कृतं येनाभिमानामृतम्।

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥

अर्थ—अहो प्राणी ! यह आशा रूप औंडा खाडा सब ही प्राणीनि के है। ता विषै समस्त त्रैलोक्य की विभूति अणु समान सूक्ष्म है। जो त्रैलोक्य की विभूति एक प्राणी के आय परै तौ हू तृष्णा न माजे। कौनकै कहा केतायक आवै। तातैं तेरैं विषय की वांछा वृथा है।

भावार्थ—त्रैलोक्य विषैं विभूति तौ अल्प अर एक जीव के आशा रूप गर्त कहिये खाडा अगाध ता विषै त्रैलोक्य की विभूति अणु समान है सो एक हू जीव का खाडा कैसे पूर्ण होय। तातैं तेरे विषय की अभिलाषा वृथा है।

आगैं कहै हैं कि याही तैं विषय सुख कूँ छांडि करि महा पुण्य के उपार्जवे निमित्त मुनि प्रवर्त्तै है। या विषय के सुख की प्रवृत्ति करि भव भव विषैं नये नये शरीर धरे हैं। तातैं जे आरम्भ—कषाय विषैं प्रवीण हैं ते विचारि आरम्भ—काय विषैं प्रवर्तैं हैं। जो समस्त प्रमाद है सा पुण्य का फल है सो ही दिखावै है।

(शार्दूल विक्रीडित छंद)

आयु' श्रीवपुरादिकं यदि भवेत् पुण्यं पुरोपार्जित
स्यात् सर्वं न भवेन्न तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि ।

अर्थ—निवृत्ति तैं रहित जो तू सर्व जगत की माया ताके अंगीकार करवे की है अभिलाषा जाकै सो भावनि तैं तौ तैं कछू ही न छोड्या। अर तेरे मुख तैं जो कछु वच्या सो भोजन की अशक्ति तै वच्या। जैसे राहू रवि शशि कूँ निगलता हुता सो निगल न सक्या तातै वचे।

भावार्थ—यह जीव ऐसा विषयासक्त अर तृष्णातुर है जो सर्व जगत की विभूति अर त्रैलोक्य के विषय याहि प्राप्त होय तोऊ तृष्णा न मिटै। परन्तु जो कछु उवऱ्या सो भोगवे की असमर्थता तैं उवऱ्या। जैसे राहू रवि शशि कों भखि न सक्या तातैं उवरै।

आगे कहै है कि दैवयोग तैं करुणारूप भया है चित्त जाका, अर मोक्ष लक्ष्मी की अभिलाषा करि हिंसा की निवृत्ति कूँ इच्छे है, ऐसा तू, सो तोहि वाल्यावस्था ही तैं सर्वथा परिग्रह का त्याग ही करना, ऐसा दिखावै है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

साम्राज्यं कथमप्यवाप्य सुचिरात् संसारसारं पुन—
स्तत्यक्त्वैव यदि क्षितीश्वरवराः प्राप्ताः श्रियं शाश्वतीम्।
त्वं प्रागेव परिग्रहान् परिहर त्याज्यान् गृहीत्वापि ते।
मा भूर्भौतिकमोदकव्यतिकरं संपाद्य हास्यास्पदम्।४०

अर्थ—हे भव्य! जैसे अगले बडे २ राजानि में कोइक पुण्य के उदय करि चक्रवर्ति पद का राज्य ससार के विषै सार सो

आ ज्ञातं करणैर्मनः प्रणिधिभिः पित्तज्वराविष्टवत्
कष्टं रागरसैः सुधीस्त्वमपि सन् व्यत्यासितास्वादनः ॥३८॥

अर्थ—कडवे विष तुल्य जे विषय तृष्णा करि अत्यन्त दुखी की नाँई इन विषयनि कौं भोगवे निमित्त तैं अपना महतता रूप अमृत मलिन किया सो यहा कष्ट है। अर मन के सेवक जो ये इन्द्रिय तिनि का आज्ञाकारी होय विषयनि विषै प्रवर्त्या। जैसे पित्तज्वर का वेढ्या जो प्राणी ताहि वस्तुनि का स्वाद विपरीत भासै तैसे तू सुबुद्धि है तौऊ विषयाभिलाषी भया राग रस करि विपरीत स्वादी भया।

भावार्थ—जैसे पित्तज्वर वारे कूँ वस्तुनि का स्वाद विपरीत भासै तैसे तू रागज्वर करि विपरीत स्वादी भया। कडवे विष समान ए विषय तिनि विषै कहा स्वाद है? परन्तु ताहि स्वाद सा भास्या अर इनि ही कूँ मनोज्ञ जानि ढूँढता भया। विषयाभिलाष करि महा दुखी जो तू सो अपना महन्ततारूप अमृत आछादित करता भया। जो विषयाभिलाषी होय महतता सर्वथा न रहै।

आगे कहै हैं कि विषयासक्त जो तू अर काहू ही वस्तु विषै नाहीं निपज्या है चित्त जाका सो तेरे भखिवे की असमर्थता तैं कछू उबर्या सो उबर्या भावनि तैं तौ तू सर्व भखी ही भया।

अनिवृत्तेर्जगत्सर्वं मुखादवशिनष्टि यत्।
तत्तस्याशक्तितो भोक्तुं वितनोर्भानुसोमवत् ॥३९॥

सम्पदा भोगई तिनिहू तजी तब मुक्त भये, सो तू कुमार अवस्था ही तैं तजि, ज्यों उनहू तैं उत्कृष्ट होइ। जैसे कहू एक पुरुप के कीच लागा था सो धोय करि उज्ज्वल भया। अर जो कीच लगावै ही नाहीं सो सर्वोत्कृष्ट है। अर कीच लगाय कर धोया चाहै सो हास्य का स्थानक होय ।

आगैं कहैं है कि साश्वती निर्वाण विभूति ताकै साधक निर्ग्रंथ मुनि ही है। गृहस्थावस्था विपैं निर्वाण का साधन न करि सकै, यही दृढ करि दिखावै है।

शार्दूलछन्द)

सर्वं धर्ममयं क्वचित् क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं
क्वाप्येतद् द्वयवत्करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि ।
तस्मादेप तदन्धरज्जुवलनं स्नानं गजस्याथवा
मत्तोन्मत्तविचेष्टितं नहि हितो गेहाश्रमः सर्वथा ।४१।

अर्थ—यह गृहस्थाश्रम है सो सर्वथा या जीव कू कल्याणकर्त्ता नाहीं। जैसे मतवाला आदमी अनेक उन्मत्त चेष्टा करै तैसे यह गृहस्थाश्रम बुद्धिवान जीवनिहू के अनेक चरित्र करै है। कबहू तौ सामायिक पडिकूना पोसह सयुक्त उपवासादिक करि जीव कूं केवल धर्ममई ही करै है। अर कबहूक स्त्री सेवनादिक करि पापमयी करै है। अर कबहुक पूजा प्रभावना यात्रा चैत्य चैत्यालय निर्मापण इत्यादि कार्यनि करि पुण्य पाप दोऊ मयी करै है। तातैं

चिरकाल मोगि करि शाश्वती निर्वाण विभूति ताहि प्राप्त भए। निर्वाण पद का कारण परिग्रह का त्याग ही है। तातैं तू पहली ही परिग्रह का त्याग करि कुमार अवस्था ही विषैं मुनि पद धरि। बाल ब्रह्मचर्य समान और वस्तु नाहीं। ए परिग्रह तजिवे आग्य ही हैं। जिनि चक्रवर्ति पद भाग्या तिनिकू तज्या तब मुक्त भए। तातैं जो राज नाहीं करैं, अर विवाह न करैं तिनि समान और नाहीं। अर तेरै ऐसी अभिलाषा है जो इनि परिग्रहनि कूं ग्रहि करि बहुरि तजूं सा ऐसी कामना करि तू भषधारी क काढ़ कीसी कहवति करत्य लोकनि पैं हास्य मति करावै।

भावार्थ – एक मौतिक भेषधारी भिक्षा कौं भ्रमता हुता सो काहू नैं वाके पात्र विषैं काढ़ डारया सा ले करि जाय था। मारग में पग आखल्या सो काढ़ पात्र में तैं मलीन आमर्गों जाय पड्या तब वानैं काढ़ उठाय पात्र में डारया। तब काहू नैं कही तैं बुरा किया ऐसी वामर्गा का परथा काढ़ न लेना। तब यह कहता भया–तू चुप होय रहु। मैं यह काढ़ न मखूंगा। परन्तु आश्रम विषैं लेजाय धोय करि डारि धूंगा। तब लोग बहुत हास्य करी अर कही–तू काढ़ न मखै अर धोय करि डारै तो मलीन आमर्गों का उठाय पात्र मैं क्यों डारै ? पड्या ही रहतें दे। सो जैसे काढ़ कै उठावन करि मौतिक की हास्य भई तैसैं तू हू कहै है जो मैं परिग्रह सम्पदा भोगि पीछे तजूंगा सा यह माया मलिन आमर्गा के काढ़ समान है। ताहि अंगीकार ही करना योग्य नाहीं। तबनी तो ह ही वा महस ही काढ़ कू करै। जिनि चक्रवर्त्यादि राजानि राज

सपदा भोगई तिनिहू तजी तव मुक्त भये, सो तू कुमार अवस्था ही तैं तजि, ज्यों उनहू तैं उत्कृष्ट होइ। जैसे कहू एक पुरुष के कीच लागा था सो धोय करि उज्ज्वल भया। अर जो कीच लगावै ही नाहीं सो सर्वोत्कृष्ट है। अर कीच लगाय कर धोया चाहै सो हास्य का स्थानक होय ।

आगैं कहैं है कि साश्वती निर्वाण विभूति ताकै सावक निर्ग्रंथ मुनि ही है। गृहस्थावस्था विषैं निर्वाण का सावन न करि सकै, यही दृढ करि दिखावै है।

शार्दूलछन्द)

सर्वं धर्ममयं क्वचित् क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं
क्वाप्येतद् द्वयवत्करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि ।
तस्मादेष तदन्धरज्जुवलनं स्नानं गजस्याथवा
मत्तोन्मत्तविचेष्टितं नहि हितो गेहाश्रमः सर्वथा ।४१।

अर्थ—यह गृहस्थाश्रम है सो सर्वथा या जीव कू कल्याणकर्त्ता नाहीं। जैसे मतवाला आदमी अनेक उन्मत्त चेष्टा करै तैसे यह गृहस्थाश्रम बुद्धिवान जीवनिहू के अनेक चरित्र करै है। कबहू तौ सामायिक पडिकूना पोसह संयुक्त उपवासादिक करि जीव कूं केवल धर्ममई ही करै है। अर कबहूक स्त्री सेवनादिक करि पापमयी करै है। अर कबहुक पूजा प्रभावना यात्रा चैत्य चैत्यालय निर्मापण इत्यादि कार्यनि करि पुण्य पाप दोऊ मयी करै है। तातैं

यह गृहस्थाश्रम आंधे का जेवड़ी वटना ता समान है अथवा गज स्नानवत् है, बावरे की सी चेष्टा है।

भावार्थ—यह गृहस्थाश्रम जीव कूँ हितकारी नाहीं। उन्मत्त पुरुष की सी चेष्टा है। कबहू तो सर्वथा दया अरु सामायिक पोसह विन करि धर्म ही उपार्जै। कबहुक स्त्री सेवन शृंगारादिक करि पाप ही उपार्जै। अर कबहूक पूजा, प्रतिष्ठा यात्रा, चैत्यालय निर्मापण इत्यादि कार्यनि करि विशेष पुण्य अल्प पाप उपार्जै है। तातैं यह गृहस्थाश्रम तजिवे ही योग्य है, कल्याणकारी नाहीं। जैसे आंधा जेवड़ी कूँ बटै सो बछड़ी चबी जाय अर हाथी स्नान करै सिर परि धूरि डारै तातैं उन्मत्त चेष्टा है।

आगैं कहै हैं कि शाश्वती मोक्ष सम्पदा तिसका जो साधक होय सो उपकारी कहिए। यह गृहस्थाश्रम शिव सम्पदा का साधक नाहीं। तातैं या विषैं जीव का हित नाहीं। यह गृहस्थावस्था अर या विषैं असि कहिये, लवृणवृत्ति अर मसि कहिये स्याही ता करि लिखनवृत्ति, अर कृषि कहिये खेती अर वाणिज्य कहिये व्यापार सो सब दुःख ही के साधक हैं। इनमें सुख का साधक कोऊ नाहीं। ऐसा दृढ़ करि दिखावै है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

कृष्ट्वोप्त्वा नृपतीन्निषेव्य बहुशो भ्रांत्वा वनेऽम्भोनिधौ
किं क्लिश्नासि सुखार्थमत्र सुचिरं हा कष्टमज्ञानतः ।

तैलं त्वं सिकतासु यन्मृगयसे वाञ्छेर्विषाज्जीवितुं
नन्वाशाग्रहनिग्रहात्तव सुखं न ज्ञातमेतत् त्वया ॥४२॥

अर्थ—हे जीव ! तू या गृहस्थाश्रम विषै सुख कै अर्थि कहा क्लेश करै है, यामैं सुख नाहीं। तू हल सू धरती जोति बीज वाहै है अर खड्ग धारण करि राजानि कू सेवै है, अर लेखन वृत्ति करि उद्यम करै है, अर वाणिज्य वृत्ति करि वन अर समुद्र विषै बहुत भटकै है। अज्ञान तैं चिरकाल ए कष्ट करै है सो हाय हाय ! तू वालू रेत विषै तेल ढूंढै है। अर विष तैं जीया चाहै है। अहो प्राणी ! आशा रूप ग्रह ताके निग्रह तैं ही तोहि सुख है, तृष्णा करि सुख नाहीं। यह तैं न जाण्या तातैं अजाण हुवा परिश्रम करै है।

भावार्थ—गृहस्थाश्रम विषैं असि, मसि, कृषि, वाणिज्य ए ही उपाय सो सब दुख दाई। इनमे सुख नाहीं। खेती का भय तो प्रगट खेद निजरि ही आवै है। सदा क्लेश, कुग्रामवास, क्रिया की हीनता, मान भग, स्व चक्र परचक्र आदि सप्त ईति का भय। अर खड्गधारी आजीविका निमित्त नृपति कू सेवै है सो नृपनि सेवा महा कष्टकारी है। जीवका कै अर्थि जीवि ही दे है। अर व्यापारी व्यापार के अर्थि समुद्रनि मैं जहाज बैठे जाय हैं सो कबहुक जहाज ही डूबि जाय है। अर महा गभीर वननिमैं भटकै हैं। इनकै दुख कहाँ लौं कहैं। नाना प्रकार की हानि वृद्धि करि सदा व्याकुल ही रहे हैं। अर लेखनीधर लेखा करते करते खेद खिन्न होय

है। अरु प्रयाग्रन के अर्थि सदा पराधीन ही रहै है। इनि उपायनि मैं तू सुख चाहै है सो वालू रेत मैं तेल हूरे है। अर विषयैं जीया चाहै है। यह विपरीत बुद्धि तजि आशा रूप दाहा मह तरै अनादि मैं भ्रम्या है। या करि तैं कबहू सुख नहीं पाया। अब याके निग्रह तैं सुख है, सा तैं अब तक न भ्राम्यों तातैं भव भ्रमण किया।

आगै कहै हैं कि सुख का उपाय संतोष ही है। ठौर ठौर ग्रन्थनि मैं आशा का निग्रह ही उपदेश्या है सो यह न जानते प्राणी विपरीत चेष्टा करैं है।

आशाहुताशनग्रस्तवस्तूच्चैर्वंशजां जना ।
हा किलैत्य सुखच्छायां दुःखघमापनोदिन ॥ ४२ ॥

आशा रूपी अग्नि तैं जरे, कनककामिनी आदि वस्तुओं को निश्चयसेती भली जानि सुख के अर्थि आताप का निवारि व अर्थि आयकरि बांस की छायामहै सो वृथा है ताकरि घाम का आताप न मिटै।

भावार्थ—बांस की छाया तापकारी नाहीं विध्नकारी है। बांस आपस मैं घसि करि उठे तो बैठन हारा भस्म हो जाय। अर बाँस का गोमा निकसनी आवै तो तत्काल शरीर मिटि जाय। त्यौं ही विषय का सेवनहारा या भव वौ इनके उपार्जनतैं तथा सेवन तैं अथवा वियोग तैं महा दुखी होय है। सदा तृष्णा करि व्याकुल भया खेद रूप है। अर पर भव नरक निगोद हूँ प्राप्त होय है।

ए विषय सर्वथा सुखकारी नाहीं। ससारी जीव विवेक विना आशा रूप अग्नि करि ,जरथा कनक, कामिनी आदि वस्तुनि का सुख कै अर्थि अनुरागी होय है सो इनिमैं रच मात्र सुख नाहीं। ए भव भव दुखदाई हैं। या ससार असार विषैं सुख काहे का ? यह ससार की माया बाँस की छाया समान है, ग्रहिवे योग्य नाहीं, तजिवे योग्य है।

आगै कहै है कि दैव योग तैं काहू कै तुच्छ मात्र सुख प्राप्त भया सो स्थिर नाहीं। सो इह बात दृष्टात करि दृढ करै हैं —

(शार्दूल विक्रीडित छद)

खातेऽभ्यासजलाशयाऽजनि शिला प्रारब्धनिर्वाहिणा
भूयोऽभेदि रसातलावधि ततः कृच्छ्रात् सुतुच्छं किल।
क्षारं वार्युदगात्तदप्युपहतं पूति कृमिश्रेणिभिः
शुष्कं तच्च पिपासतोस्य सहसा कष्टं विधेश्चेष्टितम् ॥४४॥

अर्थ—निश्चय सेती या तृषातुर की तृषा पूर्ण न होय। उदयागति कष्टकारी है। कोऊ पुरुष जल की आशा करि निवॉण खोदने का अभ्यास करता भया सो खोदतै सतै शिला निकसी। तव खोदनहारा आरभ के सिद्धि करिवेकूँ बहुरि पाताल पर्यन्त खोदता भया। सो वडे कष्टतैं तुच्छ जल निकस्या सोऊ खारा अर दुर्गंध कृमिनि की पक्ति करि सजुक्त, सोऊ तत्काल सूखि गया। तातैं यह उद्यम कहा करै ? उदय की चेष्टा प्रवल है।

है। अवर प्रयोजन के अर्थि सदा पराधीन ही रहे है। इनि उपायनि मैं तू सुख चाहे है सो वालू रेत मैं तेल हेरै है। अर विपर्तें सोया चाहे है। यह विपरीत बुद्धि तजि, आशा रूप कोटा यह तेरे अनादि तैं लाग्या है। या करि तैं कबहू सुख नहीं पाया। अब याके निग्रह तैं सुख है, सो तैं अब तक न जान्यौं तातैं भव भ्रमण किया।

आगे कहे हैं कि सुख का उपाय सतोष ही है। ठौर ठौर सबनि मैं आशा का निग्रह ही उपदेश्या है सो यह न जानता प्राणी विपरीत चेष्टा करै है।

आशाहुताशनग्रस्तवस्तूच्चैर्वंशजां जना ।
हा किलैत्य सुखच्छायां दुःखघर्मापनोदिन ॥ ४२ ॥

आशा रूपी अग्नितैं जरे, कनककामिनी आदि वस्तुओं करि निश्चयसेती सबी जानि सुख के अर्थि आतताप का निवारि वे अर्थि आयकरि वांस की छायामहै सो वृथा है, ताकरि धाम का आताप न मिटै।

भावार्थ—वांस की छाया तापहारी नाहीं विषकारी है। वांस आपस मैं घसि जरि उठै तो बैठन हारा भस्म हो जाय। अर वांस का गोभा निकसनी आवै तो तत्काल शरीर भिदि जाय। त्यौं ही विषय का सेवनहारा या भव तौ इनके उपार्जनतैं तथा सेवन तैं अथवा वियोग तैं सदा दुखी होय है। सदा तृष्णा करि व्याकुल भया खेद रूप है। अर पर भव नरक निगोद कूं प्राप्त होय है।

आगै कहै हैं ऐसी कोऊ मानै है कि जो कछूक सपदा की वृद्धि होइ सो होहु। तथापि यह गृह स्थापना, धर्म, सुख, ज्ञान अर सुगति इनिका साधन है सो या भाँति मानै ताकूँ समझावै हैं -

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम् ।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः ॥४६॥

अर्थ—धर्म सोई है जा विषैं अधर्म नाहीं। अर सुख सोई है जा विषैं दुःख नाहीं। अर ज्ञान सोई है जा विषैं अज्ञान नाहीं। अर गति सोई है जहाँ तैं पाछा आवना नाहीं।

भावार्थ—जहाँ लेश मात्र हू हिंसादिक पाप है तहाँ धर्म नाहीं अर जहाँ सक्लेश रूप दुःख है तहाँ सख नाहीं। अर जहा सदेह रूप अज्ञान है तहाँ ज्ञान नाहीं। अर जहाँ जाइ करि बहुरि पाछा आइए, जन्म मरण होइ, सो गति नाहीं।

आगै कोऊ आशका करै है -जो ऐसे अविनाशी सुखादिक तो कष्ट साध्य हैं अर यह धन का उपार्जन सुख साध्य है, तातै याही विषैं प्रवृत्ति करिये, सो ऐसी आशका करन हारे कूँ समझावे हैं।

(वसततिलका छन्द)

वार्तादिभिर्विषयलोलविचारशून्यः
विलश्नासि यन्मुहुरिहार्थपरिग्रहार्थम् ।

भावार्थ—कोऊ कार्यों में उपाय करि अर्थ सिद्धि करूँ सो पुण्य के उदय बिना उपाय की सिद्धि न होय। सोई कथन दृष्टान्त करि दृढ़ करें हैं। काहू एक धनातुर पुरुष ने जल की आशा करि भूमि खोदने का अभ्यास किया सो खोदतें शिला निकसी। तब खेद खिन्न होय अति औंडा पाताल पर्यंत खोदा। तहाँ रंच मात्र जल निकस्या सोऊ खारा अर दुर्गंध छटनि करि भरया सोहू तत्काल सूकि गया। तातें याका किया का होय? उद्यम की चेष्टा बलवान है।

आगे कोऊ कहे है कि मैं न्याय वृत्ति करि अर्थ का उपार्जन करूँ अर सपदा की वृद्धि करि सुख भोगऊँ सो ऐसी बात कहै ताहि समझावे हैं।

शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते सतामपि न सपदः।
नहि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः कदाचिदपि सिन्धवः ॥४५॥

अहो भाई! न्याय के आचरण करि उपार्ज्या जो धन ताहू करि उत्तम पुरुषनि हू के सुख सपदा नाही बढे है। जैसे निर्मल जल करि कदाचित् भी समुद्र नाही पूर्ण होवे है।

भावार्थ—अयोग्य आचरण तौ सर्वथा त्याज्य ही है। अर योग्य आचरण करि उपार्ज्या जो धन ताहू करि विशेष संपदा की वृद्धि नाहीं। जैसे कदाचित् हू निर्मल जल करि समुद्र नाहीं पूर्ण होय है। तातें न्यायोपार्जित धन हू की तृष्णा तजि सर्वथा निस्पृह रहो।

आगै कहै हैं ऐसी कोऊ माने है कि जो कछूक सपदा की वृद्धि होइ सो होहु। तथापि यह गृह स्थापना, धर्म, सुख, ज्ञान अर सुगति इनिका साधन है मो या भाँति मानै ताकूँ समझावै हैं -

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम् ।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सागतिर्यत्र नागतिः ॥४६॥

अर्थ—धर्म सोई है जा विषै अधर्म नाहीं। अर सुख सोई है जा विषैं दुःख नाहीं। अर ज्ञान सोई है जा विषै अज्ञान नाहीं। अर गति सोई है जहाँ तैं पाछा आवना नाहीं।

भावार्थ—जहाँ लेश मात्र हू हिंसादिक पाप है तहाँ धर्म नाहीं अर जहाँ सक्लेश रूप दुःख है तहाँ सुख नाहीं। अर जहा सदेह रूप अज्ञान है तहाँ ज्ञान नाहीं। अर जहाँ जाइ करि बहुरि पाछा आइए, जन्म मरण होइ, सो गति नाहीं।

आगै कोऊ आशका करै है -जो ऐसे अविनाशी सुखादिक तो कष्ट साध्य है अर यह धन का उपार्जन सुख साध्य है, तातै याही विषैं प्रवृत्ति करिये, सो ऐसी आशका करन हारे कूँ समझावे हैं।

(वसततिलका छन्द)

वार्तादिभिर्विषयलोलविचारशून्यः
विलश्नासि यन्मुहुरिहार्थपरिग्रहार्थम् ।

तच्चेष्टितं यदि सकृत् परलोकबुद्धया
न प्राप्यते ननु पुनर्जननादिदुःखम् ॥४७॥

अर्थ—हे विषय के लोलुपी! विचार रहित! तू जो असि, मसि, कृषि वाणिज्यादि उद्यम करि धन के उपार्जन निमित्त बारम्बार क्लेश करै है सो ऐसा उपाय जो एक बार परलोक के अर्थि करै तौ बहुरि जन्म मरणादि दुःख न पावै। अहो! तू धन का साधन छोड़ि धर्म का साधन करि।

भावार्थ—जो विषय के लोलुपी हैं अर जिनमें विचार नाहीं, खेती आदि उपार्यनि करि धन के अर्थि बारम्बार उद्यम करै हैं सो भी गुरु दयाल होय भव्यजीवनि कूँ उपदेश दे हैं—अहो! जैसा तू धन क अर्थि बारम्बार क्लेश करै है तैसा जो एक बार हू परलोक के अर्थि उद्यम करै तो बहुरि जन्म मरणादि दुःख न पावै भव सागर तैं तिरै।

आगै परलोक क उपाय विषैं दृढ़ता उपजायवे निमित्त बाह्य पदार्थनि विषैं राग द्वेष कूं छुड़ावै हैं।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

सङ्कल्प्येदमनिष्टमिष्टमिदमित्यज्ञातयाथात्म्यको
बाह्ये वस्तुनि किं वृथैव गमयस्यासज्य कालं मुहुः।
अन्तः शान्तिमुपैहि यावदुदयप्राप्तान्तकप्रस्फुरज्—
ज्वालाभीषणजाठरानलमुखे भस्मीभवन्नो भवान् ॥४८॥

अर्थ—हे जीव ! तू यथार्थ वस्तु कूँ नाहीं जानै है। यह इष्ट, यह अनिष्ट, ऐसी कल्पना करि वाह्य वस्तुनि विषैं वारम्वार आसक्त होय करि कहा वृथा काल गमावै है। अंतःकरण विषै शांत दशा कौं प्राप्त होहु। जो लग उदय कौं न प्राप्त भया जो निर्दय काल ताकी दैदीप्यमान ज्वाला करि भयानक जो उदराग्नि ताकै मुख विषैं भस्म नहीं होय ता पहली अंतःकरण विषैं राग द्वेष का त्याग करि परम शांत दशा कूँ प्राप्त होहु।

भावार्थ—जे यथार्थ वस्तु का स्वरूप नाहीं जानै हैं ते स्त्री राज्यादिक कूँ भला जानै हैं, अर दुःख, दरिद्र, रोगादिक कूँ बुरा जानै है। ऐसी इष्ट अनिष्ट कल्पना कार वाह्य वस्तुनि विषैं आसक्त होय वृथा काल गमावै है, सो श्री गुरु भव्य जीवनि कौं उपदेश देवै हैं। अहो भव्य ! इह इष्ट अनिष्ट कल्पना तजि वाह्य वस्तुनि विषैं बारम्वार आसक्त होय कहा वृथा काल गमावै है। जौं लग तू काल के भयानक जठराग्नि विषैं भस्म न होय ता पहली राग द्वेष कूँ तजि अन्तःकरण विषैं शांत दशा कूँ प्राप्त होहु। यह इष्ट अनिष्ट कल्पना मिथ्या है।

आगै कहै हैं कि यह आशारूप नदी तोहि वहाय करि भव समुद्र विषै डारै है तातैं ता थकी तिरिवे का उपाय करि, ऐसा दिखावै हैं—

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

आयातोस्यतिदूरमङ्ग परवानाशासरित्प्रेरितः,
किं नावैषि ननु त्वमेव नितरामेनां तरीतुं क्षमः।

स्वातन्त्र्यं व्रज यासि तीरमचिरान्नो चेद् दुरन्तान्तक-
ग्राहव्याप्तगभीरवक्त्रविषमे मध्ये भवाब्धेर्भवे ॥४६॥

अर्थ—हे मित्र ! तू पर वस्तु का अभिलाषी भया सता आशा रूप नदी का प्रेर्या अनादि काल का अनंत जन्म मरता अति दूर तैं आया है, सो तू कहा न जाने है । यह आशा नदी और काहू उपाय करि न तिरी जाय । या आशा नदी कू आत्मज्ञान करि तू ही तिरिवे समर्थ है । तातैं अब शीघ्र ही स्वाधीनता कूं प्राप्त होहु । या आशा नदी कूं तिरि, पैलो तीर जाहु, नांतरि आशा नदी का प्रेर्या भवसागर के मध्य डूबैगा । कैसा है भव सागर—दुःखकरि है अन्त जाका । ऐसा जो काल रूप ग्राह ताका व्याप्या जो गंभीर मुख ता करि अति भयानक है ।

भावार्थ—भोग तृष्णा रूप आशा नदी ता मैं तू अनादिकाल तैं बहा चल्या आवै है । सो याके तिरिवे को आत्मज्ञान करि तू ही समर्थ है और उपाय नाहीं । ज्ञान ही सूं आशा मिटै । तातैं अब पराधीनता तजि शीघ्र ही स्वतन्त्र होहु । आशा नदी के पार जाहु नांतरि संसार समुद्र के मध्य डूबैगा । या संसार सागर के विषै काल रूप ग्राह अति प्रबल है । सदा मुख पसारै ही रहै है । ताका गंभीर मुख अति विषम है । जगत कूं निगलै है । तातैं तू काल तैं बच्या चाहै भव सागर के मध्य न पर्या चाहै तो आशा रूप नदी के पार जाहु ।

आगे कहै हैं कि विषय की वांछा करि व्याकुल भया जो तू सो अभोग्य हू कूं भोगवै है ।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

आस्वाद्याद्य यदुज्झितं विषयिभिर्व्यावृत्तकौतूहलै--
स्तद् भूयोप्यविकुत्सयन्नभिलषत्यप्राप्तपूर्वं यथा ।
जन्तो! किं तव शान्तिरस्ति न भवान् यावद्दुराशामिमा--
मंहः संहतिवीरवैरिपृतनाश्रीवैजयन्तीं हरेत् ॥५०॥

अर्थ—या ससार विषैं नष्ट भयो है कौतूहल जिनकै ऐसे विषयी जीवनि नैं भोगि करि जे पदार्थ छाँडे तिनको तू वहुरि अभिलाषा करै है। ऐसा रागी भया है, जानिये कि मैं पूर्वं ए न पाये, सो ये तो तै हू अनन्त वार भोगये अर अनत जीवनि अनत वार भोगए, सो तोय इनिकी सूग न आवै। पराई उच्छिष्ट तथा अपनी उच्छिष्ट सूग आवणी है। इनि विषयनि करि तेरे तथा और जीवनि के कहा शाति है, कथ हूँ नाहीं। जौ लग ए दुराशा, अपराध के समूह रूप प्रवल वैरी तिनकी सेना की वैजयती कहिये जीति की ध्वजा समान जो आशा, ताहि तू न हरै तौ लग तेरे शाति नाहीं।

भावार्थ—शाति का मूल आशा का परित्याग है। जौ लग अपराध रूप वैरीनि की सेना को ध्वजा समान यह आशा तू न हरै तौ लग शाति कहाँ? अर ए भोग वस्तु विषय जीवनि सेय छाँडी अर तैहू अनत वार सेय सेय छाँडी सो इनि के सेवन तैं तोहि सूग न आवै। तू तो ऐसा रागी भया लेवै है जानिये कि मैं पूर्वैं न पाई। यह जगत की माया, जगत की झूठ, अर तेरी झूँठि का कहा सेवन करै, यह तोकूँ उचित नाहीं।

भाग कहै हैं कि ता भाता तू न तजतौ भया तू और क्या किया चाहै है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

भक्त्वा भाविभवांश्च भोगिविषमान् भोगान् बुभुक्षुर्भृशं
मत्वाप्यपि समस्तभीतिकरुणा सर्वे जिघांसुर्मुधा।
यद्यत् साधुविगर्हितं हतमतिस्तस्यैव धिक् कामुकः
कामक्रोधमहाग्रहाहितमना किं किं न कुर्याज्जन ॥५१॥

अर्थ—कारे नाग समान आगामि के दरम हारे ए भोग तिनि के भोगवे की है अति अभिलाषा जाकै ऐसा जो तू सो होनहार भव बिगारि अपर्यंत मरख मरि करि सब सुख वृथा घातता भया। कैसा है तू आप अविवेकी परलोक के भय तैं रहित, निर्दय, कठोर परिणामी, जो साधुनि करि निंद्य वस्तु ताही का अभिलाषी भया। धिक्कार कामी पुरुषनि कूं। काम क्रोध महा ग्रह तिनिकै वशि है मन जाका सो प्राणी कहा कहा न करे। सब ही अकार्य करे।

भावार्थ—ये भोग कारे नाग समान विष के भरे तिनमैं तू अति अभिलाषा करि कुगति का बंध किया। परलोक भय भर जीवनि की दया न करी सो वृथा अपने सब सुख घाते। धिक्कार होहु या बुद्धि कूं। जो २ वस्तु साधु निंदी ताही का तू अभिलाषी भया। काम क्रोध महा भयकर ग्रह हैं इनिकै वशीभूत भया कहा कहा अनर्थ न करै? जीव हिंसा असत्य चोरी कुशील

वहु आरम्भ धन, तृष्णा इत्यादि अनेक पाप करै। अनर्थ के मूल ए विषय कषाय ही हैं।

आगै कहै हैं कि जगत की स्थिति क्षणभगुर ताहि न देख ताकै भोगनि विषै वांछा होय है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

सो यस्याऽजनि यः स एव दिवसो ह्यस्तस्य संपद्यते
स्थैर्यं नाम न कस्यचिज्जगदिदं कालानिलोन्मूलितम्।
भ्रातर्भ्रान्तिमपास्य पश्यसितरां प्रत्यक्षमक्ष्णोर्न किं
येनात्रैव मुहुर्मुहुर्बहुतरं वद्धस्पृहो भ्राम्यसि ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे भ्रात ! तू भ्राति तजि, कहा आँखिनि करि प्रत्यक्ष न देखे है। यह जगत काल रूप पवन करि निर्मूल करिए है। काहू कै स्थिरता नाम मात्र हू नाहीं। जा दिवस का प्रभात होय है सो ही दिवस अस्त कूँ प्राप्त होय है। तातैं तू कौन कारण जगत विषैं बारम्बार आशा बाधि भ्रमै है।

भावार्थ—इह ससार का चरित्र क्षणभगुर है। जो पर्याय धरै सो नाश कौं प्राप्त होय है। जैसे दिवस के आरम्भ विषैं प्रभात होय अर वही दिवस सध्या समै अस्त होय। यह जगत काल रूप प्रचड पवन करि चचल है। बाल, वृद्ध सब ही यह जानै हैं। तोहि कहा न सूझै है। तू या ससार असार विषैं आशा

भाग कहै है कि ता मारा मू न तजतौं थका तू और कहा किया चाहै है।

(शार्दूल विक्रीडत छन्द)

भंक्त्वा मातिभवांम भोगिविषमान् भोगान् बुभुक्षुर्भृशं
सभृत्यापि समस्तभीतिकरुणं सर्वे प्रियांसुर्मृषा ।
यद्यत् साधुविगर्हितं हतमतिस्तस्यैव धिक् कामुक
कामक्रोधमहाग्रहाहितमना किं किं न कुर्याज्जनः ॥५१॥

अर्थ—कारे नाग समान भयानि के हरन हारे ए भोग तिनि के भोगवे की है अति अभिलाषा जाकै ऐसा जो तू सो होनहार भव बिगारि अपंडित मरण मरि करि सब सुख वृथा घातता भया। कैसा है तू आप अविवेकी परलोक के भय तैं रहित, निर्दय कठोर परिणामी, जो साधुनि करि निंद्य वस्तु ताही का अभिलाषी भया। धिक्कार कामी पुरुषनि कूं। काम क्रोध महा मद तिनि के वशि है मन जाका सो प्राणी कहा कहा न करै। सब ही अकार्य करै।

भावार्थ—ये भोग कारे नाग समान विष के भरे तिनमैं तू अति अभिलाषा करि कुगति का बंध किया। परलोक भय भर जीवनि की दया न करी सो वृथा अपने सब सुख घाते। धिक्कार होहु या बुद्धि कूं। जो २ वस्तु साधु निंदी ताही का तू अभिलाषी भया। काम क्रोध महा भयंकर मद हैं इनिकै वशीभूत भया कहा कहा अनर्थ न करै ? जोव हिंसा असत्य, चोरी कुशील

उपजै। अर ये नर भव अति दुर्लभ पाया ताहू मैं विषय तृष्णा करि सुख का लेश न पाया। काम के तीक्ष्ण बाण जे मदोन्मत्त स्त्रीनि को कटाक्ष तिनि करि पीड्या, दाहे के झुलसे ऊगते वृक्ष की सी दशा को प्राप्त भया। सो इह चितारि जगत की वांछा तैं निवृ त्त होहु। जगत की वाछा मृगतृष्णावत् है। जैसे कोऊ मृग वन विषै तृषातुर भाडलो कौं जल जानि दौड्या, सो जल न देखि खेद कू प्राप्त भया। तैसैं तू विषय तृष्णा करि पीडित कनक, कामिनी आदि वस्तुनि कूँ सुख के कारण जानि वृथा अभिलाषी भया। तहाँ लेश मात्र हू सुख नाहीं। काहे तैं, जो ए पदार्थ दुःख ही के कारण हैं। काहू कूँ तौ किछू ही न मिले ता करि खेद खिन्न रहै। अर कदाचित् काहू कूँ कछूइक मिलै तो मनोवाछित न मिलै ता करि व्याकुल रहै। अर कदाचित् कोऊ मन की चाही हू वस्तु मिलि जाय तो थिर नाहीं। तातैं सदा तृषातुर ही रहै। अर ये इन्द्रिय पाँचूँ ही जीवनि कूँ दुःखदाई हैं। जिनि अति अनुराग करि एक एक हू इन्द्रिय का विषय सेया ते तृप्ति हू न भये, क्लेश अर नाश कूँ प्राप्त भये। हाथी तौ स्पर्श इन्द्रिय के अनुराग करि कागद की हथणी कूँ साक्षात् जाँणि ताकै निकटि आया सो खाडे मैं पड्या, सो पराधीन होय नाना दुःख भोगवता भया। अर रसना इन्द्रिय के अभिलाष करि मीन धीवर के जाल में पड्या सो प्राण ही तैं गया। अर नासिका इन्द्रिय के वशि होय भ्रमर कमल की वासतैं तृप्ति न भया सो सूर्यास्त समय मैं कमल मुद्रित भया तामैं यह रुकि मरण कू प्राप्त भया। अर नेत्र इन्द्रिय के

काहे कूँ भ्रमण करे है ? क्योंं सुधि करि वस्तु का स्वरूप यथार्थ क्यों न जाने ? विनश्वर वस्तु विषैं कहा वांछा करे ?

आगे कहे हैं कि या प्रकार जगत के स्वरूप कूँ क्षण भंगुर न विचारतो आ तू सो तैं चतुर्गति संसार विषैं अनेक प्रकार दुःख भोगये।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

संसारे नरकादिषु स्मृतिपथेप्युद्वेगकारीण्यलं
दुःखानि प्रतिसेवितानि भवता तान्येवमेवासताम् ।
तथावत् स्मरसि स्मरस्मितशितापाङ्गैरनङ्गायुधै-
र्वामानां हिमदग्धमुग्धतरुवद्यत्प्राप्तवान् निर्धन ॥५३॥

अर्थ—हे जीव ! तैं या संसार विषैं नरकादि योनि में अत्यन्त दुःख भोगये ? जिनिके स्मरण किये व्याकुलता उपजै। सो उन दुःखनि की बात तो दूरि ही रहो, या नर भव ही विषैं निर्धनता का धरन हारा तू नाना प्रकार के भोगनि का अभिलाषी काम करि पूर्ण जे की तिनि का मद हास्य अर काम के बाण तिनि के तीक्ष्ण कटाक्ष तिनि करि वेश्या सेवा ताहे के मारे पाला सुकी सी दशा कौं प्राप्त भया सो य दुःख ही विचारि।

भावार्थ—तू अनादि काल का अविवेकी है सो क्षण भंगुर जगत की माया सूँ अनुराग करि संसार विषैं नरक निगोदादिक मैं अनन्त दुःखनि का भोगनहारा तू भया। सो उन दुःखनि की बात तो दूरि ही रहो जिनका चितवन ही किये अत्यन्त क्लेश

मे पड्या है, जरा करि ग्रसित है। वृथा उन्मत्त होय रह्या है। कहा आत्म कल्याण का शत्रु है अकल्याण विर्पै वॉधी है वाछा तैं।

भावार्थ—ससार विर्पै शरीर का ग्रहण करि जीव जन्म धरै है। सो ससार का मूल कारण कुबुद्धि, अज्ञानी जीवनि कै अनादि तैं है। तातैं देह विपै आत्मबुद्धि करि नवे नवे शरीर धरै है सो नारकी का शरीर तो महा दु ख रूप अनेक रोग मई है। अर देवनि का शरीर रोग रहित है, परतु मन की चिंता करि महा दु ख रूप है। अर मनुष्य तिर्यचनि का शरीर अनेक रोगनि का निवास त्रिदोष रूप सप्त धातु मई महा अपवित्र है। तिनि मैं मनुष्य का शरीर महा मलिन आधि कहिये मन व्यथा, अर व्याधि कहिये शरीर की पीड़ा, तिनि करि युक्त महा दुराचारी, जीवनि का घाती, निर्दय परिणामी, असत्यवादी, पर धन का हरणहारा, पर दारा का रमणहारा, बहु आरभ परिग्रही, पर विघ्नसतोषी, ऐसै देह तैं कहा नेह करै? तू क्रोध, 'मान, माया, लोभ के योग तैं महा अविवेकी अपणॉ बुरा आप करै है। आत्मघाती आप कूँ आप ठिगै है। अनेक जन्म मरण किये अर अब करनें कूॅ उद्यमी है, जरा करि ग्रसित है तौऊ परलोक का भय नाहीं, सो कहा उन्मत्त भया है। अकल्याण विर्पै प्रवर्त्या सो कहा आप का वैरी ही है। अत्र गुरु का उपदेश मानि देह तैं नेह तजि विषय कषाय तैं पराङ् मुख होहु। अनाचार तजि, आत्म-

विषयनि आसक्त होय पतंग दीपक की शिखा कूं मनोज्ञ जानि पड्या सो भस्म होय गया। कारण इन्द्रिय की चाहि तैं हिरण राग का अनुरागी होय शिकारी के बाण तैं मारया मरता भया। या भाँति एक एक इन्द्रिय के विषय सेवन तैं या दशा कूं प्राप्त भए। अर जे पाँचूं ही इन्द्रिय के विषय सेवैं सो भव समुद्र मैं दुःख पावै ही पावै। तातैं तू विषयाभिलाष तजि, सुख का कारण वीतराग भाव कूं अंगीकार करि।

आगे कहै हैं कि संसार विषै परिभ्रमण करता ऐसे चरित्र आपके प्रत्यक्ष देखता तू क्यों न वैराग्य कूं प्राप्त होय है।

(शार्दूल छन्द)

उत्पन्नोस्यसिदोषधातुमलवद् देहोऽसि कोपादिमान्
साधि व्याधिरसिप्रहीणचरितोऽस्यऽस्यात्मनो वञ्चकः।
मृत्युव्यात्तमुखान्तरोऽसि जरसा ग्रस्तोऽसि जन्मिन् ! वृथा
किं मत्तोस्यसि किं हितारिरहितो किं वासि बद्धस्पृहः ॥५४॥

अर्थ—हे अनंत जन्म के धरणहारे ! अज्ञानी जीव ! तू या संसार विषै अनेक योनि मैं उपज्या महा दोष रूप धातु अर मल तिनि करि युक्त है देह तेरा, अर क्रोध, मान माया, लोभ का धारक तू मन की चिंता अर तन की व्याधि तिनि करि पीड़ित है। हीन आचार ज अभक्ष्य भक्षण अयोग्य आचरण तिनि करि दुराचारी है। आप का ठिगन हारा है। तू जन्म मरण के दुःख

मे पड्या है, जरा करि ग्रसित है। वृथा उन्मत्त होय रहा है। कहा आत्म कल्याण का शत्रु है अकल्याण विपैं वॉधी है वाछा तैं।

भावार्थ—ससार विपैं शरीर का ग्रहण करि जीव जन्म धरै है। सो ससार का मूल कारण कुवुद्धि, अज्ञानी जीवनि कै अनादि तैं है। तातैं देह विपैं आत्मवुद्धि करि नवे नवे शरीर धरै हैं सो नारकी का शरीर तो महा दु ख रूप अनेक रोग मई है। अर देवनि का शरीर रोग रहित है, परतु मन की चिंता करि महा दु ख रूप है। अर मनुष्य तिर्यंचनि का शरीर अनेक रोगनि का निवास त्रिदोप रूप सप्त धातु मई महा अपवित्र है। तिनि मैं मनुष्य का शरीर महा मलिन आधि कहिये मन व्यथा, अर व्याधि कहिये शरीर की पीड़ा, तिनि करि युक्त महा दुराचारी, जीवनि का घाती, निर्दय परिणामी, असत्यवादी, पर धन का हरणहारा, पर दारा का रमणहारा, वहु आरभ परिग्रही, पर विघ्नसतोषी, ऐसैं देह तैं कहा नेह करै ? तू क्रोध, 'मान, माया, लोभ के योग तैं महा अविवेकी अपणॉ बुरा आप करै है। आत्मघाती आप कूँ आप ठिगै है। अनेक जन्म मरण किये अर अव करनें कूॅ उद्यमी है, जरा करि ग्रसित है तौऊ परलोक का भय नाहीं, सो कहा उन्मत्त भया है। अकल्याण विपैं प्रवर्त्या सो कहा आप का वैरी ही है। अव गुरु का उपदेश मानि देह तैं नेह तजि विपय कपाय तैं पराङ्मुख होहु। अनाचार तजि, आत्म-

कल्याण करि। बंध के कारण रागादि परिणाम तिनि का अभाव करि।

आगे कहै हैं कि आत्मा के हितकारी नाँही ए विषय तिनि विषैं सू अनुरागी भया है। परंतु वांछित विषय की प्राप्ति बिना केवल क्लेश ही भोगवे है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

उग्रग्रीष्मकठोरघर्मकिरणस्फूर्जद्गभस्तिप्रभैः
संतप्तः सकलेन्द्रियैरयमहो संवृद्धतृष्णो जनः ।
अप्राप्याभिमतं विवेकविमुखः पापप्रयासाकुल-
स्तोयोपान्तदुरन्तकर्दमगतक्षीणोक्षवत् क्लिश्यते ॥५५॥

अर्थ—यह प्राणी विवेक तैं पराङ्मुख इन सब इन्द्रियनि करि सन्तापमान भया। बढ़ी है तृष्णा जाके सो मन वांछित वस्तुनि कूँ न पाय करि अनेक पाप रूप उपाय करि व्याकुल होय है जैसें जल के समीप विषम जो कीच ता विषैं फँस्या दुर्बल बूढ़ा बलध दुःख भोगवै है। कैसा है ए इन्द्रिय रूप जो ग्रीष्म ऋतु ता विषै तीव्र जो सूर्य ताकी तप्तायमान जे किरण तिनि समान आताप कारी है।

भावार्थ—जैसी तृषा की बढ़ावनहारी ग्रीष्म के सूर्य की प्रज्वलित किरण तैसी प्रज्वलित ए इन्द्रिय तिनि करि बढ़ी है तृष्णा जाकै ऐसा जो अविवेकी प्राणी सो मन वांछित वस्तुनि कूँ

न पाय व्याकुल होय है। जैसे बूढ़ा, दुर्बल बलद तृषातुर जल के अर्थि सरोवरादि के तीर गया सो जल तक तो न पहुँच्या अर बीचि ही कीच मे फँस्या क्लेश भोगवे है तैसे विषय के अर्थि उद्यम करि मन वाञ्छित विषयनि कूँ न पाय क्लेश रूप होय है। विषय तृष्णा महा क्लेशकारी है। यह तृष्णा ज्ञानामृत ही तैं उपसमैं।

आगैं कोऊ प्रश्न करै है कि जिनकूँ मन वाञ्छित विषयनि की प्राप्ति नाहीं तेतौ क्लेश भोगवते कहे सो प्रमाण, परंतु जे इन्द्र चक्रवर्त्यादिक तिनके तो विषय पूर्ण हैं सो क्लेशनि की शांतता होयगी। या भाँति प्रश्न करै हैं ताहि समझावै हैं।

(अनुष्टुप्छन्द)

लब्धेन्धनोज्वलत्यग्निः प्रशाम्यति निरन्धनः

ज्वलत्युभयथाप्युच्चैरहो मोहाग्निरुत्कटः ॥५६॥

अर्थ—अहो भव्य जीव! अग्नि है सो इंधन के योग तैं प्रज्वलित होय है, अर इंधन के वियोग तैं बुझि जाय है। अर यह मोह रूप अग्नि अति प्रबल है। परिग्रहरूपी इंधन के योग तैं तृष्णा रूप होय है। अर परिग्रह की अप्राप्ति तैं व्याकुलता रूप होय प्रज्वलै है। यह दोऊ प्रकार प्रज्वलित है। तातैं मोहाग्नि समान और अग्नि नाहीं।

भावार्थ—और अग्नि तो इंधन के योग तैं प्रज्वलित होय

और ईंधन के वियोग तैं बुझि जाय। अर यह मोहाग्नि परिग्रह के बढ़ते तो तृष्णा रूप होय अर परिग्रह के घटते व्याकुलता रूप होय। जब असाता के योग तैं कछू न मिलै तब तब दुखी होय। अर साता क योग तैं कछू मिलै तब तृष्णा बढ़ती जाय सौ सूं हजार हजार सूं लाख या भाँति अधिक बढ़ती जाय संतोष बिना सुख नाहीं। तातैं दोऊ प्रकार मोहाग्नि दाहक ही, है। कोई विवेकी जीव शांत भाव रूप जल करि याहि उप समावै तब सुखी होय।

आगे कहै हैं कि विषय सुख क साधक जे स्त्री आदि पदार्थ तिनि विषैं प्रवृत्ति प्राणीनि के मोह क माहात्म्य तैं है सो मोह कूं निद्रा रूप वर्णन करै है।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

किं मर्मण्यभिदन्न भीकरतरो दुष्कर्म गर्मद्रुगम्
किं दुःख ज्वलनावली विलसितैर्नालेढि देहश्चिरम्।
किं गर्जयमतूर्य भैरव रवान्नाकर्णयन्निर्णयन्
येनायंन जहाति मोहविहितां निद्रामभद्रां जनः ॥५७॥

अर्थ—कहा पाप कर्म रूप मुद्गर या जीव के मरम कूं भेदता संता अत्यंत भयकारी नाहीं? सर्वथा भयकारी ही है। अथवा कहा दुःख रूप अग्नि की पंक्ति क प्रज्वलित होन करि या देह नाहीं जरै है? अपितु जरै है। अर कहा गाजता जो यम राज ताके वादित्रनि के भयंकर शब्द यह नाहीं सुनै है? सदा ही

सुनै है। कौन कारण यह भौदूजन अकल्याण रूप जो मोह जनित निद्रा ताहि नाँही तजै है ?

भावार्थ—जो महा निद्रा के वशि होय सोऊ एते कारण पाय जाग्रत होय हैं। जो कोऊ मुद्गर की चोट मरम की ठौर दे तो निद्रा जाती रहे अथवा अग्नि का आतप देह कूँ लागै तो निद्रा जाती रहे। तथा वादित्रनि के नाद सुनैं तौ निद्रा जाती रहै। सो ये अविवेकी जन पाप कर्म के उदय रूप मुद्गरनि की मरम की ठौर मारिये है अर दुःख रूप अग्नि करि याका देह जरै है। अर आजि यह मूवा, आजि यह मूवा ए शब्द यम के वादित्रनि के नाद दोऊ निरंतर सुनै है। तोऊ यह अकल्याणकारिणी मोह निद्रा नाहीं तजै सो बडा अचिरज है।

आगै कहै हैं कि मोह जनित निद्रा के वश तैं यह जीव दुःख रूप असार ससार विषैं रति करै है।

(सार्दूल विक्रीडित छन्द)

तादात्म्यं तनुभिः सदानुभवनं पाकस्य दुष्कर्मणो
व्यापारः समयं प्रति प्रकृतिभिर्गाढं स्वयं वन्धनम् ।
निद्रा विश्रमणं मृतेः प्रति भयं शश्वन्मृतिश्च ध्रुवं
जन्मिन् ! जन्मनि ते तथापि रमसे तत्रैव चित्रं महत् ॥५८॥

अर्थ—हे जन्म मरण के धरनहारे ससारी जीव ! तेरे या ससार विषैं निश्चय सेती एते दुःख हैं तौहू संसार ही विषै

अनुराग करै है सो यह महा अविरभ है। कौन कौन दुःख हैं सो विचारि। प्रथम तो महा क्लेश का कारण तेरा शरीर तासूं तेरा सम्बन्ध है। सदा देह सूं देहांतर गमन करै है अर पाप कर्म के फल दुःख सदा भोगवै है। अर समय समय कर्म की प्रकृतिनि करि आप गाढा बंधै है यही व्यापार है। अर निद्रा विषैं विश्राम करै है अर काल तैं डरै है अर निश्चय सेती निरंतर मरै है।

भावार्थ—जगत की ऐसी रीति है—जो दुःख का स्थानक होय तहाँ कोऊ न रमै। सो यह संसार सागर महा दुःख का निवास ता विषैं तू रमै है, सो यह शरीर का धारण सोई दुःख। सबमैं उत्कृष्ट मनुष्य का शरीर ता करि मुक्ति होय ताहू की यह दशा। प्रथम तो पिता का वीर्य अर माता का रुधिर या की उत्पत्ति। अर गर्भवास महा अशुचि तामैं निपस अधामुख रहना अर माता की अति उष्णा सहना इत्यादि नाना प्रकार के दुःख। अर गरभ तै निकसतैं महा दुःख। बहुरि बाल अवस्था मैं अति अज्ञान दशा सो कछु सुधि ही नाहीं। अर जोबन अवस्था मैं काम, क्रोध, लोभ मान माया मोहादि अनेक विकार तिनि करि सदा व्याकुल अर वृद्ध अवस्था विषैं अति शिथिलता। अर देवनि का शरीर पाया तामैं मन की व्यतिव्यथा, बडी ऋद्धि के धारी देवनि कूं देखि आपकूं न्यून गिनि दुखी होय, अर आपनी देवांगनानि कूं तथा और देवनि कूं मरते देखि दुखी होय, अर आपना मरना आवै तब तो अति ही दुःखी होय। अर तिर्यंच गति के अनेक

दु ख सो विद्यमान देखिए ही हैं। अर नारकीनि के दु ख की कहा बात ? वैतो दु खमई ही हैं। तिनि कूँ छेदन भेदन ताडन ताप-नादि शरीर के दु ख अर मन कूँ महा क्लेश अर क्षेत्रजनित शीत, उष्ण, दुर्गंधादिक का दु ख, अर सकल रोग तहाँ पाइए। अर परस्पर दु ख, अर तीजे नरक लग असुर कुमारनि का दु ख सो कहा लग कहिये। शरीर दु ख ही का निवास है। पाप कर्म का फल क्लेश सदा भोगवना, अर समय २ कर्म की प्रकृतिनि करि गाडा बँधना, अर निद्रा विषैं वेसुधि होना, आयु के अन्त मरना, एते दु खनि मे सुख मानना सो बड़ा अचिरज है। तातैं इनि दु खनि तैं उदास होय सुख का मूल जो जगत तैं उदासीनता सोई अगीकार करि।

आगै कहै है कि जा शरीर सूँ एकता मानि अनुराग करै है सो कैसा है यह दिखावै हैं —

(शार्दूलछन्द)

अस्थिस्थूलतुलाकलापघटित नद्धं शिरास्नायुभि-
श्चर्माच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्त सुगुप्तं खलैः।
कर्मारातिभिरायुरुच्चनिगलालग्नं शरीरालयं
कारागारमवेहि ते हतमते प्रीतिं वृथा मा कृथाः ॥ ५९ ॥

अर्थ—हे निर्बुद्धि ! यह शरीर रूप घर तेरा वन्दीगृह समान है। यासूँ वृथा प्रीति मति करै। कैसा है शरीररूप वन्दीगृह, अस्थि रूप स्थूल पाषाण तिनि के समूह करि घड्या है। अर

नसा जाल रूप बन्धन करि बन्ध्या है। अर चरम सौं आछाया है। अर रुधिर करि सजल जो मांस ता करि लिप्त है। अर दुष्ट कर्म रूप बैरोनि करि रच्या है। अर आयु कर्मरूप गाढी भारी बेडी तिनि करि युक्त है।

भावार्थ—बन्दीगृह समान और दुःख का कारण नाहीं। सो बन्दीगृह तो स्थूल पाषाणनि के समूह करि घटित है, अर शरीर हाडनि करि घड्या है। अर बन्दीगृह बन्धन करि बांधिये है प नशा जाल करि बेढ्या है। अर वह तू ऊपरि सूँ आच्छादित है यह चर्म करि आच्छादित है, अर रुधिर सहित मांस करि लोप्या है। वह दुष्टनि करि रच्या है,यह कर्मरूप दुष्ट बैरीनि करि रच्या है। अर वह बेडोनि करि युक्त है, यह आयु रूप बेडिनि करि युक्त है। सो ऐसा कौन कुबुद्धि है जो बन्दीगृह तैं प्रीति करै? तू महा निर्बुद्धि, जो शरीर रूप बन्दीगृह तैं प्रीति करै है सो तोहि या सूँ प्रीति उचित नाहीं।

आगे कहै हैं कि शरीर तो बन्दीगृह समान बताया अर और हू वस्तु धर कुटुम्बादि जिन सूँ तेरी प्रीति है सो कैसे है यह दिखावे हैं।

(मालिनी छन्द)

शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलं
चिरपरिचितदारा द्वारमापद्गृहाणाम्।
विपरिमृशत पुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्
त्यजत भजत धर्मं निर्मलं शर्मकामा ॥६०॥

अर्थ—घर तेरा शरण रहित है जहाँ तोहि कोऊ बचावन हारा नाहीं। ए बांधव बन्ध के मूल हैं। अर जासूँ तेरा अति परिचय है ऐसी जो स्त्री सो आपदा रूप घर का द्वार है। अर ए पुत्र शत्रु हैं। ए सर्व परिवार दुःख ही का कारण है। ऐसा तू विचारि करि इनि सबनि कूँ तजि। जो सुख का अर्थी है तो निर्मल धर्म कूँ भजि।

भावार्थ—या संसार असार विषैं तैं सार कहा जान्या? जिनि जिनि वस्तुनि विषैं तू राग करै है सो सब दुःख का मूल है। घर तो शरण रहित है, जहाँ कोऊ रक्षक नाहीं, अनेक उपाधि का मूल है। अर ए बांधव बन्ध ही के कारण हैं। इह भव परभव दुःख दाई हैं। अर तू स्त्री कूँ निपट निज जानै है सो विपति के घरका द्वार है। अर पुत्र कूँ अति प्रिय जानै है सो तेरा वैरी है। जन्मैं तब तो स्त्री का जोबन हरै, अर बालक होय तब मिष्ट भोजन हरै, अर समरथ होय तब धन हरै। तातैं पुत्र समान और वैरी नाहीं। जातैं इन सबनि कूँ तजि। सुख का अर्थी है तो एक निर्मल जिन धर्म कूँ भजि।

आगै कहै हैं, कोऊ प्रश्न करै है—ये गृहादिक तौ हम कूँ उपकारी नाहीं परन्तु धन तौ उपकारी होयगा, ताका समाधान करै हैं।

(शार्दूलछन्द)

तत्कृत्यं किमिहेन्धनैरिव धनैराशाग्निसंधुक्षणैः,
संबन्धेन किमङ्ग शश्वदशुभैः संबन्धिभिर्बन्धुभिः।

किं मोहादिमहाविलेन सदृशा दहन गेहेन वा
देहिन् याहि सुखाय ते सममसु मा गा प्रमादं मुधा॥६१॥

अर्थ—हे मायी ! तू वृथा ही प्रमाद कूँ मति प्राप्त होहु। यह समभाव ताहि सुख के अर्थि प्राप्त होहु। तेरे या धन करि कहा ? कैसा है धन आशारूप अग्नि के प्रज्वलित करिवे कूँ ईंधन समान है। अर हे मित्र ! तेरे निरन्तर पाप के उपार्जन हारे ए सम्बन्धी अर बन्धु तिनिकै ममत्व करि कहा ? अर महा मोह रूप सर्प के बिल समान ये देह ता करि कहा ? अथवा घर करि कहा ? तू सुख के अर्थि केवल समभाव कूँ प्राप्त होहु। वृथा ही प्रमादी होय रागादिक भावनि कूँ मत परिनमै।

भावार्थ—या जीव कूँ दुःख के कारण रागादिक अर सुखका कारण एक समभाव ताही के दृढ करिवे कूँ श्री गुरु सम्यग्दृष्टिनि कूँ उपदेश दे हैं। हे मित्र ! तन धन, भ्रात पुत्र परिवार, घर अर सब सम्बन्धी दुःख ही के कारण हैं इनमें सुख नाहीं। तू सुखाभिलाषी है तो प्रमादी मति होहु। समभाव कूँ भजि। लाभ अलाभ जीवन-मरन बैरी-बन्धु राय रंक संपदा आपदा सब सम जानि।

आगें या समभाव के दृढ करिवे के अर्थि राज्य-लक्ष्मी कूँ त्याज्य कहे हैं।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

आदावेव महाबलैरविचल पट्टेन बद्धा स्वयं
रक्षाध्यक्षभुजासिपञ्जरवृता सामन्तसंरक्षिता।

लक्ष्मीर्दीपशिखोपमा क्षितिमतां हा पश्यतां नश्यति
प्रायःपातितचामरानिलहतेवान्यत्र काऽशा नृणाम्॥८२॥

अर्थ—हाय, हाय ! यह राजानि की लक्ष्मी द्वीप शिखा समान बाहुल्यता करि चचल दुरते जे चमर तिनि की पवन करि मानू देखतैं देखतैं विलय जाय है । जो राज्यलक्ष्मी की ही यह वार्ता तौ मनुष्यनि के और लक्ष्मी के रहने की कहा आशा ? या राज्य लक्ष्मी कूँ चञ्चल जानि प्रथम ही बलवन्त पुरुषनि तैं आप पट्ट बन्ध के मिस करि निश्चल बाधी । अर रक्षा के अधिकारी सामंत तिनकी खड्ग सहित भुजा सो ही भया वज्र पजर ताकरि भली भांति जा की रक्षा करी तोऊ न रहै, देखतैं २ जाती रहे ।

भावार्थ—राज्य लक्ष्मी दीपशिखा समान अति चचल है । रक्षा करतैं २ तत्काल विनशि जाय है । रक्षा के अर्थि बलवन्त पुरुषनि पट्ट बन्ध के मिस करि निश्चल बाधी । अर खड्ग के धारी सामन्त तिनि की भुजा रूप जो वज्र पजर तामैं राखी तोऊ न रही । चक्रवर्तीनि को लक्ष्मी ही क्षणभंगुर तौ औरनि के रहने का कहा आशा ? तातैं लक्ष्मी कूँ विनाशीक जानि अविनाशी विभूति का उपाय योग्य है । उक्तं च स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाविषै—

जासासयाणलच्छी चक्कहराणपि पुणवंताण ।
सा किं बिंधेयरई इयरजणाण अपुण्णाणम् ॥

अर्थ—यह लक्ष्मी महा पुन्याधिकारी चक्रवर्त्यादिकनि कै ही शाश्वती न रहै है तो औरनि के कैसे रहै ?

आगे कहै हैं—या शरीर विर्षे राग-लक्ष्मी का पट्ट बांध्या सो यह शरीर कैसा है। अर या विर्षे तू कैसे दुःख भोगवे है ?

(अनुष्टुप छन्द)

दीप्तो भयाग्रवातारिदारूदरगकीटवत् ।
जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे बत सीदसि ॥६३॥

अर्थ—जैसें लागी है दोऊ ओर अग्नि जाके ऐसी जो एरंड की लकड़ी ताके मध्य प्राप्त भया जो कीट सो अति खेद खिन्न होय है। तैसें या कीट की नाई या शरीर विर्षे तू खेद खिन्न होय है। यह शरीर जन्म मरण करि व्याप्त है।

भावार्थ—एरण्ड की लकड़ी के दोऊ ओर अग्नि लागी तब मध्य आया कीट कहां जाय, अति खेद खिन्न होय मरै। तैसें जन्म मरण करि व्याप्त यह शरीर ता विर्षे तू कीट की नाई अति खेद खिन्न होय मरै है। तातें शरीर तें ममत्व तजि। जो बहुरि शरीर न धरै। या शरीर सूँ अनुराग सो ही नव शरीर धरिवे का कारण है। ऐसा जानि महामुनि देह सूँ नेह तज्या।

आगे कहै हैं कि या शरीर का आश्रित जे इन्द्रिय तिनिकैं वशि होय तू कहा अनेक प्रकार के क्लेश भोगवै है यह शिक्षा दे है।

(शार्दूल छन्द)

नेत्रादीश्वरचोदितः सकलुषो रूपादिविश्वाय किं
प्रेष्यः सीदसि कुत्सितव्यपकृतैरंहास्यलं बृंहयन् ।

नीत्वा तानि भुजिष्यतामकलुषो विश्वं विसृज्यात्मवा-
नात्मानं धिनु सत्सुखी धुतरजाः सद्वृत्तिभिर्निर्वृतः॥६४॥

अर्थ—हे जीव ! तू कर्मनि के उदय तैं नेत्रादि इन्द्रियनि का प्रेरया अति व्याकुल भया रूपादि समस्त विषयनि के अर्थि कहा खेदखिन्न होय है। इन इन्द्रियकि का किंकर ही हो रह्या है। अनेक खोटे आचरण करि अत्यन्त पापनि कूँ वढावता सता तिन विषयनि कूँ भोगि करि तू अनत भव दुखी भया। अब आकुलता तजि ज्ञानी होय समस्त विपयनि का त्याग करि ध्यानामृत तैं आत्मा कूँ पुष्ट करि सुखी होहु। मोह रज कूँ धोय उत्तम वृत्ति करि निवृत्ति होहु।

भावार्थ—यह आत्मा कर्मनि के उदय करि शरीर कूँ धारै है अर शरीर के योगतैं इन्द्रियनि के वशि होय विषयनि कै अर्थि व्याकुल होय है। अर अनेक दुराचार करि अत्यन्त पापनि कूँ बढावै है। विषयनि कूँ भोगि कुयोनि में पडे है। अर जो ज्ञानवान मलिन भाव तजि आत्मा कूँ ध्यानामृत करि पुष्ट करै है सो महा सुखी होय पाप-रज रहित उत्तम वृत्ति करि निवृत्ति होय है। तातैं तू ज्ञानवान होय ससार तैं निवृत्त होहू।

आगें कोऊ प्रश्न करै है—जतीनि कै निर्धनपनैं तैं कैसे सुख की प्राप्ति होय ताकूँ कहै हैं। जगत के जीव निर्धन अर धनवान सर्व ही दुखी हैं। यती ही महासुखी हैं।

(अनुष्टुप छन्द)

अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोप्यवितृप्तितः ।
कष्टं सर्वेपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी ॥६५॥
परायत्तात् सुखाद् दुःखं स्वायत्तं केवलं वरम् ।
अन्यथा सुखिनामानः कथमासंस्तपस्विनः ॥६६॥

अर्थ—जो निर्धन सब वातनि के अर्थीते तौ महादुखी हैं। अर जे धनवंत हैं तेऊ तृप्ति बिना तृष्णा करि महा दुखी हैं। जगत के सब ही जीव क्लेश रूप हैं। निश्चय करि विचारिये तो एक सुखी कहिये सन्तोषी मुनि तेई महा सुखी हैं। पराधीन सुख तें अपना स्वाधीन दुःख ही श्रेष्ठ है। यों न होय अर अन्यथा होय तो तपस्वी है मुनि ते सुखी ऐसा नाम कैसे पावें ?

भावार्थ—जगत विषैं जे जीव हैं ते सर्व दुखी ही हैं। जे निर्धन हैं ते तो सर्व सामग्री रहित हैं। तातैं आप कूं दुखी मान हैं। अर जे धनवान हैं तिनिकै तृष्णा बड़ती अर तृप्ति नाहीं सो तृप्ति विना सुख काहू का ? सऊ महा दुखी हैं। शास्त्र में सुखी नाम मुनि ही का है औरका नाहीं। जगत का सब सुख पराधीन है। सो पराधीन सुख तैं स्वाधीन दुःख ही श्रेष्ठ है। पराधीनपना मैं सुख मानें है सो वृथा है। अर जो पराधीन पना मैं सुख होतो तो महा तपके करन हारे मुनि सुखी हैं ऐसा नाम काहे कूं पावते। तातैं यह तो निश्चय भया-जिन कै आशा सो ही दुखी अर जिनकै आशा नाहीं ते सुखी। ए संसारी जीव राग

ही आशा के दास इन्द्रियनि कैं आधीनता तैं दुखी है अर मुनि आशा के त्यागी अर मन इन्द्रियनि के जीतनहारे तातैं सदा सुखी है।

आगै काव्य दोय करि मुनि के गुणनि की प्रशसा करै है।

(शिखरणी छन्द)

यदेतत् स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकश्रमफलम्।
मनोमन्दस्पन्दं वहिरपि चिरायातिविमृशन्
न जाने कस्येयं परिणतिरुदारस्य तपसः ॥६७॥

(हिरणी छन्द)

विरतिरतुला शास्त्रे चिन्ता तथा करुणा परा
मतिरपि सदैकान्तध्वान्तप्रपञ्चविभेदनी ।
अनशनतपश्चर्या चान्ते यथोक्तविधानतो
भवति महतां नाल्पस्येदं फलं तपसो विधेः ॥६८॥

अर्थ—मुनिनि की कहा महिमा कहिये। जिनके स्वाधीन तो विहार है अर दीनता रहित भोजन है, अर मुनिनि के सघ में निवास है। शान्तभाव ही हैं फल जाका, मन का वेग मन्द हो गया सो आत्म विचार ही में लीन हैं। चिरकाल आत्म विचार करता कबहूक वाह्य क्रिया विषैं आवै है। ऐसी मुनि की परमदशा भई सो हम न जानैं यह कौनसे उदार तप की परणति है। अतुल वैराग, अर शास्त्र का चिन्तवन, सर्वोत्कृष्ट सर्व जीवनि की दया,

अर एकान्तवाद एक नय का हठग्राह सोई महा अधकार ताके विस्तार कूँ भेदनहारी सूर्य की किरण समान है बुद्धि जिनकी, अर अस्तकाल शास्त्रोक्त विधि धरि अनशन धारि शरीर तजना । ए क्रिया सत्पुरुषनि के अल्प तप की विधि का फल नाहीं, महा तप का फल है ।

भावार्थ—सब ही जीव पराधीन हैं, इन्द्रियनि कर पीड़ित हैं । जो गमन हू करैं तो कामना अर्थि । अर साधुनका विहार स्वाधीन है । जिनके कोऊ कामना नाहीं । मुनि कूँ वर्षा ऋतु बिना एक स्थान न रहना । एक ठौर रहे लोकनि तैं नेह बढ़े । सो वैराग्यभाव की वृद्धि के अर्थि विहार करै । अर दीनता रहित भोजन करै । जगत के जीवनि का भोजन दीनतारूप है । जे दरिद्री हैं तिनिके तो प्रगट ही दीनता दीखै है । घर मैं तो सामग्री नाहीं । पर घर तैं ल्यावें कार्य करै तो मिलना कठिन । अर जे धनवान हैं ते नाना वस्तुनि के अभिलाषी सो वैसा काल के योग तैं कछू पूर्ण होय कछू न होय तातैं दीनता सहित हैं । एक मुनि ही दीनता रहित हैं, जिनके लाभ–अलाभ, रस–नीरस सब समान हैं । अर मुनि कूँ मुनियूँ के संग मैं रहना, ता समान कोऊ उत्कृष्ट नाहीं । लोकनि के कुसंग है । बड़ा कुसंग तो स्त्री की संगति है, जा करि काम क्रोधादिक उपजै है । अर साधुनि की संगति तैं काम क्रोधादि विलाय जायँ । अर लोगनि के और अभ्यास लगि रहे हैं, साधुनि के श्रुत का ही अभ्यास है । अर शास्त्र के अभ्यास का फल परम शान्त भाव सो ही जिनकै प्रगट भया है और मूढ़ लोग शास्त्र हू

के अभ्यास करि मदोन्मत्त होय हैं। सो यह वडा दोष है । मुनि के मन का वेग मन्द हो गया है, लोकनि का मन महा चचल सदा वाह्य वस्तुनि ही विषै भटकै है। मुनि का मन आत्मविचार विषैं लगि रह्या है, कवहु कि वाह्य शुभ क्रिया विषै हू आवै है, अशुभ क्रिया का नाम नाहीं। यह दशा मुनियों की भई, सो मैं न जानू कौनसे उत्कृष्ट तप का फल है । जिनके अतुल वैराग्य ससार शरीर भोग तै अति उदास। जगत के जीव सब ही रागी हैं जिनके राग द्वेष का तीव्र उदय है । अर अव्रत सम्यग्दृष्टि अनन्तानुवन्धी के अभाव तैं यद्यपि मिथ्यादृष्टिनि सौं रागी नाहीं तथापि अप्रत्याख्यान के उदयतै रागी हैं। अर अणुव्रती श्रावक यद्यपि अप्रत्याख्यान के अभावतैं अव्रत सम्यग्दृष्टिनि तै अधिक है तथापि प्रत्याख्यान के उदय तैं अल्प रागी हैं । अर मुनि के प्रत्याख्यान का हू अभाव भया,तातैं विषयानुराग तौ सर्वथा मिट्या, सज्वलन क उदय तैं कछू इक धर्मानुराग रह्या है सो छटा गुण-स्थान है। आगे ऊपरिले गुणस्थाननि विषैं वीतराग भाव ही की वृद्धि है। तातैं मुनि कै अतुल वैराग्य ही कहिये । धर्मानुराग है सो वीतराग भाव ही का कारण है। वहुरि मुनि के छटे गुणस्थान शास्त्र का चिन्तवन है। ऊपरले गुणस्थान विषैं आत्मध्यान ही है। शास्त्र का ज्ञान मुनियों का सा औरनि के नाहीं । अज्ञानी जीव तौ विकथा ही विषैं आसक्त हैं शास्त्र का अनुराग नाहीं । अर सम्यग्दृष्टी अव्रती तथा अणुव्रती श्रावक यद्यपि जिन सूत्र के अभ्यासी हैं, तथापि परिग्रह के योग तैं अल्पश्रुती ही है, वहुश्रुती नाहीं। शास्त्र के पारगामी वहुश्रुत मुनि ही हैं । अर जीव दया

मुनि की सी और क नाहीं। अर अज्ञानी जीव तो सदा निर्दई हैं। अर अव्रत सम्यग्दृष्टि भावनि करि सौ दया रूप ही है। तथापि बहु आरम्भ परिग्रह के योग तैं दया नाहीं पलै है। अर अणुव्रतानि कै अल्पारम्भ अल्प-परिग्रह के योग तैं अल्प हिंसा है। त्रस की तो सर्वथा हिंसा नाहीं। थावर जीवनि की हिंसा है। तातैं सर्वथा हिंसा न कहिये। सपमा अहिंसा मुनि ही कै है। मुनि महा दयावान हैं। अर मुनिनि की बुद्धि सदा एकान्तवादरूप अन्धकार के हरने कूँ सूर्य की प्रभा समान है। औरनि की बुद्धि ऐसी प्रकाशरूप नाहीं। यद्यपि सम्यग्दृष्टि श्रावकनि की बुद्धि एकान्तवाद रूप तिमिर तैं रहित स्याद्वाद श्रद्धान कूँ परिणई है तथापि मुनिनि की शिक्षारूप लिये है। स्याद्वाद विद्या के गुरु मुनि ही हैं। अर अन्तकाल मुनियों के अनशन तप करि शरीरका तजना है। उत्कृष्ट आराधना मुनिनि ही कै है। अणुव्रती श्रावक कै मध्य आराधना है। अर अव्रत सम्यग्दृष्टिके जघन्य आराधना है। और जगवासी जीव आराधना रहित विराधक ही हैं। यह मुनियों की अलौकिक वृत्ति कही सो अल्प तप को विधि का फल नाहीं पूर्ण तप का फल है।

आगे कोऊ प्रश्न करै है कि तप करतैं काय क्लेश होय सो अयुक्त है। शरीर धर्म का साधन सो यत्न थकी राखना, ताका समाधान करै हैं —

उपायकोटिदूरक्ष्ये स्वतस्तत इतो यतः
सर्वत पतनप्राये काये कोयं तवाग्रह ॥६६॥

अवश्यं नश्वरैरेभिरायुः कार्यादिभिर्यदि ।
शाश्वतं पदमायाति मुधाऽऽयातमवेहि ते ॥७०॥

अर्थ—हे प्राणी ! तेरा या शरीर विषै कौन आग्रह है जो मैं या की रक्षा करू । इह तौ कोटि उपाय करि राख्या न रहै । सर्वथा परिवे ही कू सन्मुख है, जैसे डाभ की अणी पर पडी ओस की बूंद परिवे रूप ही है । आप थकी तथा अन्य थकी या शरीर की रक्षा न होय । ये आयु कायादिक अवश्य विनाशीक हैं । अर इनके ममत्व तजिवे करि जो अविनाशी पद तेरे हाथि आवै तो सहजि आया जानि ।

भावार्थ—आयु हू विनश्वर अर काय हू विनश्वर । उत्कृष्ट आयु देव नारकीनि की सागर तेतीस सो हू विनश्वर, तो मनुष्य तिर्यंचनि के अल्प आयु की कहा बात ? अर देवनि का निरोग शरीर सो हू काल कै बशि तीर्थङ्करादि पुराण पुरुषनि का शरीर सोऊ विनाशीक तो औरनि के शरीर की कहा बात ? तातैं यह निश्चय भया, आयु के अन्त भए शरीर न रहै, अर आयु प्रमाण तैं अधिको नाहीं । तातैं आयु का अर काय का ममत्व तजि अपने अविनाशीक स्वरूप का ध्यान करै । काय कूँ तप सयम में लगाय आयु धम सपूर्ण करै तो अविनाशी पद का पात्र होय । या अल्प आयु अर चचल काय कै बदलै शाश्वता पद मिलै तो फूटी कोडी साटैं चिन्तामणि रत्न आया गिणिए ।

आगैं दोय श्लोकनि करि आयु कूँ विनाशीक दिखावै हैं ।

(अनुष्टप छन्द)

गन्तुमुच्छ्वासनिश्वासैरभ्यस्यत्येष सततम् ।
लोकः पृथगितो वाञ्छत्यात्मानमजरामरम् ॥७१॥

(शिखरणीछन्द)

गलत्यायुः प्रायः प्रकटितघटीयन्त्रसलिलं
खलः कायोप्यायुर्गतिमनुपतत्येष सततम् ।
किमस्यान्यैरन्यैर्द्वयमयमिदं जीवितमिह
स्थितो भ्रान्त्या नावि स्वमिव मनुते स्थास्नुमपधी ॥७२

अर्थ—यह आयु या है सो उश्वासनिश्वासनि करि निरन्तर गमन करने का अभ्यास करै है। अर य अज्ञानी लोक ऐसी आयु तैं आप कूँ अजर अमर वांछै है। बाहुल्यता करि यह आयु प्रगट ही अरहट की घड़ी के जल की नाईं छिन छिन गलै है अर यह काय हू आयु के लार ही निरन्तर पतन होय है। काय है सो आयु की सहचारी कहिये लार लगी है। आयु काय ही की यह गति तो या जीव के पुत्र कलत्र धन धान्यादि अन्य पदार्थनि करि कहा? ये तो प्रगट ही जीवनें के मूल सो दोऊ ही क्षण भंगुर हैं। बुद्धि रहित बहिरात्मा या लोक मैं तिष्ठतो संतो भ्रांति करि आप को थिर मानै है। जैसे नाव विषैं तिष्ठता भ्रान्ति करि आप कूँ थिर मानै।

भावार्थ—नाव विषैं तिष्ठता पुरुष चल्या जाय है परन्तु भ्रान्ति करि आप कूँ चालता न जानैं। तैसैं मूढ़ बुद्धि श्वास निश्वास

करि निरन्तर आयु जाय है। अर आयु के लार काय जीर्ण होय है तोऊ जानै है मैं ऐसा ही रहौगा। जीवे के कारण आयु काय, सो ही चचल तो जीवे की कहा आशा ? जैसे निवॉण का नीर अरहट की घडी करि निरन्तर निकसै। तैसैं स्वास निस्वास करि आयु की थिति पूरण होय है। अर काय जीर्ण होय है। आयु पूर्ण भए काय न रहे। तातैं आयु काय दोऊनि कूॅ विनश्वर जानि विवेकी ममत्व तजै। आयु काय ही सूॅ ममत्व तज्या तब और जे पुत्र कलत्रादि तिनि सूॅ ममत्व कैसे करै ? वै तो प्रगट ही भिन्न हैं।

आगैं कहै हैं जौ लग स्वास तौं लग जीवना, सो स्वास ही दु ख रूप है तो प्राणीनि कूॅ कहा सुख होय ?

(अनुष्टुप छन्द)

उच्छ्वासः खेदजन्यत्वाद् दुःखमेवात्र जीवितम् ।
तद्विरामे भवेन्मृत्युर्नृणां भण कुतः सुखम् ॥७३॥

अर्थ—यह उस्वास खेद करि उपजै तातैं दु ख ही है अर याही के होते जीवना है। बहुरि उस्वास के अभाव विषैं मरना है। कहो जु प्राणीनि कै सुख कहा तै होय।

भावार्थ—जहा खेद नाहीं सो सुख, सो उस्वास तो खेद ही करि उत्पन्न है अर उस्वास है तौ लग ही जीवना। तातैं जीवे मे भी सुख नाहीं। अर स्वास गये मरना सो मरवे मे जीव ही नाहीं तो सुख कौन कै होय। तातैं कहो जु जीवनि के सुख कहा तैं होय।

या शरीर का सम्बन्ध तो दुःख ही का कारण है। यह सूँ नेह तजें वीतराग भाव में सुख होय है सो ही अंगीकार करना।

आगे कहे हैं कि जन्म मरण के मध्यवर्ती ए प्राणी तिनिके केता काल जीवन का विश्राम ?

(अनुष्टुपछन्द)

जन्मतालद्रुमाज्जन्तुफलानि प्रच्युतान्यध ।
अप्राप्य मृत्युभूभागमन्तरे स्युः कियच्चिरम् ॥७४॥

अर्थ—जन्मरूप ताड़ के वृक्ष तें जीव रूप फल पड़े सो मृत्यु भूमि ही कौं प्राप्त होय, अन्तराल में थोरा ही रहे बहुत न रहे।

भावार्थ—संसार में जीवना थोरा। जैसे वृक्ष तें फल टूटे सो पृथ्वी ही में पड़े, बीचि में को लग रहे। तैसे जन्में सो मरें, आयु में कौन लग रहे, थोरा ही रहे। तातें देहादिक क्षणभंगुर जानि आत्मज्ञान के प्रभाव करि अविनाशी पद का साधन योग्य है।

आगे कहै है कि जन्तुनि की रक्षा के अर्थि अनादि काल तैं विधि ने यत्न किया तौऊ रक्षा न करि सक्या।

(हिरणी छन्द)

क्षितिजलधिभिः सख्यातीतैर्बहिः पवनैस्त्रिभिः
परिवृत्तमतः खेनाधस्तात् खलासुरनारकान्
उपरि दिविजान् मध्ये कृत्वा नरान् विधिमन्त्रिणा
पतिरपि नृणां त्राता नैको ह्यलंघ्यतमोऽन्तकः ॥७५॥

अर्थ—विधिरूप मत्री ने मनुष्यनि की अनेक उपाय करि रक्षा करी तौऊ न करि सक्या। भीतरि सौं असंख्यात द्वीप समुद्रानि के कोट में इनिकूँ राखे। अर असख्यात ही द्वीप समुद्रनि के बाहरि तीन वात वलानि के कोट करि रक्षा करी अर वाकै बाहिर अनंता अलोकाकाश करि वेष्टित किये। अर जे नारकी दुष्ट परिणामी हुते ते अधोलोक में थापे। अर उर्द्धलोक विषैं देवनि कूँ थापे। मध्य मे मनुष्यनि कौं राखे, तोऊ मनुष्य मरण तैं न बचे। तातैं यह निश्चय भया कि मनुष्यनि को पति जो विधाता अथवा चक्रवर्ती इन्द्र आदि कोऊ रक्षक नाहीं। एक काल अत्यन्त अलघ्य है।

भावार्थ—अनेक उपाय करिये तोऊ काल सूँ न वचिये। मनुष्यनि कूँ हीन वली जानि विधिरूप मन्त्री ने अनेक रक्षा के उपाय किये। ऊपरि की रक्षा तो देवनि करि करी, अर अधोलोक विषैं नारकी थापे, अर असख्यात द्वीप समुद्रनि का तीसरा माहिला कोट इत्यादि रक्षा के उपाय किये परन्तु रक्ष न भई। काल रोक्या न जाय। काल अलघ्य है। तातैं शरीर को रक्षा कौं तजि धर्म की रक्षा करनी। आत्मा तो अविनस्वर है परन्तु देहतैं नेह करि नवे २ नेह धारै है तातैं जन्मता मरता कहिए। निश्चय नय करि न जन्मै न मरै। ऐसा अपना स्वरूप जानि देहादिक तैं नेह तजिए तो नवे देह न धरिये। यह ही मुक्ति होने का उपाय है।

आगै कहै हैं कि आयु की स्थिति पूर्ण होतैं काल प्राण लेवै

का उदय करै ताहि निवारिवे कौं कौन समर्थ ?

(शिखरणी छन्द)

अविज्ञातस्थानो व्यपगततनु' पापमलिन
खलो, राहुर्भास्वद्दशशतकराक्रान्तभुवनम् ।
स्फुरन्तं भास्वन्तं किल गिलति हा कष्टमपरम्
परिप्राप्ते काले विलसति विधौ को हि बलवान् ।७६।

अर्थ—हाय ! यह बड़ा कष्ट है । निश्चय सेती आयु कर्म के पूर्ण होतें काल आय प्राप्त होय है तब ऐसा और कौन बलवान जो रक्षा करै ? कोई ही रक्षा न करि सके । जैसे नवग्रह में मुख्य जो राहु सो ग्रहण का समय सहस्र किरण जो सूर्य, अपनी किरण करि उद्योत किया है भुवन विषे पदार्थ जानें ताहि ग्रहे है, सो कोऊ टारिवे समर्थ नाहीं । जैसे ग्रहण का औसर पाय राहु सूर्य का ग्रसे है तैसे आयु के अन्त का समय पाय कालरूप राहु जीव रूप सूर्य कूँ ग्रसे है । सूर्य तो सहस्र किरण है अर जीव अनन्त ज्योति अनन्त प्रकाश है । कैसा है राहु अर कैसा है काल नाहि जानिये है स्थान जाका, सो काल की तो प्रकट दशा सब ही जानै है अर राहु का कोई थार नाहीं । तातैं लोक याहू कूँ स्थान रहित कहे हैं । अर काल तो शरीर रहित है ही अर राहु कूँ भी लोक अतनु कहै हैं । अर काल आकनि कौं ग्रसे है सा काहू कूँ ग्रसै सो हो पापी । सो काल कूँ पापी कहै हैं । जा पापी सो ही मलिन ।

अर राहु कूँ पापग्रह कहै हैं अर श्याम है तातैं काल का दृष्टान्त दिया ।

भावार्थ—षट् द्रव्यनि में काल द्रव्य है सो तो अपनी अमूर्त्त जड सत्ता करि विराजमान है, काहू का हर्ता नाहीं। परन्तु काल को व्यवहार पर्याय समय पल घटिकादि है। सो जाकी थिति जा समैं पूर्ण होय ताही समय देह सूँ देहान्तर गमन करै। यह छल देखि लोक कहै हैं काल मारै है।

आगै कहै हैं कि काल कहा करि कौन स्थान विषैं प्राणनि कौ हर्तै है।

(वसन्ततिलका छन्द)

उत्पाद्य मोहमदविभ्रममेव विश्वं
वेधाः स्वयं गतघृणष्ठगवद्यथेष्टम्।
संसारभीकरमहागहनान्तराले
हन्ता निवारयितुमत्र हि कः समर्थः ॥७७॥

अर्थ—वेधा कहिए पूर्वोपार्जित कर्म सो यथेष्ट ठग की नाईं निर्दई मोहमद उपजाय विश्व जो त्रैलोक्य ताकूँ विह्वल करि ससार रूप भयानक वन विषैं हणे है तहा ताहि कौन निवारिवे समर्थ ?

भावार्थ—ठिग निर्दई अर मूढ लोकनि कूँ अमल की वस्तु दे मद उपजाय विह्वल करि गभीर वन में मारै है। त्यों ही महा निर्दयी कर्मरूप ठिग मोह महामद उपजाय समस्त अज्ञानी जीवनि कूँ ससार वन विषैं हणै है, कौन वचाय सकै ? काल का कारण कर्म है। जिनके कर्म है ते काल वशि हैं। सिद्धनि कैं कर्म नाहीं, तातैं काल वशि नाहीं।

आगैं कहै हैं कि कोऊ देश कोऊ काल विषैं काल तैं बचने का उपाय नाहीं। सर्व देश सर्व काल विषैं कालमसै है। काल का यत्न कर्मनि का परिहार सो ही काल परिहार।

> कदा कथं कुतः कस्मिन्नित्यतर्क्यः खलोऽन्तकः।
> प्राप्नोत्येव किमित्याध्वं यतध्वं श्रेयसे बुधा ॥७८॥

अर्थ—पण्डित जन जे सम्यग्दृष्टि ते आत्म-कल्याण के निमित्त यत्न करहु। काल आय प्राप्त होय तब यत्न किये न रहै। कौन समय कौन प्रकार कौन क्षेत्र विषैं कहां तैं काल आवै है ऐसा विचार मैं न आवै। दुष्ट काल अचाणचक्या ही आवै, तातैं आत्म ध्यान करि अविनाशी होने का यत्न करहु।

भावार्थ—आत्मस्वरूप मैं मगन भए काल का निवारण होइ। रागादिक के परिहार बिना और काहू यत्न करि काल का निवारण नाहीं। मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र औपचारिक करि काल कूं दुर्निवार जानि मौनि गहि तिष्ठो।

आगै कहै हैं-सब ही देश कालादि विषैं मरन होय है। कोऊ ही देश काल मृत्यु तैं अगोचर नाहीं, ऐसा प्रत्यक्ष देखि करि निश्चित होय रहै।

> असामवायिकं मृत्योरेकमालोक्य कञ्चन।
> देशं कालं विधिं हेतुं निश्चिन्ताः सन्तु जन्तवः ॥७९॥

अर्थ—कोऊ देश कोऊ काल कोऊ विधि कोऊ कारण मृत्यु तैं अगोचर देखि करि ए प्राणी निश्चित तिष्ठा।

भावार्थ—जगत विषैं ऐसा कोऊ देश नाहीं जामैं मरण न होइ। बहुरि ऐसा कोई काल नाहीं जामैं प्राणी न मरै। अर ऐसी कोऊ विधि नाहीं जाकरि मरण मिटै। अर ऐसा कोई औषधि मन्त्रादि उपाय नाहीं जा करि काय बच। तातैं सबको सर्वथा काल वशि जानि आत्मकल्याण विषैं अवश्य उद्यमी होना योग्य है। एक आत्मज्ञान ही काल तैं बचवे का उपाय है। सब ही क्षेत्र विषैं सदा काल सर्वथा प्रकार कोऊ ही कारण करि कोऊ ही प्राणी काल तैं न बचै।

आगैं आयु कूँ विनस्वर बताय स्त्र की निन्दा करते सते ताके तनकूँ अकल्याण का कारण दिखावै है।

(हिरणी छन्द)

अपिहितमहाघोरद्वारं न किं नरकापदा-
मुपकृतवतो भूयः किं तेन चेदमपाकरोत्।
कुशलविलयज्वालाजाले कलत्रकलेवरे
कथमिव भवानत्र प्रीतः पृथग्जनदुर्लभे ॥८०॥

अर्थ—तू या स्त्री के कलेवर विषैं कौन कारण प्रीति करै है। यह स्त्री का कलेवर कल्याणके भस्म करने कूँ अग्नि ज्वाला का समूह है। अर तू कहा प्रत्यक्ष न देखै है ए स्त्री का शरीर नरक की आपदा का उघड्या द्वार है। अर तू तो स्त्री के शरीर सूँ बारम्बार अनुराग करि उपकार करै है। अर वह सदा विघ्नकारी हो है। तातैं तू तरुणी के तन तैं प्रीति तजि। याकूँ अज्ञानी जन दुर्लभ मानै हैं, अर यह कछू वस्तु ही नाहीं।

भावार्थ—स्त्री ही संसार का मूल कारण है। ताकरि पुत्र पौत्रादि संतान की प्रवृत्ति होय है। अर नाना रूप आरम्भ परि ग्रहादि चिन्तारूप क्लेश तिनि की बढावनहारी है। जे निवृत्ति प्रभूतिका के धर भए ते इनिके त्याग ही तैं भए। अर इन ही के सबन्ध तें ए प्राणी चतुर्गति विषै भ्रमै है। ऐसा जानि सम्वर्गं तजना।

आगे यहां स्त्री विषै प्रीति छोडि सर्व प्रकार असार जु है मनुष्यपणों ताकौं तू शीघ्र धर्म उपार्जनतैं करि सफल करहु। ऐसो शिक्षा रूप सम्ता सूत्र कहै हैं।

(शार्दूलविक्रीडित)

व्यापत्पर्वमयं विरामविरसं मूलेऽप्यभोगोचितं
विष्वक्क्षुत्क्षतपातकुष्ठकुथिताद्युग्रामयैश्छिद्रितम्।
मानुष्यं घुणभक्षितेक्षुसदृशं नाम्नैकरम्यं पुन
र्निस्सारं परलोकबीजमचिरात् कृत्वेह सारीकुरु।।८१।।

अर्थ—यह मनुष्यपणों है सो घुणनि करि खाया सांठा ताके समान है। कैसा है आपदा रूपी गांठनि स्यौं तन्मय है। बहुरि अन्त विषै विरस है। बहुरि मूल विषै भी भोगवनें योग्य नाहीं है बहुरि सर्वाङ्गपनैं क्षुधा गूमडा कोढ कुथितादि भयानक रोग तिनि करि छिद्र सहित भया है। बहुरि एक नाम मात्र ही रमणीक है, और सर्व प्रकार असार है। यहां याको तू शीघ्र धर्म साधन तैं परलोक का बीज करिकैं सार सफल करहु।

भावार्थ—जैसे काणा साठा के वीचि तौ गाठि पाइये है तहां रस नाहीं। बहुरि अन्त विषैं वाड है तहा रस का स्वाद नाहीं। बहुरि आदि विषैं जड़ है तहा रस आवता नाहीं। बहुरि बीच में वा सर्वत्र घुणनि करि छिद्रित भया तहा भी रस रह्या नाहीं। ऐसे वह काणां साठा नाम मात्र ही तो भला है। बहुरि सर्व प्रकार असार है, भोग योग्य नाहीं। बहुरि जो उस साठे को आगामी बीज करै तो ताकरि बहुत मीठे साठे निपजैं। तातैं ऐसे ही करि उस साठे का ऐसे ही सफल करना योग्य है। तैसे मनुष्य पर्याय के बीचि बीचि तो अनेक आपदा पाइए है तहा सुख नाहीं। बहुरि अन्त विषै वृद्ध अवस्था है तहां सुख का स्वाद नाहीं। बहुरि आदि विषै बाल अवस्था है तहा सुख होता नाहीं। बहुरि मध्य अवस्था विषैं सर्वत्र क्षुधा, पीडा, चिन्ता आदि रोगनि करि हृदय विषैं छेद परि रहे तहा भी सुख रह्या नाहीं। ऐसे यह मनुष्य पर्याय नाम मात्र ही तो भला है। बहुरि सर्व प्रकार असार है। विषय सुख भोगवने योग्य नाहीं। बहुरि जो इस मनुष्य पर्याय को धर्मसाधन करि परलोक का वीज करै तौ ताकरि बहुत स्वर्ग मोक्ष के सुख रूप मीठे फल निपजैं। तातैं इस मनुष्य पर्याय को ऐसैं ही सफल करो, यह शिक्षा माननी योग्य है।

आगैं ऐसे मनुष्य पर्याय के शरीर विषैं तिष्ठता आत्मा कहा करै है सो कहै हैं।

(अनुष्टुप छन्द)

प्रसुप्तो मरणाशंकां प्रबुद्धो जीवितोत्सवम्।
प्रत्यहं जनयत्येप तिष्ठेत् काये कियच्चिरम् ॥८२॥

अर्थ—यह आत्मा दिन प्रति सूता हुआ तौ मरण की आशंका उपजावै है अर जाग्या हुआ जीवनें का उत्सव को उपजावै है। ऐसो याको दशा सो यह जीव शरीर विर्षे कितनेक चिरकाल पर्यन्त तिष्ठै अपि नु न तिष्ठै।

भावार्थ—यह जीव सोवै तब तौ मृतक सदृश होजाइ अर जागै तब जीवता होइ ऐसैं याके प्रतिदिन दशा हुवा करै। जैसे जो नित्य छिपैं ताके भागने का भरोसा नाहीं तैसें या का शरीर विर्षे रहने का भरोसा नाहीं। शीघ्र ही शरीर को छांडैगा ऐसा निश्चय करि करना होइ सो कार्य करि लेना।

आगैं ऐसे शरीर के आत्मा का उपकार करने का अभाव कहि करि अब कुटंबनि कै आत्म उपकार करने का अभाव कहता सूत्र कहै हैं।

(वसन्त तिलका छन्द)

सत्यं वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य
माप्तं त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्
संभूय कायमहितं तव भस्मयन्ति ॥८३॥

अर्थ—तू सांच कहि या हैं संसार विर्षे बन्धुजननैं बन्धुनि करि करने योग्य हितरूप प्रयोजन किछू भी पाया है? या तौ किछू भी कुटुम्बनै हित भया दीखता नाहीं। केवल इतना ही उन

का उपकार भासै है जो तेरे मूएँ पीछैं एकठे होय करि तेरा वैरी शरीर ताको भस्म करै है।

भावार्थ—भाई वन्धु उनका नाम है जो अपना किछू हित करै। सो तू जिनि को भाई वन्धु मानै है सो इनूं नैं किछू हित किया होय सो बताय, जातैं तेरा मानना सांच होइ। बहुरि हमकों तौ केवल इनिका इतना ही हित करना भासै है जो वैरी का वैरी होय ताकों अपना हितू कहिये है। सो तेरा वैरी शरीर था सो तेरे मुएँ पीछै मिलि करि इनूँ नें शरीर को दग्ध किया। तेरा वैर का बदला लिया। ऐसे इहां युक्ति करि कुटुम्ब तैं हित होता न जानि राग न करना, ऐसी शिक्षा दई है।

आगैं तर्क करै हैं जो विवाहादि कार्य बन्धुजन तैं होइ हैं ऐसी प्रतीति है तातैं तिस बन्धुजन तैं हितरूप कार्य कैसैं न हो है। ऐसी आशङ्का करि उत्तर कहै हैं—

जन्मसन्तानसंपादिविवाहादिविधायिनः।
स्वाः परेऽस्य सत्कृत्प्राणहारिणो न परे परे ॥८४॥

अर्थ—ससार परिपाटी के निपजावनहारे विवाहादि कार्य, तिनके करनहारे जे स्वकीय कुटुम्ब हैं ते ही इस जीव के वैरी हैं। बहुरि जो एक बार प्राण हरै ऐसैं पर कहिये वैरी ते वैरी नाहीं हैं।

भावार्थ—जो एक बार प्राण हरै ताकों तू परम वैरी माने है सो प्राण-नाश वाका किया होता नाहीं, आयु का अन्त आये हो है। तातैं परमार्थतैं प्राण हिरनहारा वैरी नाही है। बहुरि जे

विवाहादि कार्यनि विर्षे जीव का कामादि रागादिक के निमित्त बनावै है ऐसे जे बन्धुजन ते अनेक जन्ममरण का कारण कर्म बन्ध कराय पाका बुरा करै हैं। तातैं परमार्थ तैं बन्धुजन वैरी हैं। जैसें देना दिवावै सो वैरी नाही। जो नवीन देना करावै सो वैरी है। तैसें प्राण हरन द्वारा तौ पूर्व कर्म की निर्जरा करावै है तातैं वैरी नाहीं ए बन्धुजन कर्मबन्ध का कारण मिपजावै हैं तातैं ए वैरी हैं। ऐसा जानि इनिकौं हितू मानि राग न करना।

आगैं बन्धुजन जे हैं ते विवाहादि विधान करि, धन धान्य स्त्री आदि इष्ट वस्तुकौं निपजावनैं करि वांछित प्रयोजन की प्राप्ति करनहारे हैं तातैं तिनकै शत्रुपना है, ऐसा अयुक्त वचन है। ऐसे कहैं उत्तर कहै हैं।

(अनुष्टुप छन्द)

रे धनेन्धनसमारं प्रक्षिप्याशाहुताशने।
ज्वलन्तं मन्यते भ्रान्तः शान्तं संधुक्षणे क्षणे ॥८४॥

अर्थ—भ्रम सहित जीव है सो आशा रूपी अग्नि विर्षे धनरूपी ईंधन का समूहकौं क्षेपिकरि आशा अग्निका बधावनैं रूप जो संधुक्षण ताका काल विर्षे जलता जो अपना आत्मा ताकौं शान्त भया सुखी भया मानैं है।

भावार्थ—जैसें कोई बावला भारी अग्नि करि आप जलै है। बहुरि वामैं ईंधन डारि अग्निकौं बधाइ बहुत जलनैं लगा तब

आपकौं शीतल भया मानैं । तैसैं भ्रम भाव सहित करि आत्मा आशा करि दुखी आप दुखी होय रह्या है । बहुरि आशा विषैं धनादिक सामग्री मिलाइ तिस आशाकौं वधाइ बहुत दुखी भया, तब आपकौं सुखी मानैं है । परमार्थतैं सुखी नाही हो है । धनादि सामग्री मिले तृष्णा बधै दुख बधै, तातैं धनादिक दु खका कारण है । याही तैं धनादिक का कारण कुटुम्बादिक सो भी दु'ख ही का कारण शत्रु जानना ।

आगैं ऐसैं भ्रमरूप मानता जो तू सो तेरै कहा कहा हो है सो कहै है ।

(आर्याछन्द)

पलितच्छलेनदेहान्निर्गच्छति शुद्धिरेव तव बुद्धेः ।
कथमिव परलोकार्थं जरी वराकस्तदा स्मरति ॥८६॥

अर्थ—स्वेत केशका मिस करि तेरी बुद्धि की शुद्धता है, सो ई शरीरतैं निकसै है । तहा वृद्ध अवस्था सहित असमर्थ भया जो तू सो परलोक कै अर्थि कैसैं स्मरण करै है । किछू विचार होइ सकता नाही ।

भावार्थ—तू ऐसा विचारैगा जो यौवन अवस्था विषै तो धन स्त्री आदि सामग्री मिलाइ इस लोक के सुख भोगवें । अर वृद्ध अवस्था विषैं धर्म सेय परलोक का यत्न करैंगे । सो वृद्ध अवस्था आए हम ऐसी उत्प्रेक्षा करैं हैं जो तेरे श्वेत केश निकसै हैं ताका मिस करि तेरी बुद्धि की शुद्धता निकसै है । बहुरि बुद्धि की

प्रबलता गए वर्त्तमान इस लोक के कार्यनिका भी विचार न होइ सकै तौ आगामी परलोक के अर्थि विचार कैसे होइ सकना? तातैं वृद्ध अवस्था पहलै ही समाधिकरौं। तुम्हका कारण आगमि परलोक के अर्थि यत्न करना योग्य है।

आगे जे जीव बुद्धि की प्रबलता करि संयुक्त होत सन्ते भर मोह करि रहित है चित्त जिनका ऐसे होत संते परलोक के अर्थि चिन्ता करौ हैं ते,जीव थोरे हैं ऐसा कहै है।

इष्टार्थाद्यदवाप्तत्द्भवसुखक्षाराम्भसि प्रस्फुर
न्नानामानसदुःखवाडवशिखासंदीपिताभ्यन्तरे।
मृत्यूत्पत्तिजरातरङ्गचपले संसारघोरार्णवे
मोहग्राहविदारितास्यविवराद्दूरेचरा दुर्लभाः ॥८७॥

अर्थ—संसाररूपी भयानक समुद्र विषैं मोहमाहका भयानक हुआ जो मुख तिसतैं जे दूरि विचरैं है ते दुर्लभ हैं। कैसा है ओसार समुद्र, इष्ट विषय करि निपज्या ताकरि तृप्ति न होइ ऐसा संसारिक सुख सोई खारा जल विषै पाइए ऐसा है। जैसे समुद्र विषैं खाराजल है ताकौं पोए तृषा न मिटै तैसैं संसार विषै विषय सुख हैं ता करि तृषा दूरि न हो है। बहुरि नाना प्रकार, मानसिक दुःख सोई भया वडवानल ताकरि जाज्वल्यमान है अभ्यन्तर जाका ऐसा है। जैसे समुद्र विषै वडवानल है सो जलकौं सोखै ऐसा

तप्तायमान है। तैसैं ससार विषैं मानसिक दुःख है सो विषय सुखकौं न भोगवनैं दे। ऐसा सताप रूप है। बहुरि मरण जन्म जरा रूपी तरङ्ग तिनि करि चपल है। जैसैं समुद्र विषैं तरगनि की पलटनि हो है तैसैं ससार विषैं जन्म जरामरणादि अवस्थानिकी पलटने हो है। ऐसा ससार समुद्र विषै मोहरूपी ग्राह जलचर जीव वसै है। सो अपना मुख फाडि रह्या है। उदय को व्यक्त करि रह्या है। तिसतैं जे दूरि विचरै हैं, याके उदयविषैं तद्रूप होइ विकारी न हो हैं, ते जीव दुर्लभ हैं, थोरे हैं। जो ससार विषैं ऐसे घनें होय तो ससार कैसें वसैं। ऐसे थोरे हैं, याही तैं ससार पाइये है।

आगै मोहके मुखतैं दूरि विचरता दुर्द्धर आचरन आचरता ऐसा जो तू सो तेरे भलै प्रकार पाल्या हुवा भी शरीर जो ऐसे हरिणीनि करि देखिए तो तू धन्य है ऐसा कहै हैं।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

अव्युच्छिन्नैः सुखपरिकरैर्लालिता लोलरम्यैः
श्यामाङ्गीनां नयनकमलैरर्चिता यौवनान्तम्।
धन्योसि त्वं यदि तनुरियं लब्धबोधो मृगीभि-
र्दग्धारण्यस्थलकमलिनीशंकयालोक्यते ते ॥८८॥

अर्थ—जिनि विषै विच्छेद न होय ऐसे सुखके समाज तिन करि तौ पाल्या हुवा है। अर मनोहर अङ्ग युक्त स्त्री तिनके चपल रमणीक जे नेत्र तेई भए कमल तिनकरि पूजित सन्मानित ऐसा

पङ्क शरीर था। बहुरि यौवन अवस्थाका मध्य विर्षे पाया है ज्ञान जानैं ऐसा जो तू सो तेरा ऐसा शरीर भस्म भया, वनकी स्वच्छ कमलनी की आशंका करि था हरबौनि करि अवलोकिये तो तू धन्य है।

भावार्थ—जैसा अभ्यास होय तैसैं प्रवर्ते, ऐसी प्रवृत्ति है। तातैं दुखिया दुःख सहै तौ सहै। परन्तु पूर्वे पुण्य उदय करि सुख समाज स्त्री आदि कारणनिर्तें परम सुखिया होय रहे थे, बहुरि ज्ञान पाय यौवन अवस्था विर्षे ही दीक्षा धारि तप करि ऐसे भए जिनिकौं हरणी सारिखा चपल जीव जस्या हुवा ठूठ सारिखा भव जाके हैं ते जीव धन्य हैं, सर्व प्रकार स्तुति योग्य हैं। देखो आत्म ज्ञानकी कोई ऐसी ही महिमा है। परम सुखिया तीर्थंकर चक्रवर्ति ते दीक्षाधारि मेरुवत् निश्चल भए। सुकुमाल आदि ऐसा प्रतिमा योग दिया जहां बलि लपटगई सुकुमालको कै सरस्यौं चुमै थी सो स्यालिनी खाने लगी तौ भी निश्चल रहे। इत्यादि पुरुष भये ते धन्य हैं।

आगैं ऐसैं ही तेरा जन्म सफल होय अन्य प्रकार नाहीं ऐसैं दिखावता सता सूत्र कहै हैं—

(शार्दूल छन्द)

बाल्ये वेत्सि न किंचिदप्यपरिपूर्णाङ्गो हितं वाहितं
कामान्धः खलु का[illegible]

मध्ये वृद्धतृषार्जितुं वसुपशो क्लिश्नासि कृष्यादिभि-
र्वृद्धोवार्धमृतः क्व जन्मफलितं धर्मो भवेन्निर्मलः ॥८६॥

अर्थ—बाल्य अवस्था विषैं तौ तू सम्पूर्ण अङ्ग रहित होत सन्ता किछू भी हित वा अहित कौं नाहीं जानै है। बहुरि यौवन विषैं स्त्री रूपी वृक्षनि की सघन ॥रूप वन ता विषैं भ्रमता सन्ता काम करि अन्ध भया। बहुरि मध्य वय विषैं बधी जो तृष्णा ता करि पशु समान भार निर्वाह करनहार होत सन्ता धन उपजावनैं कौ खेती आदि कर्मनि करि क्लेश पावै है। बहुरि वृद्ध अवस्था विषैं आधा मृतक भया। ऐसैं तेरा मनुष्य जन्म है सो फलवान कहा होइ निर्मल धर्म कहा होइ।

भावार्थ—सर्व पर्यायिनि विषैं मनुष्य पर्याय धर्म साधन कौं कारण है। बहुरि धर्म साधन ही तैं मनुष्य पर्याय सफल हो है। सो तेरा मनुष्य पर्याय का काल तौ ऐसें बीतै है। बालकपनै तौ कुछ हित अहित का ज्ञान ही होइ सकै नाहीं। यौवन विषैं तू स्त्रीनि का रसिया होय कामान्ध भया। मध्य अवस्थाविषैं कुटुम्बा-दिक की वृद्धि भई तहा मोकों सर्व का निर्वाह किया चाहिए ऐसा विचारि धन उपजावनें कै अर्थि खेद-खिन्न रहै। वृद्ध अवस्था आए इन्द्रिय मन शिथिल होनै तैं आधा मृतक समान हो है।

ऐसैं काल बीतैं धर्म कहा सधै, मनुष्य जन्म कैसै सफल होइ? तातैं बाल वृद्ध अवस्था विषैं तौ वश नाहीं। यौवन अवस्था वा

मध्य अवस्था विषैं स्त्री कुटुम्बादिक सौं राग छोडि धर्म साधन करो। ऐसैं ही तुम्हारा जन्म सफल हो है।

आगैं तीनौं अवस्था विषैं बुरा करन हारा जो कर्म ताका वश-वर्ती होना अब तोकौं योग्य नाहीं, ऐसे सीख देता सन्ता सूत्र कहै हैं।

(शार्दूल छन्द)

बाल्येस्मिन् यदनेन ते विरचितं स्मर्तुं च तन्नोचितं
मध्ये चापि धनार्जनव्यतिकरैस्तन्नार्पितं यत्त्वयि ।
वार्द्धक्येप्यभिभूय दन्तदलनाद्यांचेष्टितं निष्ठुरं
पश्याद्यापि विधेर्वशेन चलितुं वाञ्छस्यहो दुर्मते॥९०॥

अर्थ—इस पर्याय विषैं इस कर्म नैं बाल अवस्था विषैं जो तेरा किछू बुरा किया सो यादि करने योग्य भी नाहीं। बहुरि मध्या-वस्था विषैं धन उपजावनें का प्रकारनि करि सो कोई दुख रह्या नाहीं जो तोकौं न दिया। बहुरि वृद्ध अवस्था विषैं भी तेरा अपमान करि दन्त तोडनां आदि कठोर चेष्टा करी, सो तू देखि। हे दुर्बुद्धी ! अब भी इस कर्म का वश करि ही चलने कौं चाहै है।

भावार्थ—लोक विषैं कोई एक बार अपना बुरा करै ताकौं अपना बैरी जानि वाकै आधीन रहना चाहै नाहीं वाका नाश करना ही विचारै। इस कर्मनैं अनादि संसार तैं जो तेरा बुरा

किया ताका तौ तोकौं स्मरण नांहीं। परतु इस पर्याय विषैं बाल अवस्था विषैं तौ गर्भ जन्म शरीर वृद्धि आदि दशानिकरि. अर मध्य अवस्था विषैं धन उपार्जन आदि क्रियानि करि, अर वृद्धा-वस्था विषै दात तौडना आदि अपमान कार्य करनैं करि जो बुरा किया सो तू देखै है। ऐसें भी प्रत्यक्ष देखि अब भी तू कर्म ही के आधीन रह्या चाहै हैं। या का नाश का उपाय नाहीं करै है, सो यहु तेरी पुरुषार्थता की हीनता तौ ही कौं दुखदायक होसी।

आगैं वृद्ध अवस्था विषै इन्द्रियादिकनि की ऐसी प्रवृत्ति देखता जो तू सो तुझकौं निश्चित रहना योग्य नांहीं, ऐसैं कहै हैं।

अश्रोत्रीव तिरस्कृता परतिरस्कारश्रुतीनां श्रुति-
श्चक्षुर्वीक्षितुमक्षमं तव दशां दूष्यामिवान्ध्य गतम्।
भीत्येवाभिमुखान्तकादतितरां कायोप्ययं कम्पते
निष्कम्पस्त्वमहो प्रदीप्तभवनेप्यासे जराजर्जरे ॥६१॥

अर्थ – वृद्ध अवस्था विषैं कान है सो मानू औरनि करि कीया हुआ अपमान निंदादि रूप तिरस्कार लीए वचन तिनकौं न सुन्या चाहता सता सुनने तैं रहित भया है। बहुरि नेत्र है सो मानू तेरी निंद्य दशा देखनें को असमर्थ होत सता अधपना कौं प्राप्त भया है। बहुरि यहु शरीर है सो मानू सन्मुख आया कालतैं भय करि बहुत कापैं है। ऐसैं जरा करि जीर्ण भया अग्नि लाग्या मदिरवत् शरीर विषैं तू निश्चल तिष्ठै है, सो बड़ा आश्चर्य है।

भावार्थ—मरण तो सर्व अवस्था विषैं हो है। तातैं स्याना होय सो तौ निश्चित रहै नाहीं, पहले ही परलोक का यत्न करै। बहुरि वृद्ध अवस्था आए तो अवश्य मरन होने का नियम है। बहुरि विषयादिक के कारन सर्व शिथिल भए, अब भी इहां ही रहने की आशा करि निश्चित होय रह्या है। सो जैसैं कोई आगि करि जलता मंदिर विषै निश्चित तिष्ठै, ताका आश्चर्य होय, तैसैं तेरी दशा देखि हमकू आश्चर्य भया है। अब निश्चित रहै उपाय का अभाव देखि तोकौं सावधान किया है।

आगैं वहां तिष्ठता जीवकौं सीख देत संता, 'अति परिचितेषु' इत्यादि सूत्र कहै हैं।

आर्या—अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः।
त्वं किमिति मृषा कुरुषे दोषासक्तो गुणेष्वरतः॥६२॥

अर्थ—जिनका बहुत परिचय संसर्ग भया होय तिन विषैं तो अनादर होइ अर नवीन विषैं प्रीति होइ ऐसी लोकोक्ति है। बहुरि तू जैसैं रागादि दोषनि विषैं आसक्त होत संता अर सम्यग्दर्शनादि गुणनि विषैं प्रीति न करत संता तिस लोकोक्ति कौं मिथ्या कैसें करै है।

भावार्थ—लोक विषैं तो जैसे प्रसिद्ध है। जाका बहुत सेवन भया होय तिस विषैं अनादर होइ, अर जो अपूर्व लाभ होय तिस विषै प्रीति होइ। सो तेरै रागादिक का सेवन तौ अनादितैं भया तिस विषैं ही तेरै आसक्तता पाइए है अर सम्यग्दर्शनादिक का

अपूर्व लाभ है तिस विषैं तेरी प्रीति नांही सो वह लोक प्रसिद्ध वचन झूठ कैसै करै है, यह बड़ा आश्चर्य्य है।

आगैं दोषनि विषैं आसक्त व्यसनी हित अहित की भावना न करता ऐसा जो तू सो तैं संसार विषैं मरणादि दुःख पाया, ऐसा दृष्टांत सहित दिखावता संता सूत्र कहै हैं।

बसन्ततिलका छन्द

हंसैर्न भुक्तमतिकर्कशमम्भसापि
नो संगतं दिनविकाशि सरोजमित्थम्।
नालोकितं मधुकरेण मृत वृथैव
प्रायः कुतो व्यसनिनां स्वहिते विवेकः ।६३।

अर्थ—जो कमल है सो हंसनि कर भोग्या नाहीं है। अति कठोर है। जल करि भी एकीभूत नाहीं किया है। दिन ही विषैं फूलै है। ऐसैं भ्रमर है तौंह विचार न किया। बहुरि वृथा ही गंध का लोभी होय मूवा सो व्यसनी है तिनकैं बाहुल्यपनैं अपनैं हित विषैं विवेक कहा तैं होइ, न होइ।

भावार्थ—इहां अन्योक्ति अलंकार करि दृष्टांत ही करि दार्ष्टांत का सूचन कीया है। जैसैं भौंरा कमल विषैं गंधका लोभ तैं तिष्ठता ऐसा विचार नाही करै है जो हंस याकां सेवन न किया है यह कठोर है, जलतैं न्यारा ही रहै है, रात्रि विषैं मुद्रित हो है। बहुरि वह भौंरा आसक्त हुवा तहां ही मरण पावै है। तैसैं सरागी

जीव विषय सामग्रीनि विषैं सुख का लोभ तैं सेवन करता जीता विचार नाहीं करै है जो महान पुरुष इनका सेवन न कीया है। ए कठोर दुखदायक हैं। निर्मल आत्म स्वभावतैं न्यारे ही रहै हैं। पाप रूप आप विपत्तिरूप हैं। बहुरि यह सरागी पुरुष ही पाप बंध करि नरकादिक का पात्र हो है। सो व्यसनी होइ तिनकै अपने हित का विचार होइ सकता नाहीं। आराकला करि पहलैं तौ किछू न भासैं, फल लागै तब आपही दुख भोगवै।

आगैं तिस दोष का न अवलोकनैं विषैं सम्यग्ज्ञान का अभाव है सो कारण है। तातैं संसार विषैं भ्रमता प्राणी कै तिस सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति को अति दुर्लभपनौं है। ऐसे कहैं हैं।

> भ्रमेन दुर्लभा सुष्टु दुर्लभा सान्यजन्मने।
> तां प्राप्य ये प्रमाद्यन्ति ते शोच्याः खलु धीमताम् ॥९४॥

अर्थ—संसार विषैं विचाररूप बुद्धि होनी ही दुर्लभ है। बहुरि परलोक कै अर्थि सो बुद्धि होनी अति दुर्लभ है। बहुरि तिस बुद्धिकौं पाइ करि जे प्रमादी रहै हैं ते जीव ज्ञानवानौं के सोचने योग्य है।

भावार्थ—पर्केन्द्रियादि असैनीपर्यंत सर्व अर अपर्याप्त आदि केई सैनी इनिकै तो मनका विचार है ही नाहीं। अर संसार विषैं इन ही पर्यायनि विषैं बहुत भ्रमण करना तातैं प्रथम तौ बुद्धि की प्राप्ति होनी ही कठिन है। बहुरि कदाचित्

कोऊ कै बुद्धि की प्राप्ति होई तो परलोक कै अर्थि धर्म रूप विचार होनां महा कठिन है। अनंतबार मन सहित होय तौ भी धर्म बुद्धि किसी ही जीव के हो हैं। बहुरि कोई भाग्य करि धर्म बुद्धि कौं भी पाइ करि जे सावधान-नांहीं रहै है, धर्म साधन विषै शिथिल रहै हैं, तिनकी चिंता बुद्धिवानौं कै हो है। जो ऐसा अवसर पाइ चूकै है, इनिका कहा होनहार है। तातैं धर्म बुद्धि पाइ प्रमादी होना योग्य नाहीं है।

आगैं पाई है बुद्धि जिनूने, अर अद्भुत पराक्रम के धारी हैं, बहुरि लक्ष्मी के विलास का अभिलाष करि राजानि की सेवा करै हैं तिनका पश्चात्ताप करता सता सूत्र कहै हैं।

वसन्त तिलका छन्द

लोकाधिपाः क्षितिभुजो भुवि येन जाता-
स्तस्मिन् विधौ सति हि सर्वजनप्रसिद्धे।
शोच्यं तदेव यदमी स्पृहणीयवीर्या-
स्तेषां बुधाश्च बत किंकरतां प्रयान्ति॥ ६५॥

अर्थ—जिस धर्म विधान करि लोक के स्वामी राजा भये तिस सर्वलोक विषै प्रसिद्ध धर्म विधान का होत सतैं जो वाञ्छने योग्य है पराक्रम जिनका ऐसे ए ज्ञानी तिनि राजानिका किंकरपना कौं प्राप्त होय हैं, सोई सोचने योग्य है। ऐसा कार्य काहे कौ करै है। इस विचार तैं हमकूं खेद हो है।

भावार्थ—राज्यपद है सो धर्म का फल है। ऐसे लोक विषै प्रसिद्ध है। बहुरि धर्म साधन की सर्व सामग्री मिलमें हैं धर्म साधन होइ सके अर आप बहुत पराक्रमी धर्म साधनें कू समर्थ। बहुरि आप ज्ञानी धर्मका फलकौं पहचानें। ऐसें होत संते भी धर्म तौ न साधै अर धनादिक का लोभ लिये राजानिकौं सेवै तो तिनिकौ धिक्कार हमकौं ही है। जो राजा जाका कीया भया ताका सेवन छांडिए राजा का सेवन काहे कौं करै है। इहां भाव यह है। धर्म का सेवन छांडि अन्य कार्य करनों योग्य नाहीं।

आगैं पंगौं पछ्या है औरनिका मस्तक जाके, ऐसा कोई कृष्ण नामा राजा ताका वरण्या हुवा निधान का जो कोई ग्यानक ताका निरूपण का मिस करि धर्म का वाचक निधान का स्वरूप आगें ताकौं दिखावता संता सूत्र कहै है।

(शार्दूल)

यस्मिन्नस्ति स भूभृतो धृतमहावंशाः प्रदेशाः परः
प्रज्ञापारमिता धृतोन्नतिधना मूर्ध्ना ध्रियन्ते श्रियै।
भूयास्तस्य भुजङ्गदुर्गमतमो मार्गो निराशस्ततो
व्यक्तं वक्तुमयुक्तमार्यमहतां सर्वार्थसाक्षात्कृतः ॥६६॥

अर्थ—यहां श्लेषालंकार किया है। तहां एक अर्थ विषैं तौ कोई सर्वार्थ नामा दूसरा मंत्री राजा का भया है जानें दुर्गम स्थान जहां कोई कृष्ण राजा का निधान था तहां जाय ताकौं प्रगट कीया

है ताका वर्णन कीया है। बहुरि दूसरे अर्थ विषैं धर्म के लक्षणा-दिक का वर्णन है। तहां पहलैं पहला अर्थ कीजिये है। सो प्रदेश कहिए स्थानक सो पर कहिए उत्कृष्ट है। सो कौन, जिस प्रदेश विषैं पर्वत तिष्ठैं है। कैसै हैं पर्वत, फारे हैं वडे वांस जिनू नैं। बहुरि कैसे हैं बुद्धि ही करि छेहडा पाईए है जिनका ऐसे वडे हैं। वहुरि कैसै हैं शिखर करि सोभाकै अर्थि धाऱ्या है उचाई रुप धन जिनू नैं। ऐसैं पर्वतनि करि सयुक्त प्रदेश है। वहुरि तिस प्रदेश का मार्ग है सो बड़ा है। सर्पनि करि अतिशय पनैं औरनिकौं दुर्गम है। आशा जे दिशा तिनि करि निष्क्रात है। जहा दिशानि की शुद्धि नाहीं रहे है ऐसा जाका मार्ग है। सो वह प्रदेश जैसें व्यक्त सबनि करि जान्या जाय तैसैं कहना अयुक्त है, कह्या जाता नाही। हे आर्य ! तिस प्रदेश का अजानन हारा ऐसा विषम प्रदेश है सो सर्वार्थ नामा कोई राजा का दूसरा मत्री तहिं साक्षात् किया है, जाय करि प्रत्यक्ष देख्या है। ऐसें एक अर्थ विषैं सर्वार्थ मत्री की प्रशसा करी। अब यही का द्वितीय अर्थ कहिए है।

प्रदिश्यते कहिए परकौं उपदेशिए ऐसा जु प्रदेश कहिए धर्म सो वह धर्म उत्कृष्ट है सो कौन। जाकौं होतैं भूभृत जे राजा हैं ते लोकन करि लक्ष्मी कै अर्थि मस्तक करि धारिये हैं। लोक लक्ष्मी कै अर्थि राजानि कौं मस्तक नमावै हैं। सो राजानि कै यहु धर्म ही का फल है। कैसे हैं राजा धाऱ्या है इक्ष्वाकु आदि वश जिनू नें। वहुरि कैसे हैं बुद्धि के पार कौं प्राप्त भये हैं। वहुरि

कैसे हैं धारे हैं समस्त भर धन भंडार जिन् ने, ऐसे राजा जिम धर्म हो तैं प्रधान हो है। बहुरि तिस धर्म रूप प्रदेश का मार्ग है दान प्रमादि भेदनिर्ते प्रचुर है। अनेक प्रकार है। बहुरि आशा का बांधा ताकरि रहित है। बहुरि भुजंगम जे कामी तिन करि दुगम है, अगोचर है। जातैं ऐसैं है तातैं भाव्यैं जो भोले तिनि विर्षे बड़ा है इस तिनके सा मार्ग प्रगट करन कौं प्रयुक्त है। हमारी इतनी शक्ति नाही जो प्रगट करैं। बहुरि समस्त जे भाव्य कहिए गणधरादि सत्पुरुष वा सबनि करि सेवने योग्य ऐसा सर्वार्थ्य कहिए सर्वज्ञ देव तिन करि प्रगट कीया है। उनका प्रगट कीया हू धर्म का मार्ग सर्वे कै प्रतीति करने योग्य हो है।

भावार्थ—इहां कोई प्रसंग पाइ सर्वार्थ्य मंत्री की वो प्रशंसा करी। अर याही का दूसरा अर्थ विर्षे धर्म का फल वा धर्म का मार्ग प्रगट करन द्वारा तिनिका स्वरूप कह्या है।

आगैं शरीरादिक तैं वैराग्य उपजाय जीव कौं धर्म अर धर्म का मार्ग दिखावता जो मुनि ताकैं किछू भी फल की इच्छा नाही है। पर का उपकार ही के अर्थि उनकी प्रवृत्ति है। जातैं "परोपकाराय सतां हि चेष्टितं" ऐसा नातिका वचन है, सो ही दिखावता संता सूत्र कहै है।

(शिखरणी छंद)

शरीरेऽस्मिन् सर्वाशुचिनि बहुदुःखेपि निवसन्
व्यरसीको नैव प्रथयति जनाःप्रीतिमधिकाम्।

इमां दृष्ट्वाप्यस्माद्विरमयितुमेनं च यतते
यतिर्यातारव्यानैः परहितरतिं पश्य महतः ॥ ६७ ॥

अर्थ—सर्व प्रकार अपवित्र अर शारीरिक मानसिक बहुत दुःख जा विषैं पाइए ऐसा इस शरीर कै विषैं तिष्ठता थका जानै है सो विरक्त नाहीं हो है। बहुरि यहु जन इस शरीर को देखि अधिक प्रीति कौं नांहीं विस्तारै कहा, अपितु विस्तारै ही है, यहु काकाख्यान है। सो यहु जन तौ ऐसा है। बहुरि मुनि है सो इस जनको जान्या हूवा सार उपदेश तिनि करि इस शरीरतैं विरक्त करनैं कौं यत्न करै हैं। सो महत मुनि कै ऐसो परहित रने विषैं अनुराग है ताकूं तू देखि।

भावार्थ—जैसे परजीव भला मानै अपना अभिलाप सधै सैं तो सीख देने वाले बहुत हैं। परंतु मुनीनि कै ऐसा परहित वेषैं अनुराग है। ए जीव तौ शरीर कौं अपवित्र दुःख का कारन प्रत्यक्ष देखै है तौ भी यातैं विरक्त न हो है। याही विषैं अति प्रीति करै है। अर मुनि है सो जैसें दीपक विषैं पड़ता पतग कौं दयावान् बचावै तैसैं याकौं उपदेश देइ शरीर तैं विरक्त करै हैं। यद्यपि याकौं उपदेश कडवा भी लागै है, तथापि मुनि जानै है यहु बहुत दुखी होसी तातैं दयाकरि उपदेश दिया ही करै हैं। उन मुनिनि कै अन्य किछू अभिलाष नाहीं। देखो महंत पुरुष ऐसै पर उपकारी हो हैं।

आगैं जीव तौ शरीर तैं विमुख न हो है, अर मुनि है सो

मात सार उपदेशनि करि तिस जीव कौं शरीर तैं विमुख करै हैं सो काहे तैं करै हैं, ऐसैं पूछें उत्तर कहै हैं—

(वसंततिलका छन्द)

इत्थं तथेति बहुना किमुदीरितेन,
भूयस्त्वयैव ननु जन्मनि भुक्तमुक्तम्।
एतावदेव कथितं तव संकलय्य,
सर्वापदां पदमिदं जननं जनानाम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—ऐसे हैं तैसे हैं-या प्रकार बहुत कहनें करि कहा साध्य है ? हे जीव ! तैं ई संसार विषैं शरीर है सो बारंबार भोग्या और छोड्या अब तेरे ताईं संकोच करि इतना ही कह्या है। जीवनि कै यहु शरीर है सो सर्व आपदानि का स्थानक है।

भावार्थ—दार्ष्टांत करि बहुत कह्या। अर तेरा भला न होना है तो घना कहना निष्फल है। तैं ही अनादि तैं शरीर धारि तहां अनेक दुःख भोगि करि छोड़ि नवीन शरीर धार‍्या सो हम संक्षेप करि अब इतना ही कहै हैं। यहु शरीर ही जन्म मरण क्षुधा तृषा रोगादि सर्व दुःखनिका स्थानक है। तातैं शरीर तैं विरक्त होउ, जैसैं शरीर का संबंध का अभाव होय तैसे उपाय करना योग्य है।

आगैं तिस शरीर कौं ग्रहण करत संता गर्भ अवस्था विषैं कहा करत संता कैसा हो है, सो कहै हैं।

(मन्दाक्रांता छन्द)

अन्तर्वान्तं वदनविवरे क्षुत्तृषार्तः प्रतीच्छन्-
कर्मायत्तं सुचिरमुदरावस्करे वृद्धगृद्धया।
निष्पन्दात्माकृमि सहचरो जन्मनि क्लेशभीतो-
मन्ये जन्मिन्नपि च मरणात्तन्निमित्ताद्बिभेषि ॥६६॥

अर्थ—हे प्राणी ! तू माता का उदर रूपी विष्टा स्थान विषैं कर्म कै आधीन हुवा बहुत काल ताई वधने का लोभ करि अतर्वात जो माता का चाव्या हुवा अन्न ताकौ मुख रूप छिद्र विषैं चाहत भया। कोई वूँद मेरे मुख मैं परै ऐसैं मुख फारे रहै है। कैसा है वह प्राणी, क्षुधा तृपा करि पीडित है। बहुरि उदर का स्तोक क्षेत्र है तातैं तहाँ हलना चलना रहित है स्वरूप जाका ऐसा है। बहुरि उदर विषैं निपजै हैं लट आदि जीव तिनका सहचारी साथी है। ऐसैं गर्भ विषैं अवस्था हो है सो हे प्राणी। मैं ऐसैं मानौं हौं —ऐसा जन्म अवसर विषै क्लेश हो है। तातैं डरया हूवा जन्म का कारणजु है मरण तिसतैं डरै है।

भावार्थ—शरीर सबध तैं नरकादि विषै दुख हो है सो तौ दूरि ही तिष्ठौ, तैं यहु उत्तम मनुष्य पर्याय पाया है ताका ग्रहण करता गर्भ विषैं तोकौं कैसा दुख भया ताका तौ चितवन करो। हम तौ यहु मानै है जो तू मरण तैं डरै है सो मरण भए पीछै ... पाया है तिसका

भयनैं तरै मरण का भय पाइए है। ऐसा शरीर की उत्पत्ति विषैं दुख जानि जन्म का दुख न होइ सो उपाय करना।

आगैं सम्यग्दर्शन का लाभ तैं पहलैं भए जे पर्याय तिन विषैं तैं सब कार्य अपना घात ही के अर्थि आचरन किया ऐसा कहै है।

(वंशस्थ छन्द)

अजाकृपाणीयमनुष्ठितं त्वया—
विकल्पमुग्धेन भवादितः पुरा।
यदत्र किंचित् सुखरूपमाप्यते
तदार्य विद्ध्यन्धकवर्तकीयकम् ॥१००॥

अर्थ—हे आर्य भोला जीव! तैं इस पर्याय तैं पहलैं अजा कृपाणीय न्याय कीया। जैसैं अजा जो छाली ताकौं मारनें के अर्थि कोई छुरी चाहता था। बहुरि उस छेलीनैं खुरतैं खोदि छुरी काढी जिसतैं वाका मरण भया। तैसैं जा कारण करि तेरा घात होय, दुख होय सोई काम किया। कैसा है तू, विकल्प जो हेय उपादेय का विचार ताविषैं मूढ है। बहुरि इस संसार विषैं जो किछू सुख रूप स्त्रियादिक का सेवन पाइए है ताहि तू अंधकवर्तकीयक जानि। जैसैं आंधा हाथी हैरैं बटेर कौं पकडै ताका बड़ा आश्चर्य है, तैसैं संसार विषैं भोला भी सुखी होनें का बड़ा आश्चर्य जानना।

भावार्थ—हे जीव तैं छेली की छुरीवत् अपनां बुरा होने का कार्य किया। बहुरि इस पर्याय विषैं तोकौं किछू विषय सेवनतैं सुख सा भया ता करि तू जानै है मेरी ऐसी ही दशा रहेगी। ऐसैं जानि निश्चित भया है। सो ऐसी भी अवस्था इस संसार विषैं आंधे की बटेर समान होइ गई है। तातैं याकै भरोसै निश्चित रहना योग्य नांहीं।

आगैं सुख उपजावन हारे वस्तु तिनि के अभिलाषी जीवनि का काम है, सो यहु अवस्था करै है, ऐसा कहै हैं —

(वसन्ततिलका छन्द)

हा कष्टमिष्टवनिताभिरकाण्डं एव-
चण्डो विखण्डयति पण्डितमानिनोपि।
पश्याद्भुतं तदपि धीरतया सहन्ते-
दग्धुं तपोग्निभिरमुं न समुत्सहन्ते ॥१०१॥

अर्थ—हाय यहु बडा कष्ट है जो आपकौं पडित ज्ञानी मानै है तिनकौ भी यहु प्रचड काम है, सो विनाही अवसर इष्ट स्त्री-निका निमित्त करि खडित करै है। ज्ञानीपना का खड खड करि महा दुख उपजावै है। बहुरि तू यहु आश्चर्य देखि तिस अपना खड खड होना कौं तौ धीर वीरपना करि सहै है, अर इस कामकौं तप रूपी अग्निकरि जलावने कौं नाही उत्साह करै है।

भावार्थ—काम है सो देवतानि पर्यंत सर्व जीवनिकौं सतावै है। बहुरि जे आपकौं ज्ञानी मनै है तिनिकौं भी स्त्रीनिका

निमित्तवैं भ्रष्ट करि पुन्य उपजावै है। सो ऐसा जैसैं कोई बुद्धिमान हुवा रहै है, अर आपकौं कोई वायुनि करि बेरै है। तहां साहस करि वायुनि की तौ मार खाया करै अर वाय चलावने वाले कौं मित्र जानि वाके नाश का उपाय न करै, वाकी पुष्टता ही कीया चाहै तहां बड़ा आश्चर्य मानिये। तैसैं कोई आपकौं स्त्री मानै है अर आपकौं काम है सो स्त्री रूपी वायुनि करि पड़े है। सो उनकी तौ पीड़ा सह्या करै अर काम कौं हित जानि तपरूपी अग्नि करि वाकौं भस्म करने का उपाय नांही करै, अनेक सामग्रीनि करि वाकी पुष्टता ही कीया चाहै है। सो बड़ा आश्चर्य है।

आगैं काम बलवाने कौं प्रसाद रूप भए ऐसे कोई जीव ते कहा करत भये सो कहै हैं।

(शार्दूल छंद)

अर्थिभ्यस्तृणवद्विचिन्त्य विषयान् कश्चिच्छ्रियं दत्तवान्
पापां तामवितर्पिणीं विगणयन्नादात् परस्त्यक्तवान् ।
प्रागेवाकुशलां विमृश्य सुभगोऽप्यन्यो न पर्यग्रही–
देते ते विदितोत्तरोत्तरवरा सर्वोत्तमास्त्यागिनः ॥ १०२॥

अर्थ—कोई त्यागी तौ विषयनि कौं तिणां समान अकार्यकारी चितवन करि जे पुत्रादिक वा याचक लक्ष्मी के अर्थी तिनकौं लक्ष्मी देय भया। बहुरि अन्य कोई त्यागी तिस लक्ष्मी कौं पापरूप

तृप्ति की करणहारी नाही ऐसी मानता सता काहू कौ न देत भया ऐसैं आप छोडता भया। वहुरि अन्य कोई त्यागी सौभाग्य दशाकौं प्राप्त भया सो तिस लक्ष्मी कौ पहलै ही अकल्याणकारी विचारि न ग्रहण करता भया ऐसें एते तीनौं सर्वोत्कृष्ट त्यागी उत्तरोत्तर उत्कृष्ट तुम जानहु।

भावार्थ- सर्व धनादि सामग्रीनिका त्याग करैं ते सर्वोत्कृष्ट त्यागी कहिए। तिनि विषै जे पुत्रादिक कौं धनादिक देइ त्याग करै हैं तेभी उत्कृष्ट त्यागी हैं। वहुरि जे आप काहूकों देवैं नाही ऐसें ही धनादिक कों त्यागैं ते जीव उनतैं भी उत्कृष्ट त्यागी हैं। जातैं उनकै तौ किछू कषाय अशतै काहू कौ देनें का परिणाम भया, इनिकै ऐसी विरागता भई जो कोऊ ग्रहो इनिका किछू प्रयोजन नाहीं। वहुरि जे पहलैं ही धनादिक कौ ग्रहै नाही, कुमारादि अवस्था विषैं ही त्याग करै ते उनतैं भी उत्कृष्ट त्यागी हैं, जातैं उनतो भोगि करि त्याग कीया, इनू कै ऐसी विरागता भई जो पहले ही भोगवने के परिणाम ही नाहीं भए। ऐसै ए सर्व दत्ति के दातार अनुक्रम तैं उत्कृष्ट जानने।

आगैं उत्कृष्ट सपदानि कौं पाइ करि छोरै हैं जे सत्पुरुष तिनिका किछू भी आश्चर्य नाही, ऐसा दिखावता सता सूत्र कहै हैं।

(अनुष्टप छन्द)

विरज्य सम्पदः सन्तस्त्यजति किमिहाद्भुतम्।
मावमीत् किं जुगुप्सावान् सुभुक्त मपिभोजनम्॥ १०३॥

अर्थ—सत्पुरुष हैं ते विरक्त होइ करि संपदानि कौं छोरे हैं। सो इहां कहा आश्चर्य है? ग्लानि सहित पुरुष है सो भले प्रकार भक्षण कीया हुवा भी भोजन कौं कहा वमैं नांही? अपितु वमैं ही वमैं।

भावार्थ—राग भाव होतें तौ त्याग कीए दुःख हो है। दुःख सहना कठिन है। तातैं सरागी पुरुष त्याग करैं तौ तहां आश्चर्य मानि। बहुरि विरागता भए त्याग करने मैं किछू खेद नाहीं, सुख हो है। अर सुख कौं कौन न चाहै, तातैं विरागी पुरुष त्याग करैं तहां किछू भी आश्चर्य नांही। जैसे काहू न भोजन किया था अर वाकै ऐसी ग्लानि भई इस भोजन तैं मेरे प्राण जांहिगें, तब वह पुरुष उस भोजन का उपाव करि भी वमन करै। तैसैं मिले हुए भी विषयनि विषै इनिके सेवन तैं मेरा बुरा होयगा ऐसी उदासीनता भाए उपाय करि भी तिनका त्याग करिये है इहां किछू आश्चर्य नांही।

आगैं लक्ष्मी कौं छारता संता केई कहा करै है सो कहै है।

श्रियं त्यजन् जडः शोकं विस्मयं सात्त्विकः स ताम्।
करोति तत्त्वविच्चित्रं न शोकं न च विस्मयम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—मूर्ख पराक्रम रहित पुरुष है सो तौ लक्ष्मी कौं त्याग करता संता शोक करै है। बहुरि सत्त्व पराक्रम का धारी पुरुष है सो गर्व करै है। बहुरि तत्त्वज्ञानी पुरुष तिस लक्ष्मी कौं

त्याग करता संता न शोक करै है अर न गर्व करै है, सो यहु बड़ा आश्चर्य है?

भावार्थ—संसारी जीवनि कै धनादिक का त्याग होतैं दोय प्रकार भाव होइ। जो पराक्रम रहित है, अर वांकै कोई कारण पाइ धनादिक का त्याग हो है, तहां वांकै तौ शोक हो है। यह कार्य क्यौं भया, ऐसैं अंतरंग विषैं खेद उपजै है। बहुरि जो पराक्रम का धारक है अर वांकै कोई कारणतैं वा अपने उत्साह तैं धनादिक का त्याग हो है तहां वाकै गर्व हो है। मैंनै ऐसा कार्य किया, ऐसे अंतरंग विषैं अहमेव हो है। बहुरि देखो आश्चर्य! जो तत्त्वज्ञानी पुरुष है ताकै धनादिक का त्याग होतैं शोक अर गर्व दोऊ ही नाहीं हो है। जातैं ज्ञानी धनादिक कौं परद्रव्य जानैं है। बहुरि पर द्रव्य का त्याग होतैं खेद अर गर्व दोऊ ही नाहीं कीजिए है। तातैं ज्ञानी शोक, गर्व रहित हुवा पर द्रव्य कौं त्यागै है।

आगै विवेकी पुरुषनि करि जैसैं लक्ष्मी तजिए है तैसैं शरीर भी तजिए है, ऐसैं दिखावता संता सूत्र कहै हैं।

(शिखरणी छन्द)

विमृश्योच्चैर्गर्भात्प्रभृति मृतिपर्यन्तमखिलं—
मुधाप्येतत् क्लेशाशुचिभयनिकाराघबहुलम्।
बुधैस्त्याज्यं त्यागाद्यदि भवति मुक्तिश्च जडधीः
स कस्त्यक्तुं नालं खलजनसमायोगसदृशम् ॥१०५॥

अर्थ—यहु शरीरादिक है सो समस्त ही गर्भ तैं लगाय मरण पर्यंत वृथा क्लेश अपवित्रता भय पराभव पाप का विषै बहुत पाइए ऐसा है। सा ऐसा यहु शरीरादिक नीकैं विचारि ज्ञानी निकरि त्यजने योग्य है। बहुरि जो याके त्याग तैं मुक्ति होय तो ऐसो मूर्ख बुद्धी कौन है जो याके त्याग करने कौ समर्थ न होइ? कैसा है शरीरादिक-दुष्टजन का मिलाप समान है।

भावार्थ—दुःख, अपवित्रपनौ भय,अपमान पाप ए जहाँ एक एक भी थोरे भी कबहू भी होइ ती ताकू विवेकी छांडैं, सो शरीरादि विषैं ए सब ही बहुत घनें सदा काल पाइये है। तातैं ए विवेकीनि करि छोडने योग्य ही है। बहुरि अन्य काम न होइ तौ भी इनिकौं छोडने। अर इनिकै छोडनेतैं मोक्ष होय तौ ऐसा मूर्ख कौन जो इनिकौं न छांडै। जैसैं दुष्ट का मिलाप दुःख-दायक है तेसैं इनिकौं सर्व प्रकार दुखदायक जानि छोडना ही योग्य है।

आगैं जैसें लक्ष्मी अर शरीर अनेक अनर्थ के कारणपना करि छोडे तैसें ही रागादिक भी छोडनें, ऐसा कहै है—

(वसंततिलका छंद)

कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं—
त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।
प्रतीहि भव्यप्रतिलोमवर्तिभि-
र्ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम् ॥१०६॥

अर्थ—हे भव्य! तैं ही कुज्ञान रागादि रूप विरुद्ध चेष्टानिकरि

वारवार जन्म मरणादि है लक्षण जाका ऐसा फल पाया है। तौ अब तू ऐसी प्रतीति करि जो इनितैं विपरीत प्रवर्त्तिनि करि तिस फलतैं विपरीत-लक्षण लीए जो फल ताकौ निश्चै करि तू पावैगा।

भावार्थ—लोक विषैं भी जिस कारण तैं जो कार्य निपजै तिसतैं उलटा कारणतैं उलटा ही फल निपजै। जैसैं गरमी तैं जो रोग होय तिसतैं उलटा शीतल वस्तु तै तिस रोग का नाश होय। तातैं हे भव्य! तैं अज्ञान असयम करि जन्म मरणादि दु ख रूप फल पाया है। वहुरि जिस कारण तैं एकही वार कार्य निपजै तहा तौ भ्रम भी ऐसा होइ जो और ही कारण तैं यहु कार्य भया होगा। सो ससारी जीवनि कै वारवार अज्ञान असयम होका सेवन दीखै है। अर इनकै जन्मादि दु ख होता दीसै है। तातै इहा भ्रम भी नाही है। जैसैं जिसकौं जब खाय तब ही रोग उपजै तौ जानिए यहु इस रोग का कारण है। वहुरि जो औरनि ही कै भया होय तौ भी भ्रम होइ। सो तू ही विचारि मैं कैसे परिणमौं हौं कैसा फल पावैं हौं। तातैं जो तोकौं यहु फल बुरा लागैं है। जैसैं अज्ञानादि रूप परिणमै है तैसे परणमना छोरि। वहुरि अज्ञान असयम तैं उलटा सम्यग्ज्ञान चारित्र है। ताका सेवन कीए तिस जन्मादि फल तै उलटा अविनाशी सुख रूप मोक्ष फल पाइए है। सो इहा भी भ्रम नाही है। जातैं सम्यग्ज्ञान चारित्र के सेवनहारे थोरे हैं। अर उनकै तत्काल ही अज्ञान असयम जनित आकुलता मिटनै तैं किछू सुख हो है। वहुरि वहुत सेवनतैं वहुत सुख होता दीसै है। तातैं जैसैं कोई औषधि का सेवन कीए रोग

पटता भासै तो वहाँ जानिए इसके सेवन तैं सब रोग का भी नाश होगा। तैसैं इहां भी निश्चय करना। सम्यग्ज्ञान चारित्र कै सेवन तैं सर्व दुःख का नाश होगा। तातैं इनिका सेवन करना युक्त है।

आगे ऐसा स्थानकौं चाहता संता तू तिस मार्ग विर्षै गमन करहु ऐसा कहै हैं।

(वंशस्थ छंद)

दयादमत्यागसमाधिसन्ततेः—
पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं
विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥१०७॥

अर्थ—स्व पर जीव की करुणा सो दया, अर इन्द्रिय मनका वश करना सो दम अर पर वस्तुनि विर्षै राग छोडना सो त्याग, अर वीतराग दशारूप सुखी होना सो समाधि। इनिकी जो परिपाटी ताका मार्ग विर्षै तू यत्न सहित होता संता सूधा कपट रहित गमन करि। यहु मार्ग है सो तोकूं वचननैं अगोचर अर विकल्पनिर्तैं रहित ऐसो कोई परमपद है ताकौं अवश्य प्राप्त करै है।

भावार्थ—जैसैं कोई पुरुष नगर का सूधा मार्ग विर्षै सूधा चल्या जाय तौ वह तिस नगर कौं पहौंचे ही पहौंचे तैसे ते मोक्ष का सीधा मार्ग सम्यग्ज्ञान चारित्र विर्षै गर्भित दया दम आदि विशेष इनि विर्षै कपट रहित प्रवर्तै तौ मोक्ष कौं पावै ही पावै। मैं साधन करौं

अर सिद्धि न होइ, ऐसा भ्रमतैं शिथिल मति होहु । इस साधनतैं सिद्धि अवश्य हो है।

आगै विवेक पूर्वक परिग्रह का त्याग रूप मार्ग है सो जीवकौं मोक्षपद का प्राप्त करण हारा है ऐसैं दृढ करत सता सूत्र कहैं—

(आर्य छन्द)

विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव ।
त्यागः परिग्रहाणामवश्यमजरामरं कुरुते ।।१०८।।

अर्थ—जैसैं पवन साधन विषैं कुटी प्रवेश किया है सो निर्मल शरीरकौं करै, तैसैं भेद विज्ञान करि नष्ट किया है मोह जानैं ऐसे जीवकौं परिग्रहनि का त्याग है सो अवश्यमेव अजर अमर करै है।

भावार्थ—भेद विज्ञान करि मोह का नाश करना सो सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दर्शन है। बहुरि बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना सो सम्यक् चारित्र है। तहां सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दृष्टी जीव भया अर वह सम्यक् चारित्र अंगीकार करै तौ साक्षात् मोक्ष-मार्ग हुवा मोक्षको पावै, यामैं किछू संदेह नाहीं। जातैं सर्व कारण मिलें कार्य का होना दुर्निवार नांही है। तातैं रत्नत्रय विषैं कोई हीन होइ तो मोक्ष होने विषै सदेह होइ, सर्व तीनौं मोक्ष के कारण मिलै तब मोक्ष होय ही होय। ऐसा निश्चय करना।

आगै विवेक पूर्वक त्यागी पुरुषनि विषैं सर्वोत्तम त्याग कौं करता जो पुरुष ताकौं प्रशसता सन्ता सूत्र कहै हैं।

पटवा मासै तो वहां आनिए इसके सेवन तैं सर्व रोग का भी नाश होगा। तैसैं इहां भी निश्चय करना। सम्यग्ज्ञान चारित्र के सेवन तैं सर्व दुःख का नाश होगा। तातैं इनिका सेवन करना युक्त है।

आगैं ऐसा उपायकौं चाहता संता तू जिस मार्ग विषैं गमन करहु ऐसा कहै है।

(वंशस्थ छंद)

दयादमत्यागसमाधिसन्तते-
पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान् ।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं
विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥१०७॥

अर्थ—स्व पर जीव की करुणा सो दया, अर इन्द्रिय मनका वश करना सो दम अर पर वस्तुनि विषैं राग छोडना सो त्याग अर वीतराग धर्मध्यान शुक्ल होना सो समाधि। इनिकी जो परिपाटी ताका मार्ग विषैं तू यत्न सहित होता संता सूधा कपट रहित गमन करि। यहु मार्ग है सो तोकू वचननैं अगोचर अर विकल्प निर्तैं रहित ऐसो कोई परमपद है ताकौं अवश्य प्राप्त करै है।

भावार्थ—जैसैं कोई इष्ट नगर का सांचा मार्ग विषैं सूधा चाल्या जाय तौ वह तिस नगर कौं पहौंचै ही पहौंचि तैसे ही मोक्ष का सांचा मार्ग सम्यग्ज्ञान चारित्र विषैं गर्भित दया दम आदि विशेष इनि विषैं कपट रहित प्रवर्तैं तौ मोक्ष कौं पावै ही पावै। मैं साधन करौ

अर सिद्धि न होइ, ऐसा भ्रमतैं शिथिल मति होहु । इस साधनतैं सिद्धि अवश्य हो है ।

आगै विवेक पूर्वक परिग्रह का त्याग रूप मार्ग है सो जीवकौं मोक्षपद का प्राप्त करण द्वारा है ऐसैं दृढ करत सता सूत्र कहैं—

(आर्य छन्द)

विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव ।
त्यागः परिग्रहाणामवश्यमजरामरं कुरुते ।।१०८।।

अर्थ—जैसैं पवन साधन विषैं कुटी प्रवेश किया है सो निर्मल शरीरकौं करै, तैसैं भेद विज्ञान करि नष्ट किया है मोह जानैं ऐसे जीवकौं परिग्रहनि का त्याग है सो अवश्यमेव अजर अमर करै है ।

भावार्थ—भेद विज्ञान करि मोह का नाश करना सो सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दर्शन है । बहुरि बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना सो सम्यक् चारित्र है । तहां सम्यग्ज्ञान सहित सम्यग्दृष्टी जीव भया अर वह सम्यक् चारित्र अगीकार करै तौ साक्षात् मोक्ष-मार्ग हुवा मोक्षकौ पावै, यामैं किछू संदेह नाहीं । जातैं सर्व कारण मिलें कार्य का होना दुर्निवार नांही है । तातैं रत्नत्रय विषैं कोई हीन होइ तो मोक्ष होने विषै संदेह होइ, सर्व तीनौं मोक्ष के कारण मिलै तब मोक्ष होय ही होय । ऐसा निश्चय करना ।

आगै विवेक पूर्वक त्यागी पुरुषनि विषैं सर्वोत्तम त्याग कौं करता जो पुरुष ताकौं प्रशसता सन्ता सूत्र कहै हैं ।

(अनुष्टुप छन्द)

अभुक्त्वापि परित्यागात् स्वोच्छिष्टं विश्वमासितम् ।
येन चित्रं नमस्तस्मै कौमारब्रह्मचारिणे ॥ १०६ ॥

अर्थ—यहु आश्चर्यकारी कार्य है जिह जीव न भोगि करि ही विषयनिका त्याग तैं समस्त विषय अपनी झूठि समान किया तिस कुमार ब्रह्मचारी के अर्थि हमारा नमस्कार होहु ।

भावार्थ—पूर्वे तीन प्रकार त्यागी कहे हैं । तिन विषैं जाकै भोग सामग्री का निमित्त आनि बन्या है, अर विरागतातैं उनकौं बिना भोग किए ही छांडै हैं कुमार अवस्था विषैं ही दीक्षा धारै हैं ते सर्वोत्कृष्ट त्यागी हैं । जो भोगि करि छांडै तौ भी आश्चर्य नांही । इन नैं सामग्री मिलतैं भी बिना भोग किए त्याग किया सो इनका बड़ा आश्चर्य है । जैसें काहू के आगै भोजन धर्या अर वह बिना खाए वाकौं छांडै तौ वाका नाम झूठि है । तैसें इन ने सर्व विषय बिना भोग कीए छोड़े तातैं सब विषय इन मैं झूठि समान कीए, तिनकू हम नमस्कार करे हैं ।

आगै ऐसें त्याग करता जीव के परम उदासीनता है अतएव जाका ऐसा चारित्र का प्रतिपादन करता संता सूत्र कहे हैं ।

अकिंचनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः ।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥११०॥

अर्थ—मैं अकिंचन हौं किछू भी मेरा नाहीं ऐसे भावना करि तू

तिष्ठि। ऐसैं भावना कीएं शीघ्र ही तीन लोक का स्वामी हो है। यहु योगीश्वरनि कै गम्य ऐसा परमात्मा का रहस्य तोकौं कह्या है।

भावार्थ—अज्ञानता तैं पर विषैं ममत्व है, अर अपना होइ नाहीं याहीं तैं हीन दशा कौ प्राप्त होइ रह्या है। बहुरि जब यहु भावना होइ जो कोई पर द्रव्य मेरा नाहीं, तब यहु परम उदासीनता रूप चारित्र रूप होइ ताकै फलतैं तीन लोक जाकौं अपना स्वामी मानै ऐसा पदकौ पावै। यहु रहस्य योगीश्वर जानै हैं सौ हम तोकौं कह्या है। तू भी ऐसी ही भावना करि ऐसें हम शिक्षा दई है।

आगै अब तप आराधना का स्वरूप का अनुक्रम कै अर्थि दुर्लभ इत्यादि सूत्र कहै हैं।

(आर्याछन्द)

दुर्लभमशुद्धमपसुखमविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम् ॥१११॥

अर्थ—मनुष्य पर्याय है सो दुर्लभ है, अपवित्र है, सुख रहित है, मरण समय जाका न जानिये ऐसा है, उत्कृष्ट आयु भी जाका अल्प है, ऐसा है। बहुरि तप है सो इस मनुष्य पर्याय विषैं ही हो है। बहुरि मुक्ति है सो तप ही करि हो है। तातैं मनुष्यपणौं पाइ तोकौं तप करना योग्य है।

भावार्थ—आत्मा का हित मोक्ष है। ताकी प्राप्ति तप विना नाहीं। जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र पूर्वक तप आराधना कौं आराधै तो साक्षात् मोक्षमार्गी होइ। बहुरि तप है सो मनुष्य पर्याय विषैं ही हो है सो अन्यत्र भी कह्या है। उक्तम् च—

देवविसमयसत्ता णेरइया विवीह दुह संयुत्ता ।
तिरिया विवेकविकला मणुआण धम्म सामग्री ॥

अर्थ—देव तो विषयासक्त अर नारकी तीव्र दुःख करि तप्तायमान अर तिर्यंच विवेक रहित, तातैं मनुष्यनि ही कै धर्म की प्राप्ति है। बहुरि मनुष्य पर्याय बारम्बार होइ तौ पाया पर्यायविषैं तप न कीया तो आगैं करै, सो अनन्तानन्त काल भए भी मनुष्य पर्याय पावना दुर्लभ है। बहुरि देववत् इहां सुख होइ तौ सुखकौं छोडि तप करना कठिन होइ, सो इहां शारीरक मानसिक दुःख ही की मुख्यता है। दुःख कौं छोडि तप करने विषैं खेद कहा ? बहुरि जो मनुष्य का सुन्दर शरीर होइ तौ तीका बिगारने का भय होय, सो धातु उपधातुमि करि निपज्या महा अपवित्र याकौं तप विषैं लगावने का भय कहा ? बहुरि देववत् मरण का निश्चय होइ, तौ कितनेक काल तौं निश्चिन्त रहिए पीछैं तप करिए, सो मनुष्य का मरने का निश्चय नाहीं कब मरै । बहुरि जे उत्कृष्ट भी आयु बहुत होइ तौ मेरा उत्कृष्ट ही आयु होगा, ऐसा भ्रम करि ढील करिए सो उत्कृष्ट आयु भी थोरा। तातैं तुमको प्रमादी न होना सावधान होइ तप ही करना योग्य है।

आगै तहां बारह प्रकार तप विषैं मुक्ति का निकट साधन ध्यानरूप तप है, ताका ध्येय पक्ष आदि दिखावता संता सूत्र कहै हैं-

(शार्दूल छन्द)

आराध्यो भगवान् जगत्त्रयगुरुर्वृत्तिः सतां संमता
क्लेशस्तच्चरणस्मृतिः क्षतिरपि प्रप्रक्षयः कर्मणाम् ।
साध्यं सिद्धिसुखं कियान् परिमितः कालो मनः साधनं
सम्यक् चेतसि चिन्तयन्तु विधुरं किं वा समाधौ बुधाः।११२

अर्थ—समधि विषैं तीन जगत का गुरु भगवान सो तौ आराधना । अर सतनि करि सदा ही ऐसी प्रवृत्ति करनी । अर तिस भगवान का चरण का स्मरण करना, इतना क्लेश, बहुरि कर्मनिका प्रकर्षपने नाश होना यहु खरच, अर मोक्ष सुख साधने का फल, अर काल कितनाइक परिमाण लीए थोरा, अर मनका ाधन करना । हे ज्ञानी हौ । तुम नीकै मन विषैं विचार करौ ।माधि विषैं कहा कष्ट है ?

भावार्थ—कोऊ जानैगा तप विषैं कष्ट है, कष्ट सह्या जाता ाहीं । ताकौ कहिए है—सबे तपनि विषैं उत्कृष्ट तप ध्यान है, तेस ही विषैं कहा कष्ट है सो तू कहि । प्रथम तौ नीचे का सेवन करतैं लज्जादिक का खेद हो है । सो तौ ध्यान विषैं तीन लोक का नाथ अरिहन्तादिक वा तीन लोक का ज्ञायक आत्मा ताका आराधन करना । बहुरि जो आपकौं नीच कार्य करना परै तो खेद होइ । जिस वृत्ति कौं महन्त पुरुष भी प्रशसै ऐसी वृत्ति अगीकार करनी । बहुरि आराधने विषैं किछू क्लेश होइ तो खेद उपजै, सो सेवन इतना ही—भगवान आत्मा का चरण वा आचरण ताका स्मरण

करना। बहुरि साधन करतैं किछू अपना जाता होइ तौ भी दुःख होइ। सो ताका नाश किया चाहिए ऐसा कर्म ताही का नाश हो है, अपनां किछू करच होता नाहीं। बहुरि जो साधन का तुच्छ फल होइ तौ किछू कार्यकारी नांहीं, सो ध्यान का फल सर्वोत्कृष्ट मोक्ष है। बहुरि बहुत काल पर्यन्त साधन करना होइ तहां भी खेद उपजै सो थोरे ही काल ध्यान कीए फल पाइए है। बहुरि जो साधन पराधीन होइ तौ भी खेद होइ सो अपने मन ही का साधन करनां, अन्य विचार तैं छुडाय भगवन्त विषैं लगावनां। सो ऐसा ध्यान रूप तप तिस विषैं खेद कहा ? सो तू ही विचारि। तप करने विषैं अनादर मति करै। कोऊ कहैगा ध्यान विषैं तौ कष्ट नांही परन्तु अनशनादि तप विषैं कष्ट है। ताका उत्तर-अनशनादि तप विषैं कष्ट तब होइ जब आप न किया चाहै। सो इहां तौ जैसे अपना परिणाम प्रमादी न होइ अर क्लेश रूप भी न होइ तैसैं ध्यान की सिद्धि के अर्थि चाहि करि अनशनादि करिये है। तातैं तहां भी कष्ट न हो है।

आगे आरम्भ-कल्यायारूप जो मोक्ष ताके वांछक जे पुरुष तिनके तप बिना और कोई सामग्री वांछित फल की दाता नाहीं ऐसैं कहै हैं।

(हरिणी छन्द)

प्रणियपपनप्राप्याशानां मुखं किमिहेष्यते

किमपि किमयं कामम्यापः खलीकुरुते खल: ।

चरणमपि किं स्प्रष्टुं शक्ताः पराभवपांशवो
वदत तपसोप्यन्यन्मान्यं समीहितसाधनम् ॥११३॥

अर्थ—धन सम्बन्धी विचार सो ही भया पवन, ताकरि धमाए हुए तप्तायमान भए जे जीव, तिनकौं इहां कहां सुख अवलोकिए है। यह दुष्ट काम रूप अहेडी किछूक अदुष्ट आत्मा कौ दुष्ट करै है। बहुरि कष्ट रूपी धूलि है ते कहा चारित्र का स्पर्शनें को समर्थ है, अपि तु नाही है। तुम कहौ तपतैं और कोई माननें योग्य मन वाछित अर्थ का साधन कौन है।

भावार्थ—जगत विषैं यह जीव जितने कार्य करै है सो मानादिक के अर्थि करै है। अपनां प्राणहू देकरि बडा हुवा चाहै। बहुरि मानादिक कै निमित्त धनादिक सामग्री मिलावने की आर्त्तिरूप वाछा करै, ता करि सदा दुखी ही रहै है। बहुरि देखो तप का माहात्म्य जो विना चाहे ही बडापना वा ऋद्धयादिक हो है तातैं तपतै और कोऊ उत्कृष्ट नाही हैं।

आगैं जो या प्रकार तप विषैं प्रवर्त्तता जीव है सो कहा कार्य करै है, ऐसैं दिखावता सूत्र कहै हैं।

(पृथ्वीछन्द)

इहैव सहजान् रिपून् विजयते प्रकोपादिकान्
गुणाः परिणमन्ति यानसुभिरप्ययं वाञ्छति।
पुरश्च पुरुपार्थसिद्धिरचिरात्स्वयं यायिनी
नरो न रमते कथं तपसि तापसंहारिणि ॥११४॥

अर्थ—तपकौं होत संतैं यहां ही तत्काल जे अनादितैं आत्मा की साथि लगे ऐसे क्रोधादिक वैरी तिनिकौं जीतिए है। जिनकौं यहु आत्मा अपना भाव वेय करि भी चाहै, ऐसे गुण परिणमैं हैं प्रगटै है। बहुरि आगामी काल विर्षं शीघ्र ही पुरुषार्थ जो मोक्ष ताको सिद्धि स्वयमेव प्राप्त हो है तातैं ऐसा आताप का संहार करन हारा जो तप ता विर्षं कौन विवेकी मनुष्य नाहीं रमै, अपि तु रमै ही रमै।

भावार्थ—ए जीव तौ जिस कार्य तैं आगामी अवगुण होइ तत्काल गुण होइ अथवा तत्काल अवगुण होइ आगामी गुण होय तिस कार्य विर्षं भी अनुरागी होय लागते देखिये हैं। बहुरि यहु तप है सो तत्काल भी गुण करै अर आगामी भी गुण करै तो ऐसे तप विर्षं कौन विवेकी आदर न करै? अपि तु करै ही करै। तहां इस तपका तत्काल गुण तौ इतना है—जो प्रत्यक्ष दुःखदायक अनादितैं लागे क्रोधादिक तिनका तौ अभाव हो है, अर अपना प्राय लोभ भी प्राप्ति होइ तौ भी जिनकौं चाहै ऐसे प्रत्यक्ष माना त्रिक गुण वा ऋद्धि सम्मानादिक अतिशय ते स्वयमेव प्रगट हो हैं। बहुरि आगामी गुण ऐसा है जो तपके फलतैं शीघ्र ही पुरुष आत्मा ताका अर्थ जो प्रयोजन मोक्ष रूप ताकी शीघ्र ही सिद्धि हो है। जैसे इस लोक परलोक विर्षं गुणकर्ता तपकौं जानि या विर्षं रति करनी योग्य है।

आगैं तप विर्षं रति कर्ता जो जीव आयु अर शरीर को जैसें सफलता करै हैं, ताकौ सराहना संता सूत्र कहै हैं।

(शिखरणी छंद)

तपोवल्ल्यां देहः समुपचितपुण्यार्जितफलः
शलाट्वग्रे यस्य प्रसव इव कालेन गलितः ।
व्यशुष्यच्चायुष्यं सलिलमिव संरक्षितपयः
स धन्यः सन्यासाहुतभुजि समाधानचरमम् ॥११५॥

अर्थ—जाका शरीर है सो तप रूपी वेलि विषैं निपजाया है पुण्यरूपी उत्कृष्ट फल जानैं, ऐसा होत सता जैसे काचा फलका अग्रभाग विषैं फूल झरि परै तैसैं काल पाइ करि गल्या है, विनष्ट भया है। बहुरि जाका आयु है सो समाधि रूप भया है अंत अवस्था जाकी ऐसा होत सता सन्यास रूपी अग्नि विषैं राखि लिया है दूध जानैं, ऐसा जलकीसी नाई सुसता भया सो जीव धन्य है।

भावार्थ—जैसैं वेलि विषैं फूल लागैं सो काचाफल निपजाय आप झरि परै। तैसैं तिनका तप विषैं शरीर प्रवर्त्या होइ सो पुण्य कौं निपजाय कालपाइ आप नष्ट हो है। बहुरि जैसैं अग्नि सयोग होतै जल है सो दूध कौं राखि आप सुसै, तैसैं सन्यास होतैं जिनका आयु है सो धर्म कौं राखि आप शोषित हो है। ऐसैं शरीर अर आयु जिनका सफल हो है ते पुरुष धन्य हैं।

आगैं परम वैराग्य करि संयुक्त जीव अपवित्र अर दुःख दायक जो शरीर तिस विषैं वाँका पालना वाँकै संगि रहना ऐसैं करि तप करैं हैं, तिनके जो कारण हैं ताकौं दोय श्लोक करि कहै हैं।

अमी प्ररूढवैराग्यास्तनुमप्यनुपाल्य यत् ।
तपस्यन्ति चिरं तद्धि ज्ञातं ज्ञानस्य वैभवम् ॥११६॥

अर्थ—ए उत्कृष्ट वैराग्य जिनकैं पाइए ऐसे जीव जो शरीर कौं भी पालि चिरकाल पर्यंत तप करै हैं, सो हम यहु ज्ञानकौं प्रभुत्व जान्यो।

भावार्थ—जिसवैं ध्यास तुम्हें ताका पालना विरुद्ध है। परन्तु स्वामी होइ सो चाकि पासैं ही अपना प्रयोजन जैसैं सधै ताकौं तैसैं पालै अनुराग करि ताकौं अधिक पोषै नाहीं। सो महामुनि शरीर तैं उदास भए हैं। परन्तु इनिकै ऐसा ज्ञान है जो मनुष्य शरीर रहै तप हो है। तातैं आहारादिक देइ याकौं अपना प्रयोजन कै अर्थि राखै है। अनुराग करि याकौं बहुत नाहीं पोषै है। ऐसैं शरीर कौं राखि बहुत काल पर्यंत तप करना सो यहु ज्ञान ही का माहात्म्य है। ज्ञान न होइ तौ अति उत्साहकरि शरीर का नाश करै पीछे देवादिक पर्याय पावै तहां संयम का अभाव होइ। सो ज्ञानी ऐसैं नाहीं करै है।

क्षणार्धमपि देहेन साहचर्यं सहेत कः ।
यदि प्रकोष्ठमादाय न स्याद्बोधो निरोधकः ॥११७॥

अर्थ—जो ज्ञान हाथ का पौंचा पकडि रोकनहारा न होइ तौ कौन मुनि आधक्षण मात्र भी शरीर सहित साथि रहना कौं सहै ? कोन सहै।

भावार्थ—जैसैं काहु कै काहु सौं मित्रता थी, पीछे वाको दुष्ट-पनौं जान्यौ, तब वातैं लड़ि कार वांका साथकौं तत्काल छोडना चाहै। तहा कोई स्याना पुरुष वांका हाथका पौंचा पकड़ि समझावै ऐसैं तो लडैं यहु आगामी दु खदायक होगा। तातैं कोई दिन याकौं साथि राखि निबल करि याका जैसे सत्यानाश होइ तैसै कार्य करना योग्य है। तैसैं आत्मा के शरीर सौं अनुराग था, जब याकौं दुःख का कारण जान्या तब याकौं उग्र आचरन तै नाश कीया चाहै। तहां जिनवानी जनित ज्ञानतैं यहु विचार आया, ऐसैं कीएं तौ बहुरि देवादि पर्याय पावना होगा, तहा दुःख उपजैगा। तातैं कितनेंक काल याकौं साथि राखि निर्बल करि जैसैं बहुरि शरीर धरना न होई तैसैं कार्य करना योग्य है। ऐसैं ज्ञान रोकनहारा न होय तौ कौन मुनि शरीर का साथि राखै ? जो बुरा जानिकरि भी प्रयोजन कै अर्थि शरीर का साथि राखिये है सो यहु ज्ञान ही का महिमा है।

आगैं इसही अर्थ कू दृष्टात द्वार करि दृढ करत संता समस्त इत्यादि दोय श्लोक करि कहै।

(शिखरणी छन्द)

समस्तं साम्राज्यं तृणमिव परित्यज्य भगवान्
तपस्यन्निर्माणः क्षुधित इव दीनः परगृहान्।
किलाटद्भिक्षार्थी स्वयमलभमानोपि सुचिरं
न सोढव्यं किं वा परमिह परैः कार्यवशतः ॥११८॥

अर्थ—भगवान भी आदिनाथ सो समस्त बड राज्य कों तिणा कीसी नाईं छोरि तप करता मान रहित मुख्या हीनवत् भोजन का अर्थी हुवा बहुत काल ताईं भोजन कौं न पावता संता भी पर भरनि प्रति भ्रमत भए। तौ इहां कशल अपन कार्य के अर्थ औरनि करि बहा परीषह न सहना! अपि तु कार्य के अर्थि सहना ही योग्य है।

भावार्थ—जो कार्य का अर्थी होइ सो थोरा बहुत कष्ट सहना होइ तौ कष्ट भी सहैं परन्तु अपना कार्य की सिद्धि करैं। ताका उदाहरण देखो। वृषभनाथ सब राज्यकौं छोरि भोजन का अन्तराय हुवा कीया तौ भी भोजन के अर्थि जैसें मुखा हीन पर घरि जाय, तैसें पर घरि फिरता हुवा। जा ऐसे महान पुरुषों ने भी ऐसें कीया तौ औरनि की कहा कथा है? अर औरनिकौं कैसें सुगम सिद्धि होसी? तातैं कर्म का अर्थि हुवा थोरा बहुत कष्ट सहि करि मोक्ष का साधन करना योग्य है।

(शिखरिणी छन्द)

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकरः किङ्कर इव
स्वयं स्रष्टा सृष्टेः पतिरथ निधीनां निजसुतः।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याट जगती
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलंघ्यं हतविधेः ।११६।

अर्थ—गर्भ तैं पहलैं ही इन्द्र है सो किंकरवत् जोरे हैं हाथ जामैं ऐसा होता भया। अर आप सृष्टि जो कर्मभूमि ताका करन

द्वारा भया, अर अपना पुत्र है सो निधिनि का स्वामी चक्रवर्त्ति भया। ऐसा पुरुष जो श्री आदिनाथ स्वामी सो भी छह मास पर्यन्त क्षुधावान होइ पृथिवी प्रति भ्रमत भया, सो बडा आश्चर्य है। इस ससार विषैं निकृष्ट जो विधाता कर्म ताका विलास चरित्र है, सो अतिशय करि अलघ्य है। कोई याके मेटनें कौं समर्थ नाही।

भावार्थ—कोई जानैगा कि मैं सुख सामग्री मिलाय दु:ख का कारण दूरि करि सुखी होंगा, सो ससार विषैं ऐसा काहू का पुरुषार्थ नाही जो कर्म का उदय आवै अर ताकौं दूरि करै। श्री वृषभनाथ देव कैं इन्द्र समान तौ किंकर अर आप सर्व रचना का कर्त्ता ऐसा पुरुषार्थ करि संयुक्त, अर पुत्र चक्रवर्त्ति, ऐसी सामग्री होतैं भी अन्तराय के उदयतें छह मास पर्यन्त भोजन कै अर्थि भ्रमण कीया। तातैं औरनि की कहा वार्त्ता? जातै जो कर्मका उदयतैं थोरा बहुत कष्ट उपजै ताकौं भी सहकरि, ऐसा ही चिन्तवन करना जो ससार विषैं तौ कर्म ही बलवान है। तातैं संसार अवस्था का अभाव सो ही आपना हित कार्य है। ऐसैं निश्चय करि ताका साधन करना।

आगैं इस प्रकार सम्यग्दर्शनादिक तीन आराधना है, सो शास्त्र ज्ञानादिक की प्रधानता करि प्रवृत्या हुआ भला प्रयोजन का साधक हो है, अन्यथा नाही। यातैं ताकै अनन्तरि ज्ञान आराधना दिखावनें का अनुक्रम करता सन्ता प्राक् इत्यादि सूत्र कहै हैं।

प्राक् प्रकाशप्रधानः स्यात् प्रदीप इव संयमी ।
पश्चात्तापप्रकाशाभ्यां भास्वानिव हि भासताम् ॥१२०॥

अर्थ—संयमी है सो पहले तौ दीपकवत् प्रकाश है प्रधान जाके ऐसा होय पीछे ताप अर प्रकाश इनि करि सूर्यवत् दैदीप्यमान होहु ।

भावार्थ—मोक्ष का साधक है सो प्रथम अवस्था विषें तौ दीपक समान हो है । जैसें दीपक तैलादि सामग्री के वशतें घटपटादिक का प्रकाशन हारा है—तैसें शास्त्रादिक के वशतें जीवादि पदार्थनिकौ जानन हारा हो है । बहुरि पीछे ताको सूर्य समान होना योग्य है । जैसें सूर्य स्वभाव ही तैं घने पदार्थनिका प्रकाशनि हारा है, अर प्रताप का धरनहारा है । तैसें स्वभावहीतैं पदार्थनि का विशेष जानन हारा होइ, अर तपश्चरणादिक का धारनहारा होइ, ऐसा अनुक्रम जानना ।

आगे ज्ञान आराधना का धारक जीव है सो ऐसा होय सन्ता इस कार्यकौं करै है ऐसैं कहै हैं ।

(श्लोक)

भूत्वा दीपोपमो धीमान् ज्ञानचारित्रभास्वर' ।
स्वमन्यं भासयत्येष प्रोद्वमन् कर्मकज्जलम् ॥१२१॥

अर्थ—यहु ज्ञानवान जीव है सो दीपक समान होइ करि ज्ञान चारित्रतैं देदीप्यमान होत सन्ता कर्मरूपी काजलकौं वमता सन्ता आपा परहू प्रकाशै है ।

भावार्थ—ज्ञान आराधना का आराधक है सो दीपक समान है। जैसैं दीपक दीप्ति सहित भास्वर हो है, वहुरि काजलकौ वमैं है। ऐसा होता आपकौं अर पर घट पटादिक कौं प्रकाशै है। तैसैं ज्ञानी ज्ञान चारित्र सहित देदीप्यमान हो है। वहुरि कर्म की निर्जरा करै है। ऐसा होता आप आत्माकौं अर पर शरीरादिक कौं यथावत् जानैं है।

आगै तिस पूर्वोक्त प्रकार ज्ञान आराधना का आराधक जीव है सो शास्त्रज्ञान तै भया जो विवेक तिस पूर्वक क्रमतैं अशुभ परिणाम छोरि शुद्ध परिणामकौं आश्रय करि मुक्ति हो है। ऐसा दिखावता सूत्र कहै हैं।

(श्लोक)

अशुभाच्छुभमायातः शुद्धः स्यादयमागमात् ।
रवेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः ॥१२२॥

अर्थ—यहु जीव आगम ज्ञान तैं अशुभ तै छूटे शुभकौ प्राप्त होता शुद्ध होइ। इहा दृष्टान्त जो नाहीं प्राप्त है सन्ध्या अवस्था जाकै ऐसा जो सूर्य ताकै अन्धकार का प्रगटपना न हो है।

भावार्थ—जैसे सन्ध्या सम्बन्धी लाली कौं न प्राप्त होता सूर्य ताकै अन्धकार का प्रगटपना न हो है, तैसैं अशुभ राग रहित आत्मा है सो क्रमतैं शुभ राग रूप होइ शुद्ध केवल दशाकौं प्राप्त हो है, ताकै अज्ञानादिक का उपजना न हो है।

आगै इहा प्रश्न—जो ज्ञान आराधना रूप परणम्या जीवकैं

तप शास्त्रादि विषैं शुभ रूप अनुरागतैं सरागीपना हो है तातैं मुक्तपनौं कैसे होइ। ऐसी आशंका करि उत्तर कहै हैं।

(श्लोक)

विधूततमसो रागस्तप श्रुतनिबन्धनः।
सन्ध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः ॥१२३॥

अर्थ—दूरि किया है अज्ञान अंधकार जानैं ऐसा जीव ताकै तप शास्त्रादिक संबंधी राग भाव है सो कल्याण का उदय ही के अर्थि है। जैसैं सूर्य के प्रभात संध्या सम्बन्धी रक्तता है सो उदय के अर्थि है तैसैं जानना।

भावार्थ—जैसे सूर्य के जैसी अस्त समय संध्या विषैं लाली हो है तैसी ही प्रभात समय संध्या विषैं लाली हो है। परन्तु प्रभात की लाली में अर संध्या की लाली में एता भेद है जो प्रभात समय विषै रात्रि संबंधी अंधकार का नाशकरि संधि विषैं जो लाली भई सो आगामी सूर्य का शुद्ध उदय कों कारण है। तैसैं जीव के जैसा विषयादिक विषैं राग हो है तैसा ही तप शास्त्रादि विषैं राग हो है। परन्तु तप शास्त्रादि विषैं मिथ्यात्व संबंधी अज्ञान का नाश करि संधि विषैं जो राग भया है, सो आगामी जीवका शुद्ध केवल दशा रूप उदयकौ कारण है।

आगे इसतैं विपरीत जो राग तिस विषैं दोष कौं दिखावता सूत्र कहै हैं।

॥ श्लोक ॥

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।
रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति ॥१२४॥

अर्थ—जीव है सो सूर्यवत् व्याप्त भया प्रकाशकों छोरि वहुरि अधकार कौ अग्रगामी करि राग भाव कौं प्राप्त होत सता पाताल तल कौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—जैसै अस्त होता सूर्य है सो अपनां फैलि रह्या प्रकाश कौं तौ छांडै है, अर अन्धकार आगामी होनहार भया है तिसो सध्या समय विषैं जो रक्त रग हो है ताकौं प्राप्त भया सूर्य है स ज्योतिष्क मत की अपेक्षा वा दृष्टि आवनें की अपेक्षा पाताल कौं प्राप्त हो है। तैसै भ्रष्ट अवस्था कौ प्राप्त होता आत्मा है सो अपना फैलि रह्या ज्ञान भाव कौ तौ छाडै है, अर अज्ञान आगामी होनहार भया है तिस समय विषै जो हिंसादिक पाप रूप राग भाव हो है, ताकौं प्राप्त भया आत्मा है सो पाताल पाइए है। नरकादिक वा नीच दशा रूप निगोदादि पर्याय ताकौं प्राप्त हो है। ऐसैं यद्यपि अशुभ शुभ दोऊ राग भाव होय हैं, परन्तु नीचै की दशा विषैं शुभ राग तौ कथचित आगामी शुद्धता कौ कारण भी है तातै थोरा हेय है। वहुरि अशुभ राग है सो तौ आगामी कुगति का कारण है। तातैं सर्वथा अत्यन्त हेय है। तातैं याका तौ अवश्य त्याग करना।

आगैं ऐसैं च्यार प्रकार आराधना विषै नष्कपट मनकरि

तप शास्त्रादि विषैं शुभ रूप अनुरागतैं सरागीपना हो है तातैं मुक्तपना कैसें होइ। ऐसी आशंका करि उत्तर कहै हैं।

(श्लोक)

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः ।
सन्ध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः ॥१२३॥

अर्थ—दूरि किया है अज्ञान अंधकार जानैं ऐसा जीव ताकै तप शास्त्रादिक संबधी राग भाव है सो कल्याण का उदय होने के अर्थि है। जैसें सूर्य के प्रभात संध्या सम्बन्धी रक्तता है सो उदय के अर्थि है तैसें जानना।

भावार्थ—जैसे सूर्य के जैसी अस्त समय संध्या विषै लाली हो है तैसी ही प्रभात समय संध्या विषैं लाली हो है। परन्तु प्रभात की लाली मैं अर संध्या की लाली मैं एता भेद है जो प्रभात समय विषै रात्रि सबंधी अंधकार का नाशकरि संधि विषैं जो लाली भई सो आगामी सूर्य का शुभ उदय कौं कारण है। तैसें जीव के जैसा विषयादिक विषैं राग हो है तैसा ही तप शास्त्रादि विषै राग हो है। परन्तु तप शास्त्रादि विषैं मिथ्यात्व संबधी अज्ञान का नाश करि संधि विषैं जो राग भया है सो आगामी जीवका शुभ केवल दशा रूप उदयको कारण है।

आगे इसतैं विपरीत जो राग तिस विषै दोष कौं दिखावता सूत्र कहै हैं।

॥ श्लोक ॥

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः ।
रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति ॥१२४॥

अर्थ—जीव है सो सूर्यवत् व्याप्त भया प्रकाशकों छोरि वहुरि अधकार कौं अग्रगामी करि राग भाव कौं प्राप्त होत सता पाताल तल कौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—जैसै अस्त होता सूर्य है सो अपना फैलि रह्या प्रकाश कौं तौ छांडै है, अर अन्धकार आगामी होनहार भया है तिसो सध्या समय विर्षे जो रक्त रग हो है ताकौं प्राप्त भया सूर्य है स ज्योतिष्क मत की अपेक्षा वा दृष्टि आवनें की अपेक्षा पाताल कौं प्राप्त हो है। तैसैं भ्रष्ट अवस्था कौ प्राप्त होता आत्मा है सो अपना फैलि रह्या ज्ञान भाव कौ तौ छांडै है, अर अज्ञान आगामी होनहार भया है तिस समय विषै जो हिंसादिक पाप रूप राग भाव हो है, ताकौ प्राप्त भया आत्मा है सो पाताल पाइए है। नरकादिक वा नीच दशा रूप निगोदादि पर्याय ताकौं प्राप्त हो है। ऐसैं यद्यपि अशुभ शुभ दोऊ राग भाव होय हैं, परन्तु नीचै की दशा विर्षे शुभ राग तौ कथचित आगामी शुद्धता कौ कारण भी है तातै थोरा हेय है। वहुरि अशुभ राग है सो तौ आगामी कुगति का कारण है। तातैं सर्वथा अत्यन्त हेय है। तातैं याका तौ अवश्य त्याग करना।

आगैं ऐसैं च्यार प्रकार आराधना विषै नष्कपट मनकरि

प्रवर्ते है जो मोक्षाभिलाषी जीव, ताके मोक्ष की प्राप्ति निर्विघ्न हो है। ऐसे दिखावता सूत्र कहै हैं।

(शार्दूलछन्द)

ज्ञानं यत्र पुरः सरं सहचरी लज्जा तपः संबलं,
चारित्रं शिबिका निवेशनभुवः स्वर्गो गुणा रक्षका।
पन्थाश्च प्रगुणं शमाम्बुबहुलश्छाया दया भावना
यानं तं मुनिमापयेदभिमतं स्थानं विना विप्लवैः ॥१२५॥

अर्थ—ज्ञान तौ आगेसरी अर लज्जा साथि चालनहारी अर तप मग्सारी अर चारित्र पालकी अर बीच में रहने के स्थान स्वर्ग, अर गुण रक्षवाले अर मुखा का विषैं उपशम जल बहुत पाइए ऐसा मार्ग अर दया रूप छाया, अर भावना रूपी गमन, ऐसा जहाँ समाज तिस मुनि कौं उपद्रव बिना अभीष्ट स्थानक कौं प्राप्त करै है।

भावार्थ—कोई पुरुष काहू नगर कौं चालै तहाँ आगू आदि सामग्री मिलै तौ निरुपद्रव नगरकौं पहौंचै। तहाँ कोई भव्य मोक्षकौं चाहै तहाँ ज्ञानादिक सामग्री मिलै तौ निरुपद्रव मोक्षकौं प्राप्त होइ। तहाँ जैसैं आगू मार्ग बतावै तैसैं ज्ञानतौ मोक्षमार्ग विषैं हेयोपादेय तत्त्वनिका निश्चय करावै है। बहुरि जैसैं साथि स्त्री होइ तौ मार्ग विषैं सुखसौं गमन करै, तैसैं साथि धर्म सम्बन्धी लज्जा ताकरि मोक्षमार्ग विषैं सुख सौं प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसैं खरची बट सारी पासि होय तौ शिथिलता न होय तैसैं तपका साधन करि

शिथलता न हो है। वहुरि जैसैं चढने कौं पालिकी होइ तौ चलतै खेद न होइ, तैसैं निष्कषाय रूप चारित्र भाव करि मोक्ष मार्ग विषैं प्रवर्त्तता खेद न हो है। वहुरि जैसैं मार्ग विषैं वसने के स्थान चोखे होइ तौ तहा विश्राम होइ, तैसैं मोक्ष मार्ग विषैं वसने का स्थान स्वर्ग है, तहा विश्राम होय है। वहुरि जैसैं रखवाले साथि होये तो कोई न लूटै, तैसैं क्षमादिक गुण रखवाले हैं तातैं क्रोधादिक नाही लूटै हैं। वहुरि जैसैं मार्ग सूधा होइ तौ सुखसौं गमन होइ। तैसै मोक्ष मार्ग सरल कपट रहित है, तातैं सुखसौं तहाँ प्रवृत्ति हो है। वहुरि मार्ग विषैं जल घना होइ तौ तृषा का दुख न होइ, तैसैं मोक्ष मार्ग विषैं उपशम भाव है ताकरि तृष्णा का दुख न हो है। वहुरि जैसे मार्ग विषै छाया होइ तौ आताप न होइ, तैसैं मोक्ष मार्ग विषैं स्व दया परदया है तातैं संताप न हो है। वहुरि जैसैं गमन करै तौ नगर कौं पहोंचै, तैसैं इहां शुद्ध भावना भावै है ता करि मोक्ष कौ पावै है। ऐसैं सामग्री मिलैं जैसैं पथिक अभीष्ट नगर कौ पहोचै तैसैं मोक्षमार्गी अभीष्ट मोक्ष पद कौ पावै है।

आगैं तिस चलने विषैं उपद्रव कौन है, ऐसी आशका करि तिन उपद्रवनि कौं पच श्लोकनि करि कहै हैं।

(शार्दूल छंद)

मिथ्यादृष्टिविषान् वदन्ति फणिनो तदा सुस्फुटं
यासामर्धविलोकनैरपि जगद्दन्दह्यते सर्वतः।
तास्त्वय्येव विलोमवर्तिनि भृशं भ्राम्यन्ति वद्धक्रुधः
स्त्रीरूपेण विषं हि केवलमतस्तद् गोचरं मास्म गाः॥१२६॥

अर्थ—सर्पनिकौं जो दृष्टि-विष आदि के बतावै हैं सो तो झूठ है। हम इनि स्त्रीनि विर्षे सो दृष्टि विषपनौं प्रकट देख्यो है। कैसी है स्त्री जिनका कटाक्ष रूप भाया अवलोकनि करि भी लोक सर्वांगपने दाह रूप हो है। बहुरि तिनिका त्यागतैं प्रतिकूली भया जो तू सो तुम विर्षे क्रोधवन्त हुई ते स्त्री ताकौं भ्रष्ट करने के अर्थि अतिशय करि भ्रमै है। सो स्त्रीरूप करि केवल यहु विष है। यातैं तू तिनकै गोचर मति प्राप्त होहु।

भावार्थ—लोक विर्षे कोई सर्प ऐसे सुनिए हैं जिनकौं देखें ही विष चढ़ै, सो यहु तौ असत्कार करिकै झू ठ बताया। बहुरि स्त्रीनिकै कटाक्ष करि तत्काल विष समान आतापकारी काम विकार होइ, तातैं स्त्रीनिकै दृष्टि-विषपनौं कह्यौ। बहुरि इहां मुनिकौं यहु सीख दई जो और तौ सब ही स्त्रीनि के किंकर हैं, अर तू तिनका त्यागी भया है। सो तेरैं भ्रष्ट करने कौं ते स्त्री कारण होइ रही है, सो तू उनका विषय गोचर मति होहु। मोक्ष मार्ग विर्षे स्त्रीनि के वशीभूत होनां सोई बड़ा उपद्रव है।

(शार्दूलविक्रीडित)

क्रुद्धा' प्राणहरा भवन्ति भुजगा दंष्ट्रै व केवलं क्वचित्
तेषामौषधयश्च सन्ति बहवः सद्यो विषव्युच्छिदः।
हन्युः स्त्रीभुजगाः पुरेह च मुहुः क्रुद्धा' प्रसन्नास्तथा—
योगीन्द्रानपि ताभिरौषधविषा दृष्टाश्च दृष्ट्वापि च॥१२७॥

अर्थ—सर्प हैं तौ क्रोधवन्त भए कोई काल विषै डसि करि प्राणनि के हरनहारे हो हैं। बहुरि तत्काल विषकौं दूरि करै तिनके औषधी पाइए है। बहुरि ए स्त्री रूपी सर्प हैं ते धवन्त भए भी अर प्रसन्न भए भी परलोक विषै अर इस लोक षै वारम्बार तिनि योगीश्वरनि कौ भी देखै हुए भी वा देखिकरि भी हनै हैं घातै हैं। कैसे हैं स्त्री रूप सर्प औषधि रहित है प जिनिका ऐसे हैं।

भावार्थ—लोक विषैं सर्पकौं अति अनिष्ट जानि तिसतैं डरिए । अर स्त्रीनिको अति इष्ट जानि इनिका विश्वास करिए हैं। सो हां स्त्रीनि तैं राग छुडावनैं कैं आर्थि सर्पतैं भी स्त्रीनिकै अधिकता देखाई है। सर्प तो क्रोधवन्त हुवा ही मारै। स्त्री क्रोधवन्त हुई तौ कोई उपाय करि अर प्रसन्न हुई आकुलता वधाई करि जीवकौं हनैं है। बहुरि सर्प तो कोई एक काल विषैं मारै, स्त्री इसलोक परलोक विषैं वारम्वार मरण करावै। बहुरि सर्प तो डस करि ही प्राणनिकौं हरै है, स्त्री देखी हुई ही वा आप देखि करि भी जीव का घात करै। बहुरि सर्प के विष दूरि करने कू तौ अनेक औषधि हैं, स्त्रीनि तैं भया काम सन्ताप ताका कोई औषध ही नांही। ऐसें स्त्री रूप सर्प मोक्ष मार्गीनिकौं भी भ्रष्टकरै हैं तातैं इनका विश्वास करना नांही।

(शार्दूल छन्द)

९ अमुत्तमनायिकामभिजनावर्ज्यां जगत्प्रेयसीं।
मुक्तिश्रीललनां गुणप्रणयिनीं गन्तुं तवेच्छा यदि।

तां त्वं संस्कुरु वर्जयान्यवनितावार्तामपि प्रस्फुटं
तस्यामेव रतिं तनुष्व नितरां प्रायेण सेर्ष्याः स्त्रिय ॥१२८

अर्थ—यह मुक्ति लक्ष्मी रूपी मनोहर स्त्री उत्तम नायिका है सो सामान्य जननि करि वर्जित है, जिस तिसकै याकी प्राप्ति न होय सकै है। बहुरि जगत विर्षे प्यारी है। याका स्वरूप जानें याकौं सर्व चाहै ऐसी है। बहुरि गुणनि विर्षे स्नेहवती है। जाविर्षे गुण होय तिस ही कौं याकी प्राप्ति हो है ऐसी यहु है। ताकौं प्राप्त होने कै अर्थि जो तेरे इच्छा पाइए है तौ तू तिस मोक्ष लक्ष्मी ही का रत्नत्रयादिकनि तैं आभूषित करि। बहुरि प्रगटपनैं अन्य लौकिक स्त्रीनि की वार्ता कौं भी छोरि। बहुरि तिस मोक्ष लक्ष्मी ही विर्षे अनुराग कौं विस्तारि बधाइ। ऐसैं ही तुमकौं मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति हो सी। जातैं स्त्री है ते बाहुल्यपनैं ईर्ष्या सहित हो है।

भावार्थ—इहां अलंकार करि मोक्ष लक्ष्मी कौं स्त्री कही, सो जैसैं कोई पुरुष कोई स्त्री कौं अपनें वश किया चाहै तब वह और स्त्रीनि की वार्ता भी न करै। वाही विर्षे अनुराग बधावै। आभूषणादिकनि करि वाकौं प्रसन्न करै। तैसैं तू मोक्ष लक्ष्मी कौं चाहै है तो लौकिक स्त्रीनि की वार्ता भी मति करै। वाही विर्षे प्रीति बधाइ। रत्नत्रादिकनैं वाका साधन करि, यहु उपाय है। बहुरि जैसैं स्त्रीनिकै परस्पर ईर्ष्या पाइए है, तातैं विरोध लिए जे दोय स्त्री तिन विर्षे एक ही का साधन बनैं तैसैं मोक्ष लक्ष्मी कै अर लौकिकस्त्रीनि कै परस्पर ईर्ष्या विपरीतता है। तातैं विरोध

लीए जो मोक्ष लक्ष्मी अर लौकिक स्त्री तिन विषै एक ही का साधन होगा। तातैं लौकिक स्त्रीनि कौं छोरि मुक्ति लक्ष्मी का साधन करना।

(हरिणी छन्द)

वचनसलिलैर्हासस्वच्छैस्तरंगसुखोदरै-
र्वदनकमलैर्बाह्ये रम्याः स्त्रियः सरसीसमाः।
इह हि बहवः प्रास्तप्रज्ञास्तटेपि पिपासवो
विषयविषमग्राहग्रस्ताः पुनर्न समुद्गताः ॥१२९॥

अर्थ—स्त्री सरोवरी समान है, ते हास्य रूपी स्वच्छता लीए अर वक्रोक्ति आदि तरंग सुखकारी जिनिकै गर्भित पाइए ऐसे वचन रूपी जल तिनिकरि, बहुरि मुख रूपी कमल तिनिकरि बाह्य विषै रमणीय है। सो इनि स्त्री रूपी सरोवरीनि विषै बहुत निर्बुद्धी जीव तट ही विषैं तृष्णावत होत सते विषय रूपी विषम गोह ता करि ग्रसे हुए बहुरि नांही निकसे।

भावार्थ—जैसे कोई सरोवरी तिस विषैं निर्मल तरंग लीए जल अर कमल पाइए हैं तिनिकरि बाह्य रमने योग्य भासै है। बहुरि तिसकै मध्य गोह नामा जलचर जीव बसै है। तहां कोई निर्विवेकी तृषावन्त भया तहां जाय तट ही विषैं खड़ा रह्या। सो यहु तो तृषा दूरि करनैं कों गया था और वहां याकों गोह नामा जलचर अपने तंतूनि सौं खीच करि गिलि गया। बहुरि निकस्या नाहीं, मरण ही को प्राप्त भया। तैसै ये स्त्री हैं। इनि विषै हास्य वा युक्ति लीए

वचन अर मुख की शोभा पाइए है। तिनिकरि आप्त रमन योग्य भासे है बहुरि इनि विषै काम सेवन रूप विषय का कारण पाइये है। तहां कोई अज्ञानी मेद नमित तृष्णार्थव भया तहां जाय दूरि ही अवलोकन करनें लागा सो यहु तौं अपनी चाहि मिटावनें कौं गया अर यहां काम है सो अपनें विषय रूप सामग्रीनितैं विह्वल करि भ्रष्ट किया, बहुरि चेतै नांही। स्थावरादि पर्याय ही कौं प्राप्त हो है। तातैं इनि स्त्रीनिका विश्वास न करना।

(शार्दूल छन्द)

पापिष्ठैर्जगतीविधीतमभितः प्रज्वाल्य रागानलं
क्रुद्धैरिन्द्रियलुब्धकैर्भयपदैः संत्रासिताः सर्वतः।
हन्तैते शरणैषिणो जनमृगाः स्त्रीछद्मना निर्मितं
घातस्थानमुपाश्रयन्ति मदनव्याधाधिपस्याकुलाः॥ १३०॥

अर्थ—पापी क्रोधी जे इन्द्री रूप अहेडी तिनि शिकार का स्थानक के चौगिरद राग रूपी अग्निकौं जलाय करि सर्व तरफतैं भय वा न भय ऐसे जे ए मनुष्यरूपी हिरण ते शरण कौं चाहता सन्ता हाय हाय काम रूपी अहेडीनि के स्वामी का जो स्त्री रूप कपटकरि निपजाया मारने का स्थानक ताकौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—जैसैं कोई प्रधान अहेडी के किंकर शिकार करावनें के अर्थि जहां हिरण होइ तहां चौगिरद अग्नि लगावैं। अर एक शिकार करनें का स्थान बनावे। तहां हिरण है ते अग्नि के भयतैं भाजि तिस स्थानक कौं प्राप्त होइ-इहां हम बचैंगे सो वहां प्रधान

अहेडी तिष्ठै सो उनकौं शस्त्रादिकतैं मारै। तैसैं प्रधान विकार रूप काम ताके इन्द्रियरूपी किंकर तेजीव कौं भ्रष्ट करने कौं सर्व वर्णादिक विषय विषैं रागादि उपजाया। अर एक स्त्री रूपी पदार्थ लोक विषै पाइए है। तहा ए जीव है ते राग भाव जनि। आकुलतातैं पीडित होइ तिस स्त्री कौं प्राप्त होइ। इहा हम निराकुल ह्वैंगे। सो इहा प्रधान काम विकार वसैं उन जीवनिकौं अपनें कुचेष्टा रूप बाणनि करि भ्रष्ट करै है। तहा परम आकुलताकौं पावै है। तातैं स्त्रीनिको भला स्थान जानि तहा विश्वास करना योग्य नाही।

आगै ऐसै बाह्य उपद्रव के कारणनि विषैं प्रवृत्ति को निषेधरूप करि अब अन्तरङ्ग उपद्रव के कारणनि विषैं तिस प्रवृत्ति कौं निषेधता सता सूत्र कहै हैं।

(पृथ्वी छन्द)

अपत्रप तपोग्निना भयजुप्सयोरास्पदं
शरीरमिदमर्धदग्धशववन्न किं पश्यसि।
वृथा व्रजसि किं रतिं ननु न भीषयस्यातुरो
निसर्गतरलाः स्त्रियस्तदिह ताः स्फुटं बिभ्यति।१३१

अर्थ—हे निर्लज्ज! तप रूपी अग्नि करि तेरा यहु शरीर अधबल्या मुर्दा सारिशा भय जुगुप्सा का स्थानक होय रह्या है। ताकौं तू कहा न देखै है। वृथा ही आशक्तताकौं क्यों प्राप्त हो है। हे भ्रष्ट! तू तौ आतुरवत हुवा स्त्रीनि कौं नाही डरावै है सग कीया

बचन अर मुख की शोभा पाइए है। तिनिकरि बाह्य रमन योग्य भासै है बहुरि इनि विषै काम सेवन रूप विषय का कारण पाइये है। तहां कोई अज्ञानी यह अनित तृष्णातुर भया तहां आप दूरि ही अवलोकन करनें लगा सो यहु तौ अपनी चाहि मिटावनें कौं गया अर यहा काम है सो अपनें विषय रूप सामग्रीनिवै विह्वल करि भ्रष्ट किया, बहुरि येवै मांही। स्थावरादि पर्याय ही कौं प्राप्त हो है। तातैं इनि स्त्रीनिका विश्वास न करना।

(शार्दूल छन्द)

पापिष्ठैर्जगतीविधीतमभितः प्रज्वाल्य रागानलं
क्रुद्धैरिन्द्रियलुब्धकैर्भयपदैः सन्त्रासिता: सर्वत: ।
हन्तैते शरणैषिणो जनमृगा: स्त्रीछद्मना निर्मितं
घातस्थानमुपाश्रयन्ति मदनव्याधाधिपस्याकुला: । १२०।

अर्थ—पापी क्रोधी जे इन्द्री रूप अहेडी तिनि शिकार का स्थानक के चौगिरद राग रूपी अग्निकौं बलाय करि सर्व तरफतैं भए वा न भए ऐसे जे ए मनुष्यरूपी हिरण ते शरण कौं चाहता सन्ता हाय हाय काम रूपी अहेडीनि के स्वामी का जो स्त्री रूप कपटकरि निरमाया मारने का स्थानक ताकौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—जैसैं कोई प्रधान अहेडी के किंकर शिकार करावनें के अर्थि जहां हिरण होइ तहां चौगिरद अग्नि लगावै। अर एक शिकार करनें का स्थान बनावै। तहां हिरण है ते अग्नि के भयतैं भाजि तिस स्थानक कौं प्राप्त होइ—यहां हम बचैंगे सो वहां प्रधान

अहेडी तिष्ठै सो उनकौं शस्त्रादिकतैं मारै । तैसैं प्रधान विकार रूप काम ताके इन्द्रियरूपी किंकर तेजीव कौं भ्रष्ट करने कौं सर्व वर्णादिक विषय विषैं रागादि उपजाया । अर एक स्त्री रूपी पदार्थ लोक विषै पाइए है । तहां ए जीव है ते राग भाव जनित आकुलतातैं पीडित होइ तिस स्त्री कौं प्राप्त होइ । इहां हम निराकुल ह्वैंगे । सो इहां प्रधान काम विकार वसैं उन जीवनिकौं अपनें कुचेष्टा रूप बाणनि करि भ्रष्ट करै है । तहा परम आकुलताकौं पावै है । तातैं स्त्रीनिको भला स्थान जानि तहा विश्वास करना योग्य नांही ।

आगै ऐसै बाह्य उपद्रव के कारणनि विषैं प्रवृत्ति को निषेधरूप करि अब अन्तरङ्ग उपद्रव के कारणनि विषैं तिस प्रवृत्ति कौ निषेधता सता सूत्र कहै हैं ।

(पृथ्वी छन्द)

अपत्रप तपोग्निना भयजुगुप्सयोरास्पदं
शरीरमिदमर्धदग्धशववन्न किं पश्यसि ।
वृथा व्रजसि किं रतिं ननु न भीषयस्यातुरो
निसर्गतरलाः स्त्रियस्तदिह ताः स्फुटं बिभ्यति ।१३१

अर्थ—हे निर्लज्ज ! तप रूपी अग्नि करि तेरा यहु शरीर अधबल्या मुर्दा सारिशा भय जुगुप्सा का स्थानक होय रह्या है । ताकौं तू कहा न देखै है । वृथा ही आशक्तताकौं क्यों प्राप्त हो है । हे भ्रष्ट ! तू तौ आतुरवत हुवा स्त्रीनि कौं नाही डरावै है। सग कीया

चाहै है। परन्तु त स्त्री सहज ही चंचल कपट है ते तुझिनै प्रगट पनैं करै है, तेरी भयानक मूर्ति देखि भाजै है।

भावार्थ—कोई होना परि कामविकारतैं स्त्रीनि विषैं अनुरागी हो है ताकौं इहां शिक्षा दई है। जो तेरा शरीर तौ तपकरि भयकारी अर घिनावना ऐसा भया जैसा पाषाणरूप्या मुर्दा होइ। अर तू स्त्रीनि का संग चाहै। अर उनका यहु स्वभाव जो आका शरीर सवारया न देखै तिसकी हास्य करै तिसतैं दूरि भागैं। सो है निर्लज्ज तेरे उनका संग होना नांहीं, वृथा ही आपा काहे कौं बिगारै है। इस पदवी कौं पाइ तुझकौं अपना भला ही करना योग्य है।

आगैं जिस स्थान विषैं तू रति करै है सो ऐसा है। ऐसे दिखावता सन्ता उत्तुंग इत्यादि तीन श्लोक कहै हैं।

(वसंत तिलका छन्द)

उत्तुङ्गसङ्गतकुचाचलदुर्गदूर
मारादूवलित्रयसरिद्विषमावतारम्।
रोमावलीकुसुममार्गमनङ्गमूढा
कान्ताकटीविवरमेत्य न केत्र खिन्ना ॥१२२॥

अर्थ—काम विकारतैं मूर्ख भए ऐसे कौन जीव स्त्री का कटिछिद्र जो योनिस्थान ताकौं प्राप्त होइ खेदखिन्न न हो है अपि तु सर्व ही तत्काल वा आगामी महा खेद कौं पावै ही है। कैसा है सो स्थान ऊंचे अर परस्पर मिलि गए ऐसे जे दोय कुच तेई भए पर्वत तिन तिनिकरि दुःप्राप्य है। बहुरि अतिशय करि जिसकी

रूप नदी तिनिकरि विषम है, पार उतरनां जहां ऐसा है । बहुरि रोमनि की जो पक्ति ताकरि खोटा गमन करनें का है मार्ग जाका ऐसा है।

भावार्थ—जैसें जिस स्थानक के मार्ग विषैं ऊँचे मिले हुए पर्वत होइ, अर जातैं कठिन पार उतरिए ऐसी नदी होइ, अर वृक्षनि की सघनतातैं दुर्गमता होइ तिस स्थानक के पहौंचने विषैं खेद होय ही होय। तैसें योनि स्थानक रमणें कै पहलै ऊंचे मिले हुए तो कुच हैं। बहुरि जातैं खेदकरि छूटनां होइ ऐसी त्रिवली है। बहुरि रोमनि करि दुर्गमता पाइए है। ऐसे स्थानक कौं प्राप्त होने विषैं खेद होय ही होय । यहु जो प्रत्यक्ष खेद कौं सुखमानै है, सो जैसें दुखिया मूड फोडनें विषैं सुख मानैं, तैसें कामकरि पीडित हुवा खेद होनें विषैं सुख कल्पै है। तातैं काम विकार मिटावना योग्य है।

(वसन्त तिलका छन्द)

वर्चोगृहं विषयिणां मदनायुधस्य
नाडीव्रणं विषमनिर्वृतिपर्वतस्य ।
प्रच्छन्नपादुकमनङ्गमहाहिरन्ध्र-
माहुर्बुधा जघनरन्ध्रमदः सुदत्याः ॥१३३॥

अर्थ— ज्ञानी है ते सुदती जो स्त्री ताका जघन रंध्र जो योनि रूप छिद्र ताकौं ऐसा कहै हैं। कैसा है यहु–विषयी पुरुषनि का विष्टा का घर है। वा काम का जु शस्त्र ताका घाव है। वा विषम

चाहै है। परन्तु ते स्त्री सहज ही चंचल कायर है ते तुमिकौ प्रगट पनैं करै है, तेरी भयानक मूर्ति देखि भाजै है।

भावार्थ—कोई जीवा परि काम विकारतैं स्त्रीनि विषैं अनुरागी हो है ताकौं इहां शिक्षा दई है। जो तेरा शरीर तौ तपकरि भयकारी अर घिनावना ऐसा भया जैसा आधावस्था मुर्दा होइ। अर तू स्त्रीनि का संग चाहै। अर उनका यहु स्वभाव जो जाका शरीर सवार-या न देखै तिसकी हास्य करै तिसतैं दूरि भागैं। सो है निर्लज्ज तेरे उनका संग होना नांही, वृथा ही आपा काहे कौं बिगारै है। इस पदवी कौं पाइ तुमकौं अपना भला ही करना योग्य है।

आगैं जिस स्थान विषैं तू रति करै है सो ऐसा है। ऐसे दिखावता सन्ता उत्तुंग इत्यादि तीन श्लोक कहै हैं।

(वसंत तिलका छन्द)

उत्तुङ्गसङ्गतकुचाचलदुर्गदूर
मारात्त्रिवलिसरित्परिखापरीतम्।
रोमावलीकुसुममार्गमनङ्गमूढाः
कान्ताकटीविवरमेत्य न केऽत्र खिन्नाः ॥१३२॥

अर्थ—काम विकारतैं मूर्ख भए ऐसे कौन जीव स्त्री का कटि-बिल जो योनिस्थान ताकौं प्राप्त होइ खेदखिन्न न हो है अपि तु सर्व ही तत्काल वा आगामी महा खेद कौं पावै ही है। कैसा है सो स्थान ऊंचे अर परस्पर मिलि गए ऐसे जे दोय कुच तेई भए पर्वत तिन करि गढ़ तिनिकरि दुःप्राप्य है। बहुरि अतिशय करि तिनकी

की पहलै जन्म भूमिका है वातैं माता है। अर याकों प्रीति करन-हारी जो कुकवि कहत भया तिस दुष्टात्मा के दुष्ट वचननि करि यहु जगत ठिगाया है।

भावार्थ—जैसैं हाथी वन विषै स्वाधीन रहै है, उनके पकडने कों कोई कपट का खाडा वनावै, तहां विषय सेवन का लोभ तैं ते हाथी तिस खाडे विषैं पडि करि नाना कष्ट सहै। तैसैं मुनि वन विषैं स्वाधीन हैं। इनके भ्रष्ट करने को कारण स्त्री का योनि-स्थान है। तहा विषय सेवन का लोभ तैं तिस योनि विषै रमते सन्ते इस लोक परलोक के घने कष्ट सहै हैं। इहां आचार्य कहै हैं–जीव कै काम विकार तौ था ही परन्तु कोई शिक्षा देने वाला मिलै तौ काम विकार घटै। सो खोटे कवीश्वर अनेक युक्त करि स्त्री के अगनि कों रमणीक दिखाय विकार वधावै है सो उनके वचननि करि ठिगाया हुवा जीव चेतै नाहीं। वहुरि देखो कुकविनि की धीठता जिस योनि स्थान विषैं अपना जन्म भया ताहीकौं रमणे का स्थान बताव है। तातैं कुकविनि के वहकाए स्त्री की योनि विषैं रागी मति होहु। रागी भए महा कष्ट पावोगे। ऐसी इहा सीख दई है।

आगै विष विषैं जो अमृत बुद्धि करि प्रवृत्ति करावै है सो ठिग कहिए। इहा तौ ए स्त्री पुरुषनि कै भी सतापादिक दुःख का कारण हो है ? तातैं वडा विष है। ऐसा कहै हैं।

(श्लोक)

कण्ठस्थः कालकूटोपि शम्भोः किमपि नाकरोत्।
सोपि दन्दह्यते स्त्रीभिः स्त्रियो हि विषमं विषम्।१३५।

मोह रूप पर्वत ताका आच्छादित जाका है। वा काम बड़े सर्प का बिल है ऐसा बतावे है।

भावार्थ—यहु योनि-छिद्र है सो जैसें विष्टा क्षेपन का घर होइ तैसें कामी पुरुषनि का वीर्य क्षेपनें का स्थानक है। अथवा जैसें शस्त्र ताका घाव होइ तैसें यहु काम का शस्त्र जो लिंग ताका घाव है। अथवा जैसें पर्वत के आडा छिपा हुवा जाका तहां न जानें का कारण होइ। तैसें यहु मोहके आडा अज्ञानी जाकौं पुरा जानें ऐसा तहां न जानें का कारण है। अथवा जैसें बिल विषैं सर्प रहता होय तहां जो जाय ताकौं वह सर्प डसैं या विषैं काम का वास है। इहां रति मानैं ताकौं काम मोहित करै। ऐसे अनेक उपमा करि यहु योनि-छिद्र अनिष्ट हैं। तातैं इहां राग न करना।

शार्दूल छन्द)

अध्यास्यापि तपोवनं वत परे नारीकटीकोटरे
व्याकृष्टा विषयैः पतन्ति करिणः कूटावपाते यथा।
प्रोचे प्रीतिकरीं जनस्य जननीं प्राग्जन्मभूमिं च या
व्यक्तं तस्य दुरात्मनो दुरुदितैर्मन्ये जगज्जृम्भितम्।१२४।

अर्थ—हा हा अर्मतें म्हारे मए ऐसे केई जीव तप करने का स्थानक वन ताकौं प्राप्त होइ करि भी विषयनि करि भेरे हुए जैसैं हाथी कपट करि बनाया खाडा विषैं पड़ै तैसें स्त्री का कटि-छिद्र विषैं पड़ै हैं। सो मैं ऐसैं मानौं हौं—यहु योनि है सो या मनुष्य

ति पाइए है। तौ ए चन्द्रमा आदि पदार्थ शुचि है शुभ है।
विषैं प्रीति करनी भली है। परन्तु कामरूपी मदिरा का
े जो आधा भया तिस विषैं कहा विवेक है ?

ावार्थ—खोटे कवि स्त्री कै अगनि विषैं चन्द्रमा कमलादि
नि की उपमा देइ अनुराग करावै है। तू काम मदिरा करि
भया तोकौं किछू दीखै नांही। ए हाड मांस के बने अग
कौं चन्द्रमादिक का समान पना कैसैं बनैं ? बहुरि जो तेरी
विषैं चन्द्रमादिक की उपमा बनै है तौ जिनिकी उपमा दई है
इसतैं किछू भले होहिंगे। बहुरि स्त्री के अग तौ अपवित्र हैं
बुरे हैं। चन्द्रमादिक पवित्र हैं भले हैं। तातैं चन्द्रमादिकनि
वषैं अनुराग क्यों न करै ? परन्तु जैसैं कीडा विष्टा विषैं रति
तैसैं तू कामी स्त्रीनि के अंगनि विषैं ही रति मानै है।
ान्धपनैं भले बुरे का विवेक होता नाहीं। तातैं कामान्धपनां
े विवेकी होना योग्य है।

आगै स्त्री का शरीर विषैं प्रीति है सो मन पूर्वक है। बहुरि
न नपुसक है। ज्ञानी पुरुष है सो तिस नपुंसक करि तिनि
ानि का जीतना कैसै बनै है। ऐसा कहै हैं।

(पृथ्वी छन्द)

प्रियामनुभवत् स्वयं भवति कातरं केवलं
परेष्वनुभवत्सु तां विषयिषु स्फुटं ह्लादते।

अर्थ—रुद्रके कण्ठ विषैं तिष्ठ्या हुवा कालकूट विष है सो किछू न करत भया। बहुरि ऐसा भी रुद्र है सो स्त्रीनि करि संतापित कीजिए है। तातैं स्त्री है ते अन्य विषनि तैं भी विष है।

भावार्थ—लोक विषैं कालकूट विष समान और निरुपाय अनिष्ट नांही ऐसा कहिए है। सो ए स्त्री है ते तातैं भी विष है। अत्यन्त निरुपाय अनिष्ट है। ऐसो महादेव कालकूट विषकौं कंठ विषैं राखता भया ताकै वह किछू भी अनिष्ट न करता भया। बहुरि स्त्री है ते तिसकौं भी काम पीड़ित करि आताप उपजावै। तातैं कालकूट तैं भी स्त्री का विषमपना जानि जे विषकौं भी बतावै हैं, ऐसे ठिगनि तैं भी जे स्त्री विषैं अनुराग करावै हैं ते महा ठिग जानने। इनके वचननितैं स्त्रीनि विषैं अनुराग न करना।

आगैं ऐसा स्त्री का शरीर विषैं चन्द्रमादिक का सा स्थापनें तैं मायीनिकै आराधकता हो है सो झूठी है, ऐसा कहै हैं।

(मालिनी छन्द)

> अप युवतिशरीरे सर्वदोषैकपात्रे
> रतिरमृतमयूखाद्यर्थसाधर्म्यतश्चेत् ।
> ननु शुचिषु शुभेषु प्रीतिरेष्वेव साध्वी
> मदनमधुमदान्धे प्रायशः को विवेकः ॥१२९

अर्थ—हे मायी सर्व दोषनि का पात्र ऐसा जु स्त्री का शरीर तिस विषैं चन्द्रमा आदि पदार्थनि कै समान स्वभाव मानने तैं

करि हारै नाही। मन नपुसक इस सुखी पुरुषकौं कैसैं जीतै ? तातैं मनकौं बलवान मानि आपको पुरुषार्थ न छोडना। पुरुषार्थ करि मन विकार का अभाव ही करना योग्य है।

आगैं पूर्वोक्त कारणतैं मनकौं जीति विवेकी पुरुषनि करि भला तप ही करना योग्य है। तिस तप कौ करता जीव कै परम पूज्यपना की सिद्धि हो है, ऐसा कहै हैं।

स्रग्धरा छंद।

राज्यं सौजन्ययुक्तं श्रुतवदुरु तपः पूज्यमत्रापि यस्मात्
त्यक्त्वा राज्यं तपस्यन्नलघुरतिलघुः स्यात्तपः प्रोह्य राज्यम्।
राज्यात्तस्मात् प्रपूज्य तप इति मनसालोच्य धीमानुदग्रं
कुर्यादार्यः समग्रं प्रभवभयहरं सत्तपः पापभीरुः ॥१३८॥

अर्थ—जातैं सु नता जो नोति ता करि सहित तौ राज्य अर शास्त्रज्ञान सहित तप, ए दोऊ पूज्य हैं। बहुरि इनि विषैं भी जो राज्यकौ छोरि तपकरै है सो तौ लघु नाही हो है, उत्तमपनौ पावै है। अर जो तपकों छोरि राज्य करै है सो अत्यत लघु हो, है, नीच पनौ प वै है। तातैं राज्यतैं भी तप है सो प्रकर्षपनैं पूज्य है। ऐसैं मन करि विचारि पापतैं भयभीत बुद्धि ान् आर्य पुरुष हैं सो सर्व प्रकार ससार भय का दूरि करन हारा जो तप तिसकौ करै है।

भावार्थ—लोक विषैं दोय प्रधान हैं। एक तौ नीति सहित राज्य अर एक ज्ञान सहित तप। बहुरि जो राज्य छोरि तप करै

मनो नपुंसकमिति नशब्दतश्चार्थतः ।
सुधी कथमनेन सन्नुमयया पुमान् जीयते ॥१३७॥

अर्थ—मन है सो स्त्री कौं भोगयवां आप तो केवल कायर हो है किंतु वाकौं भोगि सकै नांही । बहुरि अन्य जे विषयी स्पर्शनादि इन्द्रिय तिनकौं तिस स्त्री कौं भोगवते सन्तें प्रगट हर्ष करै है । तातैं यहु मन है सो केवल शब्द ही तें नपुंसक नाहीं है अर्थ तैं भी नपुंसक हो है । बहुरि भली बुद्धि का धनी ज्ञानी है सो दोऊ प्रकार शब्द तैं भी अर अर्थ तैं भी पुरुष लिंगी है । सो इस मन करि कैसैं जीतिए है अपि तु न जीतिए है ।

भावार्थ—काऊ कहैगा मन विकारी होइ आइ तब विवेकी कहा करै ? ताकौं युक्ति करि समझाइए है । मन ऐसा शब्द व्याकरण विषैं नपुंसक लिंगी कह्या है । सो मन शब्द ही तैं नपुंसक लिंगी नांही है, अर्थ तैं भी नपुंसक ही है । जैसैं नपुंसक स्त्री भोगवनें कौं चाहै परन्तु आप भोगि सकै नांही । अन्य पुरुष भोगवै तिनकी क्रीडा ही देखि आप हर्ष करै । तैसैं यहु मन स्त्री भोगवनें कौं चाहै, परन्तु आप भोग करि सकै नांही स्पर्शनादि इन्द्रिय भोग करै तिनकी क्रीडा ही देखि आप हर्ष करै है । ऐसैं मन तो शब्द तैं अर अर्थ तैं दोऊ प्रकार नपुंसक है । अर सुबुद्धी है सो सुधी ऐसा शब्द व्याकरण विषैं पुरुष लिंगी है । तातैं शब्द तैं भी पुरुष है । अर सुष्ठु बुद्धि जाकै पाइए ऐसा याका अर्थ है । सो स्त्री का धनी पुरुष ही होइ, स्त्री कै स्त्री बनैं नांही । तातैं अर्थ तैं भी पुरुष है । सो सुधी पुरुष पुरुषार्थकौं न संभारै तौ मन नपुंसक

ताका संगम भी नाहीं करै। मो गुण का नाश लघुपना करै ही करै। तातैं गुण की रक्षा ही योग्य है। बहुरि इहां ऐसा भाव जानना जो कुल वा पदस्थ का वा भेषादिक का संबंध करि बडापनौ मानिये है सो भ्रम है। एक ही जीव जो गुण होतैं तो वद्य था सोई गुण गए निंद्य भया, तौ पूर्वैं अन्य जीव गुणवान भए थे। अर आप भ्रष्ट भया तब उनके गुणनितैं यहु कैसैं वद्य होइ। अपने वर्त्तमान गुणनिहीतैं वद्यपनां हो है, ऐसा निश्चय करना।

आगैं बहुत गुण होतैं भी दोष के अंश का भी रहना भला नाही। बहुरि तिस दोष के अंशकौं रहैं संतैं तिस दोषमयपनौ ही भलौ है ऐसा अन्योक्ति अलंकार करि स्वरूप दिखावता संता सूत्र कहे है।

(वसन्त-तिलका छन्द)

हे चन्द्रमः किमिति लाञ्छनवानभूस्त्वं,
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नया मलमलं तव घोषयन्त्या,
स्वर्भानुवन्नंनु तथा सति नासि लक्ष्यः ॥१४०॥

अर्थ—हे चद्रमा तू कालिमा रूप लांछन सहित ऐसा क्यों भया? बहुरि जो लांछन सहित ही भया था तो तू सर्व ही कालिमा मई ऐसा क्यों न भया। रे अतिशय करि तेरे मलकौं बतावती ऐसी जो अवशेष रही ज्योति ता करि कहा सिद्धि है। इहां विचार करि जो राहुवत् तैसै ही सर्व काला होय तो तू काहू करि लखने योग्य टोकने योग्य न हो है।

सो तौ वध हो है। अर तप छोरि राज्य करै सो व्यति निंद्य हो है। तातैं यहु निश्चय है राजतैं भी तप विशेष प्रधान है, सो प्रत्यक्ष देखिये है राजा तपस्वी कौ वंदे। अर तपस्वी राजाकौं वंदै नांही। सो ऐसैं विचारि जो ज्ञानी जन संसार तैं डरया है सो राज कौं तौ पापरूप संसार का कारण जांनि अर तपकौं संसार दुःख का हरनहारा जानि तप ही कौं अंगीकार करै है।

आगैं तप है लक्षण जाका ऐसा गुण का नाशतैं लघुपनौं हो है। इस ही अर्थ कौं दृष्टांत द्वारकरि दिखावता संता सूत्र कहै हैं।

॥ श्लोक ॥

पुरा शिरसि धार्यन्ते पुष्पाणि विबुधैरपि ।
पश्चात् पादोपि नास्प्राक्षीत् किं न कुर्याद्गुणक्षतिः ॥१३८॥

अर्थ—पहलैं जब सुगंधादिक गुण होइ तबतौ पुष्प हैं ते देवनि करि भी मस्तक विर्षे धारिये हैं। बहुरि पीछें गुण जाते रहैं तब तिन फूलनिकौं चरण है सो भी नांही भीडै है। सो न्याय ही है। गुण का नाश है सो कहा लघुता न करै? अपितु सर्व ही करै।

भावार्थ—लोक विर्षे गुण ही करि महिमा है, सो देखो जिस फूलको सुगंधादिक गुण होतैं महंत पुरुष भी अपने मस्तक विर्षे राखैं थे तिस ही फूल को गुण गए पीछे कोई पगनि की ठोकर भी देवा नांही। सो इहां भी यहु अर्थ समझनां। जो ज्ञान सहित तप होतैं जाकौं देव भी पूजैं थे तिस ही कौं भ्रष्ट भए पीछे कोई

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु
जइ लेइ अप्पबहुयं ततो पुण जाइ णिग्गोयं ।

अर्थ—यथाजातरूप सदृश नग्न मुनि है सो पदार्थनि विषैं तिलका तुष मात्र भी न ग्रहण करै है । जो थोरा वहुत ग्रहण करै तौ तिसतैं निगोद जाय । सो इहां देखो गृहस्थ परिग्रह का धारी थोरा सा धर्म साधै तौ भी शुभ गति पावै । अर मुनि थोरा सा भी व्रत भंग करै तौ निगोद जाय । बहुरि न्याय भी ऐसैं ही है अनशनतपधारि अन्न का दाणा भी ग्रहै तो पापी होइ । बहुरि अनशन व्रत न धारै, अर अवमौदर्य्य विषैं तिसतैं घणा भी भोजन करै तौ धर्मात्मा होइ । ऐसै यहु वात सिद्धि भई । दोष सहित ऊंची पदवी तैं नीचैं की पदवी ही भली है । तातैं दोष लगाय ऊंची पदवी कौं विगारनी योग्य नाही ।

आगै दोषकौं विद्यमान होतैं ताकौं प्रकाशनें वाला अर आछादनें वाला ऐसा दुर्जन अर आचार्य तिनकै हितकारी अहितकारीपनां तैं आराधनें न आराधनें का योग्यपनाकौं दिखावता संता सूत्र कहै हैं ।

॥ शार्दूलछंद ॥

दोषान् कांश्चन तान्प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं
सार्धं तैः सहसा म्रियेद्यदि गुरुः पश्चात् करोत्येष किम् ।
तस्मान्मे न गुरुर्गुरुर्गुरुतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं
ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणं सोयं खलः सद्गुरुः ॥१४१॥

भावार्थ यहां अन्योक्ति अलंकार करि चन्द्रमाकौं उलाहनां दीया है। सो कोई ऊंची मुनिपदवी धारि तिस विषै दोष लगावै है ताकौं यहु उलाहनां जानना। जैसैं चन्द्रमा उज्ज्वल पदवी का धारक अर याके किंचित् कालिमा दीसै है ताकरि याकौं कलंकी कहि करि सर्व टोकै है। अर जो राहु सर्व ही काला है तौ वाका ऐसा ही पद जानि कोऊ टोकै नांही। तैसैं तू निर्मल रूपी मुनि पदवी का धारक भया है। अर तेरै कोई किछू दोष भासै है ता करि तोकौं कलंकी मानि सर्व टोकै हैं। अर जो नीचे की गृहस्थ पदवी का धारक सर्वथा युक्त है तौ वाका ऐसा ही पद जानि कोऊ टोकै नांही। तातैं चन्द्रमा का मिस करि याकौं सीखदई है तू दोष सहित क्यों भया। अर जो दोष सहित होना था तौ सर्व ही दोष युक्त क्यों न भया। ऊंची मुनिपदवी छोरि नीचली गृहस्थ पदवी ही अंगीकार करनी थी। रे! तू केई ऊंची मुनि पदवी की क्रियानिकौं साधै है सो इनिकरि कहा साध्य है? यह तेरै दोषकौं प्रगट करै है। जो तू भी गृहस्थ होय तौ अन्य गृहस्थवत् टोकनें योग्य न होइ। तातैं हमारी यहु शिक्षा है —जो ऊंची मुनिपदवी कौं धारै है तौ दोषकौं मति धारै। अर दोषकौं धरै है तौ मुनि पदकौं मति धरै। आदिपुराण विषैं भी ऐसा कथन है—च्यारि हजार मुनि आदिनाथ स्वामी की साथि दीक्षा लेइ भ्रष्ट भए, तब तिनकौं देवता कहते भए। इस पदवी विषैं ऐसा आचरण करोगे तौ हम दंडैंगे। इस पदवी का धारि जैसैं रुचै तैसैं करौ। इहां कोऊ कहै लोककौं जैसैं कहै तैसैं करौ, परन्तु उनतौ जेता गुण दाय होइ तेताही लागैं ताका उत्तर षट्पाहुड विषैं ऐसा कहा है।

दोष जानि ताके अभाव करनेंकौ उद्यमवंत होइ। ऐसैं दोष का कहनां उपदेश समान गुणकर्ता हो है। तातैं दोष कहन हारा दुर्जन है सो इस अपेक्षा गुरु समान कार्यकारी है। या प्रकार धर्मात्मा है सो दोष छिपावनें वाला गुरु तैं भी अपना दोष कहन हारा दुर्जन कौं भी भला जानैं है। इहां प्रश्न.—जो दोष कहै मर्म छेद करनें तैं पाप भी तौ हो है। ताका समाधान.—जो ईर्ष्या दोष करि बुरा करनें कै अर्थि दोष प्रगट करै है ताकौं तौ पाप ही हो है। बहुरि जो करुणावंत होइ दोष छुडावनै कै अर्थि दोष प्रकट करै है ताकौं पुन्य ही हो है। बहुरि प्रश्न —जो दुर्जनकौं तौ पाप ही हो है, वाकौं गुरु कैसैं कह्या। ताका उत्तर —दुर्जन तौ पापी ही है। परंतु इहां दोष छिपावनें वाला गुरु दुर्जन तैं भी बुरा है। ऐसा प्रयोजन लिए अलंकार करि गुरु कह्या है। परमार्थ तैं गुरु है नांही, ऐसैं धर्मात्मा दोष कहनें वालौं कौं इष्टमानै है।

आगै तर्क करै है—जो शिष्य कैं दोष कहे चिंता पजै ताका निषेध कै अर्थि आचार्य हैं ते दोषकौं छिपाइ करि प्रवर्तैं हैं। ऐसा कहै हैं।

॥ श्लोक ॥

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः ।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः ॥१४२॥

अर्थ—कठोर जे गुरु की वाणी ते भव्य जीव का मनकौं

अर्थ—कोई गुरु प्रवृत्ति रातन का भावकरि शिष्यकै पाइए ऐसे ते कई दोष तिनकौं छिपाइ करि प्रवर्त्ते है। बहुरि वा पु शिष्य तिनि दोषनि करि सहित शीघ्र मरनकौं प्राप्त होइ तौ पीछै यहु गुरु कहा करै। तातैं ऐसा मेरा गुरु नांही। बहुरि जो वाप बलनें विषै जैसैं प्रवीण होइ तैसैं निरन्तर नीकै अवलोकि मेरे थोरे दोषनिकौं बहुत भये बधाई करिप्रगट कहै है। ऐसा दुर्जन है सो मेरा भला गुरु है।

भावार्थ—पूर्व सूत्र विषैं दोषवान की निंदा करीथी तहां काऊ कहै कि अवगुणग्राही होना युक्त नांही। आपकौं तौ गुणग्राही का महण करना। ताकौं कहिए है। जो आप दोषकौं भी धरै है अर अपना ऊ चापमा भी राख्या चाहै है ताकौं दोष प्रगट करन हारा बुरा भासै है। बहुरि जो धर्मात्मा अपनी अवस्थातैं ऊ चापमा प्रगट कीया न चाहै है अर कोई आप विषै दोष है ताकौं छोड्या चाहै है, ताकौं दोष प्रगट करन हारा बुरा नांही भासै है। सो इहां धर्मात्मा ऐसैं विचारै है जे गुण दोष का ज्ञान तौ गुरु-उपदेश तैं हो है। बहुरि जो गुरु प्रवृत्ति करावने का लोभतैं जैसैं अपना सम्प्रदाय बधै तैसैं कीया चाहै अर दोषनिकौं न कहै तौ शिष्यका अपने दोष का ठ क न होइ, तब वह दोषकौं छांडै नांही। बहुरि जो ऐसैं विचारै पीछै याका दोष छुडावैंगे। अर वह शीघ्र ही दोष सहित मरै कुगतिकौं प्राप्त होइ तब गुरु कहा करै? तातैं दोषकौं छिपावै सा गुरु नांही। बहुरि दुर्जन है सो थोरे दोषनिकौं भी अवलोकि तिनिकौं घने करि करि प्रगटकरै तब धर्मात्मा अपना

दोष जानि ताके अभाव करनेंकौं उद्यमवंत होइ। ऐसैं दोष का कहनां उपदेश समान गुणकर्ता हो है। तातैं दोष कहन हारा दुर्जन है सो इस अपेक्षा गुरु समान कार्यकारी है। या प्रकार धर्मात्मा है सो दोष छिपावनें वाला गुरु तैं भी अपना दोष कहन हारा दुर्जन कौं भी भला जानैं है। इहां प्रश्न.—जो दोष कहै मर्म छेद करनें तैं पाप भी तौ हो है। ताका समाधान.—जो ईर्ष्या दोष करि बुरा करनें कै अर्थि दोष प्रगट करै है ताकौं तौ पाप ही हो है। बहुरि जो करुणावंत होइ दोष छुडावनै कै अर्थि दोष प्रकट करै है ताकौं पुन्य ही हो है। बहुरि प्रश्न —जो दुर्जनकौं तौ पाप ही हो है, वाकौं गुरु कैसैं कह्या। ताका उत्तर —दुर्जन तौ पापी ही है। परतु इहा दोष छिपावनें वाला गुरु दुर्जन तैं भी बुरा है। ऐसा प्रयोजन लिए अलकार करि गुरु कह्या है। परमार्थ तैं गुरु है नांही, ऐसैं धर्मात्मा दोष कहनें वालौं कौं इष्टमानै है।

आगै तर्क करै है —जो शिष्य कैं दोष कहे चिंता पजै ताका निषेध कै अर्थि आचार्य हैं ते दोषकौं छिपाइ करि प्रवर्तैं हैं। ऐसा कहै हैं।

॥ श्लोक ॥

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः ॥१४२॥

अर्थ—कठोर जे गुरु की वाणी ते भव्य जीव का मनकौं

प्रफुल्लित करै है। तैसें कठोर भी सूर्य की किरण त कमल की कली कौं प्रफुल्लित करै।

भावार्थ—श्री गुरु दोष छुडावनेंकौं वा गुण ग्रहण करावनेंकौं कदाचित् असुहावनें कठोर वचन भी कहै, तहां भव्य जीव का मन तिन वचननि करि आनंदित ही हो है। याकै चिता खेद न हो है। जैसें सूर्य की किरण औरकौं आताप उपजावनहारी कठोर है, तथापि कमल की कली कौं प्रफुल्लित ही करै है। तैसें गुरु के वचन पापी की अपनी हीनता होनेंं करि दुख उपजावन हारे कठोर हैं, तथापि धर्मात्मा के मनकौं आनन्द ही उपजावै है। धर्मात्माकौं श्री गुरु यथार्थ उपदेश देवें है। तब यह आपकौं धन्य मानै है। इहां कोऊ कहै—कठोर उपदेश तें पापी तो दुःख पावै। ताका उत्तर। ताकौं तीव्र कषायी पापी जानैं ताकौं कठोर उपदेश देवैं नांही, तहाँ माध्यस्थ भावनां भावै है। इहां तो शिष्य को यह शिक्षा है—श्री गुरु भला होनेंं के अर्थि कठोर वचन कहै है। तिनकै कछु ईर्ष्या प्रयोजन है नांही। तातैं तिनकौं इष्ट जानि तहां आदर ही करना।

आगे तैसी वाणीनि करि धर्म के कहनेंकौं अर अंगीकार करनेंकौं सावधान ऐसे इस काल विषैं प्राणी थोरे है ऐसा कहै है

॥ श्लोक ॥

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः ॥१४३॥

अर्थ—पूर्वें तौ दोऊ लोक विषैं हितकारी ऐसा धर्म ताहि कहनेंकौं अर सुननेकौ तौ सुलभ थे बहुरि करनेंकौ दुर्लभ थे। बहुरि अब इस काल विषैं कहनेकौं अर सुननेंकौ भी दुर्लभ भए हैं।

भावार्थ—जो धर्म इस लोक विषैं अर परलोक विषैं जीव को भलो करै ऐसे धर्म के कहने वाले अर सुनने वाले पूर्वें चौथे काल मैं घने थे। अर अगीकार करने वाले तब भी थोरे ही थे, जातैं ससार विषैं धर्मात्मा थोरे ही हो हैं। बहुरि अब यहु पचम काल ऐसा निकृष्ट है जिस विषैं साचे धर्म के कहने वाले अर सुननें वाले भी थोरे ही पाइये हैं। कहने वाले तौ अपना लोभ मानादिक के अर्थी भये तातैं यथार्थ कहै नाही। अर सुनने वाले जडवक्र भये तातैं परीक्षा रहित हठग्राही होत सते यथार्थ सुनै नाही। बहुरि कहना सुनना ही दुर्लभ भया तौ अगीकार करने की कहा बात? ऐसैं इस काल विषैं धर्म दुर्लभ भया है सो न्याय ही है। यहु पचमकाल ऐसा निकृष्ट हैं जा विषैं सर्व ही उत्तम वस्तुनि की हीनता होती आवै है, तौ धर्म भी तौ उत्तम है, याकी वृद्धि कैसैं होय? तातैं ऐसे निकृष्ट काल विषैं जाकौं धर्म की प्राप्ति होय है सो ही धन्य है।

आगैं कोऊ सदेह करै कि दोऊ लोक विषैं हितकारी धर्म ताके कहन हारे श्री गुरु तिनिकरि औरनिका दोषकौं कहिकरि तिस दोषतैं निवृत्ति करावनी। सो तैमैं कोएं शिष्यकै अपना दोष प्रगट

बडाई करै। जोए बडाई न करै तो अज्ञानी जीवनि का मान कैसैं अधै। बहुरि याका मान न बधावै तौ यहु उनका प्रयोजन काहे कौं सांधै। ऐसैं सत्पुरुष दोष भी करै है। अर अधर्मी बड़ाई भी करै है। तहा मूर्ख को तौं दोष कहना अनिष्ट भासै है। अर गुण कहना इष्ट भासै है। बहुरि जे विवेकी हैं ते ऐसैं जानै है जो मेरा भला होने कै अर्थि दोष प्रगट करै है। सो यहु दोष का प्रगट करना है सो ही मुझकौं भली शिक्षा है। ऐसैं विचारि तहा इष्ट-पनौं मानै है, बहुरि जो ए अपना प्रयोजन अर्थि दोषकौं गुण ठहरावै ते ए ठिग हैं। जो येहु बडाई है सोई मेरे बुरा होने का कारण है। ऐसैं विचारि तहां अनिष्ट मानै है। तातैं दोष कहैं विवेकीनिकै आर्त्तध्यान होने का भ्रम करनां नाँही।

आगैं दोष प्रगट कीयें दोष देखने तै दोष का त्याग करनां। अर गुण देखनें तैं गुण का ग्रहण करना सो ही बुद्धिवानौं कूं करने योग्य कार्य है। ऐसा कहै हैं।

त्यक्तहेत्वन्तरापेक्षौ गुणदोषनिबन्धनौ।
यस्यादानपरित्यागौ स एव विदुषां वरः ॥१४५॥

अर्थ—छोडी है अन्य कारण की अपेक्षा जिन विषैं, बहुरि गुण दोष ही का है कारण जहा, ऐसे जे ग्रहण अर त्याग ते तिस जीव कै पाइए सो ही ज्ञानीनि विषैं प्रधान जानना।

भावार्थ—काहू का ग्रहण करना काहू का त्यजन करना ऐसे जीवनिकै प्रवृत्त पाईए है (तहा सम्यग्दर्शन दिक गुण जिनि करि

होनेतैं अनिष्ट का संयोग भया तातैं यह आर्तध्यानी होय किछू भी मध्यमार्ग विषैं मकर्ते सो ऐसा संदेह दूरि करत संता सूत्र कहै है।

॥ पृथ्वीछन्द ॥

गुणागुणविवेकिभिर्विहितमप्यलं दूषणं
भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीतये ।
कृतं किमपि धाष्टर्यतः स्तवनमप्यतीर्थोषितै
र्न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता ॥१४४॥

अर्थ—गुण अर दोषका विवेक सहित जे सत्पुरुष तिनकरि अपना दूषण अतिशय करि प्रगट कीया हुवा भी बुद्धिवान जीव तिनिकै जैसे भला उपदेश प्रीति उपजावै तैसें अत्यंत प्रीतिकै अर्थि हो है। बहुरि धर्म तीर्थ को न सेवन हारे ऐसे जीव तिनि करि धीठपना तैं किछू किया हुवा गुणानुवाद है सो भी तिनि बुद्धिवानों के मननिकौं नाहीं संतोष उपजावै है। इहां अज्ञपनाही भासै है सो यहु अज्ञानता खेदकारी है।

भावार्थ—जो आका हित चाहे सो ता जैसें वाका भला होय तैसें ही करे। तातैं इस जीव के बुरा होनें का कारण जो दोष ताकै छुडाने के अर्थि सत्पुरुष दोष भी प्रगट करै है। जो ए दोष न प्रगट करै तौ अज्ञानी जीव अपना दोषकौं कैसें जानै। बहुरि बिना जानें दोषकौं कैसें छोडै। बहुरि जो जिसतैं अपना लोभादिक प्रयोजन साध्या चाहे। सो जैसें वाकौं प्रसन्न होता जानैं तैसें ही करै। तातैं इस जीव के पापनिकौं भी धीठपना तै गुण ठहराय

निपजै तिनिकाकौ ग्रहण करना अर मिथ्यात्वादिक दोष जिनकरि निपजै तिनिका त्यजन करना। ऐसैं गुण दोष की अपेक्षाकरि जिनकै ग्रहण त्याग पाईए है, अर अन्य कोई विषय कषायादिक का प्रयोजन जहां न पाईए ते जीव उत्कृष्ट ज्ञानी जानने। जातैं ए अपना हित साधै है। बहुरि हित साधना सोई बुद्धिवानों के करने योग्य कार्य है।

आगैं अन्यथा ग्रहण त्याग विषैं दूषण करै है।

॥ श्लोक ॥

हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीर्दुःखायसे भृशं।
विपर्यये तयोरेधि त्वं सुखायिष्यसे सुधी ॥१४६॥

अर्थ—हे जीव तू हितकौं छोरि अहित विषैं तिष्ठिकरि दुर्बुद्धी होवसंता आपकैं अत्यन्त दुःखकौं करै है। तातैं तू सुबुद्धी होवसंता तिनका उलटा भाव जो अहित को छोरि हित विषैं तिष्ठना तिस विषैं वृद्धिकौं प्राप्त होहु। ऐसैं तू आपकै सुखकौं प्राप्त करैगा।

भावार्थ—हे जीव तैं सम्यग्दर्शनादिक हितकारी गुणरूप कार्य ताका तो त्याग कीया अर मिथ्यादर्शनादिक अहितकारी दोष रूप कार्य ताका ग्रहण कीया जो ऐसे त्याग ग्रहण तैं तू अनादितैं दुखी भया है। सो तू ही अपनी अवस्थाकौं विचारि देखि तैं कैसैं परिणम्यां अर ताका फल मोह कहा भया। बहुरि जे तू तिनकैं उलटा परिणामी गुण का ग्रहण करै, दोषका तजै तौ अवश्य सुखी होइ। जातैं कारण उलटा भए कार्य भी उलटा होइ ही होइ। जैसैं

तल छोरि अग्नि का सेवन कीए आताप हो है। बहुरि जे अग्नि छोरि जल का सेवन करै तौ शीतलता होय ही होय। तैसैं इहां भी जिस अनादि परिणमन तैं दुखी भया है तिसतैं उल्टा परिणामैं तौ सुखी होय ही होय। सो अनादितैं तौ गुण छोरि दोष सेवन कीया अब तोकौं दोष छोरि गुण का ग्रहण करना योग्य है।

आगैं कारण सहित गुण अर दोष जानें ऐसैं हो है। ऐसा दिखावता संता सूत्र कहै हैं।

॥ शिखरणी छन्द ॥

इमे दोषास्तेषां प्रभवनममीभ्यो नियमितो
गुणाश्चैते तेषामपि भवनमेतेभ्य इति यः।
त्यजंस्त्याज्यान् हेतून् झटिति हिततहेतून् प्रतिभजन्
स विद्वान् सद्वृत्तः स हि स हि निधिः सौख्ययशसोः।१४७।

अर्थ—ये दोष हैं अर तिनि दोषनिका इनि कारणनितैं उप-जना हो है। ऐसैं निश्चय करन हारा जो जीव त्यजने योग्य जे कारण तिनकौं तो शीघ्र छोरता है। अर हित के कारण तिनकौं सेवता है सोई जीव ज्ञानी है। अर सोई सम्यक्चारित्री है। अर सोई सुख अर यश का निधान है।

भावार्थ—विवेकी पुरुष है सो पहलै तौ दोषकौं अर गुणकौं पहचानैं। तहाँ विचार कीए मिथ्यात्वादिक तौ दोष भासै। जातैं एई आत्माकौं दुखी करै है। बहुरि सम्यक्त्वादिक गुण भासै जातैं ए आत्माकौं सुखी करै हैं। बहुरि दोषके अर गुण के जे कारण हैं

निपजै तिनिकाकी ग्रहण करना, अर मिथ्यात्वादिक दोष जिनकरि निपजै तिनिका त्यजन करना। ऐसैं गुण दोष की अपेक्षाविर्षे जिनकै ग्रहण त्याग पाईए है, अर अन्य कांई विषय कषायादिक का प्रयोजन जहा न पाईए ते जीव उत्कृष्ट ज्ञानी जानने। तातैं ए अपना हित साधै है। बहुरि हित साधना सोई बुद्धिमानौं के करनें योग्य कार्य है।

आगैं अन्यथा ग्रहण त्याग विर्षे दूषण कहै है।

॥ श्लोक ॥

हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीर्दुःखायसे भृशं।
विपर्यये तयोरोपि त्वं सुखायिष्यसे सुधीः ॥१४६।

अर्थ—हे जीव तू हितकौं छांरि अहित विर्षे तिष्ठिकरि दुर्बुद्धी होवसंता आपकैं अत्यंत दुःखकौं करै है। तातैं तू सुबुद्धी होवसंता तिनका उलटा भाव जो अहित को छोरि हित विर्षे तिष्ठना तिस विर्षे बुद्धिकौं प्राप्त होहु। ऐसैं तू आपकै सुखकौं प्राप्त करैगा।

भावार्थ—हे जीव तैं सम्यग्दर्शनादिक हितकारी गुणरूप कार्य ताका तौ त्यागकीया, अर मिथ्यादर्शनादिक अहितकारी दोष रूप अकार्य ताका ग्रहण कीया जो ऐसे त्याग ग्रहण तैं तू अनादितैं दुखी भया है। सो तू ही अपना अवस्थाकौं विचारि देखि मैं कैसैं परिणम्यां अर ताका फल मोकू कहा भया। बहुरि जो तू तिसतैं उलटा परिणामि गुण का ग्रहण करै दोषकौं तजै तौ अत्यन्त सुखी होइ। जातैं कारण उलटा भए कार्य भी उलटा होइ ही होइ। जैसैं

होनां सो तौ सर्व प्राणीनिविषैं समान पाइए है। वहुरि बुद्धिवान सोई है जो सुगति कौं कारणभूत वृद्धि नाश जाकै पाइए ऐसा होइ। बहुरि इस जीवतैं अन्य जीव है सो तिसतैं उल्टा दुर्गति का साधन वृद्धि नाश होनें तैं निर्बुद्धि है। ऐसैं श्री गुरुनैं कह्या है।

भावार्थ—लोक विषैं धनादिक की वृद्धि भए अर दरिद्रादिक का नाश भये जीवकौं बुद्धिवान मानिये। वहुरि दरिद्रादिक की वृद्धि भए अर धनादिक का नाश भए निर्बुद्धी मानिये है। सो यहु तौ मिथ्या है। जातैं ऐसा वृद्धिनाश विषैं तौ जीव का किछू कर्तव्य नांही। जैसैं पूर्वोपार्जित पुन्यपाप का उदय हो है तैसा कार्य स्वयमेव सर्व जीवनिकै हो है। सो प्रत्यक्षतौ कोऊ घना बुद्धिवान् होय सो भी दरिद्री देखिये है। कोऊ सर्व प्रकार मूर्ख होय सो भी धनवान देखिये है। वहुरि एक ही जीव जिस बुद्धि तैं घनां बुद्धिवान भया होइ सोई जीव तिस ही बुद्धितैं निर्धन होता देखिये है। तातैं ऐसे वृद्धिनाश विषैं तौ बुद्धि का किछू प्रयोजन है नाही। इहाँ पुरुषार्थ मानना निरर्थक है। वहुरि सम्यक्त्वादिक धर्मरूप भावनि की वृद्धि भए अर मिथ्यात्वादिक अधर्मरूप भावनिका नाश भए बुद्धिवान् मानिए। अर मिथ्यात्वादिक की वृद्धिभए सम्यक्त्वादिक का नाश भए निर्बुद्धि मानिये, सो यहु सत्य है। जातैं ऐसा वृद्धि नाश विषैं जीव का कर्तव्य है। जैसा अपनी बुद्धि का विचार होइ तैसा कार्य्य जीव का कीया हुवा जीव कै हो है। सो प्रत्यक्ष कोऊ तौ तिर्यंचादिक भी अपनी बुद्धितैं धर्म साधनकरि स्वर्गादिक कौं प्राप्त हो है। कोऊ राजादिक भी निर्बुद्धि होइ अधर्म साधन करि

तिनिकौं पहचानें, तहाँ विचार कीए कुदेव कुगुरु कुशास्त्रादिक वा विषयादिक सामग्री तौ दोषके कारण भासै। अर सुदेव सुगुरु सुशास्त्रादिक वा व्रत समयादिक गुण के कारण भासै। ऐसें निश्चय भए त्यजने योग्य जे दोषके कारण तिनिकौं त्यजै अर ग्रहण योग्य जे गुण के कारण तिनिकौं गहै। तहाँ दोष गुण अर तिनिके कारण तिनिका निश्चय करि जानना भया सो तौ सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान है। अर सर्व दोष का कारण छोडि गुण का ग्रहण करनां सो सम्यक्चारित्र है। ऐसें ए तीनों मिले मोक्ष मार्ग भया, ताका फल मोक्ष हो है। तहां अनन्तसुखकौं अनुभवै है, अर ताका सर्व प्रकार महिमा हो है। तातैं पहलैं कारण सहित गुण दोषकौं जानना योग्य है।

आगैं विवेकी जीव करि हित की वृद्धि अहित का नाश ए दोष कारण करने योग्य हैं। आगैं तिस विर्षे अन्य धनादिक विर्षे जे वृद्धि नाश है तिनिका तौ सर्वप्राणीनिकै समानपना पाईए है। ऐसा कहै है।

॥ वसन्ततिलका छन्द ॥

साधारणौ सकलजन्तुषु वृद्धिनाशौ
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकर्मयोगात्।
धीमान् स यः सुगतिसाधनवृद्धिनाश—
स्तद्व्यत्ययाद्विगतधीरपरोऽभ्यधायि ॥१५८॥

अर्थ—अन्य पूर्वजन्मनि विर्षे निपजाए ऐसे पुन्य पाप कर्म तिनिके उदय रूप संयोगतैं शरीर धनादिक का बधना वा नाश

होनां सो तौ सर्व प्राणीनिविषैं समान पाइए है। वहुरि वुद्धिवान सोई है जो सुगति कौं कारणभूत वृद्धि नाश जाकै पाइए ऐसा होइ। वहुरि इस जीवतैं अन्य जीव है सो तिसतैं उल्टा दुर्गति का साघन वृद्धि नाश होनें तैं निवुंद्धि है। ऐसैं श्री गुरुनैं कह्या है।

भावार्थ—लोक विषैं धनादिक की वृद्धि भए अर दरिद्रादिक का नाश भये जीवकौं वुद्धिवान मानिये। वहुरि दरिद्रादिक की वृद्धि भए अर धनादिक का नाश भए निवुंद्धी मानिये है। सो यहु तौ मिथ्या है। जातैं ऐसा वृद्धिनाश विषैं तौ जीव का किछू कर्तव्य नाही। जैसै पूर्वोपार्जित पुन्यपाप का उदय हो है तैसा कार्य स्वयं मेव सर्व जीवनिकै हो है। सो प्रत्यक्षतौ कोऊ घना वुद्धिवान् होय सो भी दरिद्री देखिये है। कोऊ सर्व प्रकार मूर्ख होय, सो भी धनवान देखिये है। वहुरि एक ही जीव जिस वुद्धि तैं घना वुद्धिवान भया होइ सोई जीव तिस ही वुद्धितैं निर्धन होता देखिये है। तातैं ऐसे वृद्धिनाश विषैं तौ वुद्धि का किछू प्रयोजन है नाही। इहाँ पुरुषार्थ मानना निरर्थक है। वहुरि सम्यक्त्वादिक धर्मरूप भावनि की वृद्धि भए अर मिथ्यात्वादिक अधर्मरूप भावनिका नाश भए वुद्धिवान् मानिए। अर मिथ्यात्वादिक की वृद्धिभए सम्यक्त्वादिक का नाश भए निवुंद्धि मानिये, सो यहु सत्य है। जातैं ऐसा वृद्धि नाश विषैं जीव का कर्तव्य है। जैसा अपनी वुद्धि का विचार होइ तैसा कार्य्य जीव का कीया हुवा जीव कै हो है। सो प्रत्यक्ष कोऊ तौ तिर्यंचादिक भी अपनी वुद्धितैं धर्म साधनकरि स्वर्गादिक कौं प्राप्त हो है। कोऊ राजादिक भी निवुंद्धि होइ अधर्म साधन करि

नरकादिकको प्राप्त हो है। तातैं ऐसे धन का पुष्टिनाश विर्षे ही बुद्धि का प्रयोजन जानि यहां ही पुरुषार्थ करनां योग्य है।

आगैं जे सुगति के साधन धर्मरूप मार्ग तिनकी वृद्धि के कारण ऐसे जीव हैं ते थोरे हैं। ऐसैं विलापता सहित सूत्र कहे हैं।

॥ शिखरणीछंद ॥

कली दण्डो नीतिः स च नृपतिभिस्ते नृपतयो
नयन्त्यर्थार्थं तं न च धनमदोस्त्याश्रमवताम् ।
नतानामाचार्या न हि नतरता साधुचरिता—
स्तपस्थेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः ॥१४६॥

अर्थ—कलि काल विर्षे नीति तौ दण्ड है। दण्ड बीर्चे न्याय मार्ग चालै। बहुरि सो दंड राजानि करि हो है। राजा बिनां और देनें कौं समर्थ नांही। बहुरि ते राजा धनके अर्थि न्याय करे है। जातैं धन आवनें का प्रयोजन न सधै ऐसा न्याय राजा करता नांही। बहुरि यह धन है सो आश्रमी जे मुनि तिनकै पाइए नांही तिनिका भेष ही धनादिक रहित है। ऐसैं तौ इनि भ्रष्ट भए मुनिनिकों राजा न्यायमार्ग विर्षे चलावते नांही। बहुरि आचार्य हैं ते आपकौं विनय नमस्कारादिक करावनैं के लोभी भए। ते नम्रीभूत भए जे मुनि तिनकौं नांहि न्याय विर्षे प्रवर्त्तावै हैं। ऐसैं इस काल विर्षे तपस्वी जे मुनि तिनि विर्षे सुमि का भला आचरन जिनिकै पाईए ऐसे मुनि ते जैसैं शोभायमान बहुत रत्न थोरे पाईए तैसैं थोरे विरले पाइए हैं।

भावार्थ--इस पचमकाल विषैं जीव जड वक्र उपजैं हैं, ते दड का भय विना न्याय विषैं प्रवर्त्तैं नाही। वहुरि दड देने वाले लोक-पद्धति विषैं तो राजा है, अर धर्म पद्धति विषैं आचार्य है। तहा राजा तौ धन का कहा प्रयोजन सधै तहा न्यायकरै, मुनिनिकै धन नांही। जैसैं प्रवर्त्तैं तैसैं प्रवर्तो। वहुरि आचार्य हैं ते विनय के लोभी भए सो दड दे नांही। ऐसैं भय विना मुनि स्वछद भए हैं। कोई विरले मुनि यथार्थ धर्म के साधनहारे रहे हैं।

आगैं जे मुनि आचार्यनिकौ नाही नमैं हैं, उनकी आज्ञा मे नांही रहै हैं, अर स्वच्छन्द प्रवर्तैं हैं तिनि सहित सगति करनी योग्य नाही।

एते ते मुनिमानिनः कवलिताः कान्ताकटाक्षेक्षणै—
रङ्गालग्नशरावसन्नहरिणप्रख्या भ्रमन्त्याकुलाः।
संधतुं विषयाटवीस्थलतले स्वान् क्वाप्यहो न क्षमा
मा व्राजीन्मरुदाहताभ्रचपलैः संसर्गमेभिर्भवान् ॥१५०॥

अर्थ—ते ये प्रत्यक्षमुनि नांही, अर आपकौ मुनि मानैं ते स्त्रीनिके जु कटाक्ष लीए अवलोकन तिनिकरि ग्रासी भूत भए उनकरि ग्रहे हुए अग विषै लागै है वाण तिनिकरि पीडित जे हिरण तिनकै सदृश व्याकुल होत सते भ्रमण करै हैं। वहुरि विषय रूपी वन का जो स्थल भाग ता विषैं कहीं आपनिकौं स्थिर राखनेकौं समर्थ न हो है। सो पवन करि खडित कीए वादले जैसैं चपल होय तैसैं चचल जे ए भ्रष्ट मुनि तिनि सहित हे भव्य तू सगतिकों भी मति प्राप्त होहु।

नरकादिककौं प्राप्त हो है। तातैं ऐसे धन का बुद्धिनाश विर्षे ही बुद्धि का प्रयोजन जानि इहां ही पुरुषार्थ करना योग्य है।

आगैं जे सुगति के साधन धर्मरूप भाव तिनकी बुद्धि के कारण हारे क्षीण हैं ते थोरे हैं। ऐसैं दिखावता संता सूत्र कहै हैं।

॥ शिखरणीछंद ॥

कलौ दण्डो नीतिः स च नृपतिभिस्ते नृपतयो
नयन्त्यर्थार्थं तं न च धनमदोऽस्त्याश्रमवताम्।
नतानामाचार्या न हि नतरताः साधुचरिता—
स्तपस्थेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः ॥१४८॥

अर्थ—कलि काल विर्षे नीति तो दंड है। दंड दीयें न्याय मार्ग चालै। बहुरि सो दंड राजानि करि हो है। राजा बिना और देनें कौं समर्थ नांही। बहुरि ते राजा धनके अर्थि न्याय करे है। जामैं धन आवनें का प्रयोजन न सधे ऐसा न्याय राजा करते नांही। बहुरि वह धन है सो आश्रमी जे मुनि तिनकै पाइए नांही तिनिका भेष ही धनादिक रहित है। ऐसैं तौ मुनि भ्रष्ट भए मुनिनिकौं राजा न्यायमार्ग विर्षे चलावते नांही। बहुरि आचार्य हैं ते आपकौं विनय नमस्कारादिक करावनें के लोभी भए। ते नम्रीभूत भए जे मुनि तिनकौं नांही न्याय विर्षे प्रवर्तावे हैं। ऐसैं इस काल विर्षे तपस्वी जे मुनि तिनि विर्षे मुनि का भला आचरन जिनिकै पाईए ऐसे मुनि ते जैसैं श्रीमान अमोल उत्कृष्ट रत्न थोरे पाईए तैसैं थोर विरले पाइए है।

अर्थ —पाया है आगम का अर्थ जिहि ऐसे जीव कौ सवोधै है। हे प्राप्तागमार्थ तेरै गुफा तौ मदिर है। अर दिशानिकौ तू पहरै है। आकाश असवारी है, तपकी वधवारी सो इष्ट भोजन है। गुण हैंते स्त्री हैं। ऐसैं नाही पाइये है काहू पासि जाचने योग्य वृत्तिजाकी ऐसा तू भया है। अव तू वृथा ही याचनां प्राप्ति हो है। तोकौं दीन होना योग्य नाही।

भावार्थ—लोक विषैं इतनी वस्तु की चाहि भएं याचनां करिये है। प्रथमतौं धनकौं जाचै, सो तैं आगम का अर्थ सो ही अटूट सर्व मनोरथ का साधन हारा धन पाया। वहुरि मन्दिरकौं जाचै सो गुफा आदि स्वयमेव वनिरहे तेरै मन्दिर पाइए हैं। वहुरि वस्त्रकौं जाचैं सो तू दिशा रूपी वस्त्रकौं पहरै है, दिगम्वर भया है। वहुरि असवारी जाचै सो आकाशरूपी असवारी तेरै पाइए है। जहा इच्छा होय तहा गमनकरि। वहुरि भोजन कौं जाचै सो तपका वधनां सोई तेरै तृप्ति का उपजावनहारा इष्ट भोजन है। वहुरि स्त्री को जाचै सो क्षमा आदि गुण तेई तोकूं रमावनहारी स्त्री है। ऐसै तेरै सामग्री पाइए है सो अव तोकौं कहा चाहिए तू याचना करै। तेरी तौ दीनता रहित सर्वोत्कृष्ट वृत्ति भई है यातैं तू याचन रहित तिष्ठि, ऐसी शिक्षा तोकौं दई है।

आगैं जो याचना करै सो छोटा है, अर न करै सो वड़ा है। ऐसैं दिखावता सूत्र कहै है।

॥ श्लोक ॥

परमाणोः परं नाल्पं नभसो न परं महत्।
इति ब्रुवन् किमद्राक्षीन्नेमौ दीनाभिमानिनौ ॥१५२॥

भावार्थ—जैसैं हिरण के अंग विषैं बाण लाग्या होइ सो वह उसकी पीडातैं व्याकुल हुवा फिरै कहीं वन भूमिका विषैं स्थिर रहने कौं समर्थ न हाइ। तैसैं ए भ्रष्ट मुनि मानौं तिनिकै अंतरग विषैं स्त्रीनि का कटाक्ष रूप अवलोकन सोई कामबाण लागा है सो ए उसकी पीडातैं व्याकुल हुये भ्रमरूप होय रहे हैं। कहीं विषयनि विषैं मन लगावने कौं समर्थ न हो है। काम की तीव्रता करि धर्म साधन करना तौ दूरि ही रहौ परंतु देखना सू घना सुनना इत्यादि विषयनि विषैं भी मनकौं स्थिर नांही करि सकै है। सो जैसैं पवन करि विघटाए हुये बादले चंचल हो हैं, तैसैं विकार भावकरि भ्रष्ट कोप हुए ए भ्रष्ट मुनि चंचल हो हैं। सो उनका तौ होनहार ऐसा ही, परंतु हे भव्य ते किछू धर्मबुद्धि है तातैं तोकू सीख देवे हैं ऐसे भ्रष्टनि की संगति तू मति करै। जो संगति करैगा तौ तू भी उनका साथी होय दुर्गति कौं प्राप्त होगा। इहां भाव यहु जो भ्रष्ट मुनि संगति योग्य भी नांही है।

आगैं इन सहित संगतिकी न प्राप्त होता जो तू सो ऐसी सामग्री पाइ याचनां रहित हुवा तिष्ठि! ऐसी सीख देता सूत्र कहै हैं।

॥ वसंततिलका छंद ॥

गेहं गुहा परिदधासि दिशो विहाय
संयानमिष्टमशनं तपसोभिवृद्धिः।
प्राप्तागमार्थ तव सन्ती गुणाः कलत्र—
मप्रार्थ्यवृत्तिरसि यासि वृथैव याच्ञाम् ॥१५१॥

आगैं पूछै है जो याचक कौं गौरव कहा गयो जाकरि तिस कर्कै लघुपनौ होय, ऐसैं पूछैं उत्तर कहै हैं ।

याचितुर्गौरवं दातुर्मन्ये संक्रान्तमन्यथा ।
तदवस्थौ कथं स्यातामेतौ गुरुलघू तदा ॥१५३॥

अर्थ—मैं ऐसैं मानौं हौं जो याचक का गौरव है सो दातार पैं सक्रमण रूप भया । जो ऐसैं न होइ अन्यथा न होइ तौ तिस याचना के काल विषैं याचना रूप अर देने रूप है अवस्था जिनकी मैं ए दोऊ बड़ा अर छोटा कैसैं हो है ।

भावार्थ—उत्प्रेक्षा अलंकार करि आचार्य कहै हैं:—हमकौं ऐसा भासै है जो पहलैं तौ दोऊ पुरुष समान थे । बहुरि जिस समय याचक याचना करै अर दातार देवै तिस समय याचक का बडापना था सो निकसि दातार विषैं प्राप्त होइ गया । तातैं तत्काल याचकतौ हलका हो है । अर दातार महत हो है । जो ऐसैं न हो है तौ तिस समय याचक तौ सकोचादिक रूप करि हीन कैसैं भासै है, अर दातार प्रफुल्लितादि रूप करि महत कैसैं भासै है । तातैं दीनपनां निषिद्ध है । कोऊ कहै कि ऐसैं है तो मुनि भी तौ दान लेवै है, उनकौं भी हीन कहौ । ताका उत्तर । मुनि है ते याचनाकरि दीन होइ दान नाही लेवै है । जैसैं कोई राजानि की भेट करै तैसैं भक्त पुरुष विनय स्यौं दान देवै है । तहा भी लोभ तैं आशक्त होइ ग्रहण नाहीं करै है । तातैं यह हीन नाही होवै है । लोभतैं दीनता करि लियो चाहै सो ही पुरुष हीनता होइ है । आगैं लेनें वाले का अर देनें वाला का गति लावता सूत्र कहै हैं ।

कथ्य—परमाणुतैं अन्य कोई छोटा नांही अर आकाशतैं अन्य कोई बड़ा नांही। ऐसैं कहता था पुरुष है सो इनि दीन और अभिमानीनिकौं कहा न देखता भया।

भावार्थ—परमाणु तैं छोटा नांही आकाशतैं बड़ा नांही, ऐसैं कोई कहै है तहां जानिए है यानैं दीन अभिमानीनिकौं देखे नांही। जो दीनको देखता तौ परमाणुतैं भी छोटा दीनकौं कहता अर अभिमानीकौं देखता तौ आकाश तैं भी बड़ा अभिमानीकौं कहता। भाव इहां यहु है —जो याचना करने वाला दीन पुरुष है सो धर्म का मानादिक घटने तैं सबनितैं छोटा हो है। अर याचना करै ऐसा अभिमानी है सो धर्म या मानादिक बधनेतैं सबनितैं बड़ा है। इहां प्रश्न—जो दीनकै मानादिक घटै तहां धर्म कैसे नांही। अर अभिमानीके मानादिक बधै तहां धर्म कैसैं होय? कषायनिकै अर धर्मकै तो प्रतिपक्षीपनो पाइए है। ताका समाधानः कोई कषाय की तीव्रता करि कोई कषाय घटै तहां धर्म नांही। सो दीनकै लोभ कषाय की तीव्रताकरि मानादिक घटै है। तातैं याकै धर्म नांही पाप ही उपजै है। बहुरि सर्व कषाय घटने तै भ्रम करि कोई अवस्था कषायी की सी भासै तहां धर्म ही है। सो इहां मान कषाय वाले का नाम अभिमानी नांही है। लोभतैं काहूकौं जाचै नांही ताका नाम अभिमानी है। सो याकै सर्व कषायमंद होने तैं लोभ करि पापी जीवनिकौं नम्रीभूत न हो है। तातैं भ्रम करि मानीसा भासै परंतु मानी है नांहीं। तातैं याकै धर्म हो है। ऐसे जानि दीनता न करनी।

आगैं पूछै है जो याचक कौं गौरव कहा गयो जाकरि तिस जाचककैं लघुपनौ होय, ऐसैं पूछै उत्तर कहै है।

याचितुर्गौरवं दातुर्मन्ये संक्रान्तमन्यथा।
तदवस्थौ कथं स्यातामेतौ गुरुलघू तदा ॥१५३॥

अर्थ—मैं ऐसैं मानौ हौं जो याचक का गौरव है सो दातर विषैं संक्रमण रूप भया। जो ऐसैं न होइ अन्यथा न होइ तौ तिस याचना के काल विषैं याचना रूप अर देने रूप है अवस्था जिनकी ऐसैं ए दोऊ बड़ा अर छोटा कैसै हो है।

भावार्थ—उत्प्रेक्षा अलंकार करि आचार्य कहै हैं.—हमकौं ऐसा भासै है जो पहलैं तौ दोऊ पुरुष समान थे। बहुरि जिस समय याचक याचना करै अर दातार देवै तिस समय याचक का बड़ापना था सो निकसि दातार विषैं प्राप्त होइ गया। तातैं तत्काल याचकतौ हलका हो है। अर दातार महत हो है। जो ऐसैं न हो है तौ तिस समय याचक तौ संकोचादिक रूप करि हीन कैसैं भासै है, अर दातार प्रफुल्लितादि रूप करि महत कैसैं भासै है। तातैं दीनपनां निषिद्ध है। कोऊ कहै कि ऐसैं है तो मुनि भी तौ दान लेवै है, उनकौं भी हीन कहौ। ताका उत्तर। मुनि है ते याचनाकरि दीन होइ दान नांही लेवै है। जैसैं कोई राजानि की भेट करै तैसैं भक्त पुरुष विनय स्यौं दान देवै है। तहा भी लोभ तैं आशक्ते होइ ग्रहण नाहीं करै है। तातैं यह हीन नाही होवै है। लोभतैं दीनता करि लियो चाहै सो ही पुरुष हीनता कौं प्राप्त होइ है। आगैं लेनें वाले का अर देनें वाला का गति विशेष दिखावता सूत्र कहै हैं।

अर्थ—परमाणुतैं अन्य कोई छोटा नांही अर आकाशतैं अन्य कोई बड़ा नांही। ऐसैं कहता जो पुरुष है सो इनि दीन और अभिमानीनिकौं कहा न देखता भया।

भावार्थ—परमाणु तैं छोटा नांही, आकाशतैं बड़ा नांही, ऐसैं कोई कहै है तहां कहिए है यातैं दीन अभिमानीनिकौं देखे नांही। जो दीनकौं देखता तौ परमाणुतैं भी छोटा दीनकौं कहता अर अभिमानीकौं देखता तौ आकाश तैं भी बड़ा अभिमानीकौं कहता। भाव इहां यहु है—जो याचना करने वाला दीन पुरुष है सो धर्म वा मानादिक घटने तैं सबनितैं छोटा हो है। अर याचना करै ऐसा अभिमानी है सो धर्म वा मानादिक बधनेतैं सबनितैं बड़ा है। इहां प्रश्न—जो दीनकै मानादिक घटै तहां धर्म कैसे नांही। अर अभिमानीकै मानादिक बधै तहां धर्म कैसैं होय? कषायनिकै अर धर्मकै तौ प्रतिपक्षीपनौ पाइए है। ताका समाधान—कोई कषाय की तीव्रता करि कोई कषाय घटै तहां धर्म नांही। सो दीनकै लोभ कषाय की तीव्रताकरि मानादिक घटै है। तातैं याकै धर्म नांही पाप ही उपजै है। बहुरि सर्व कषाय घटने तै धर्म करि कोई अवस्था कषायी की सी भासै तहां धर्म ही है। सो इहां मान कषाय वाले का नाम अभिमानी नांही है। लोभतैं काहूकौं जाचै नांही ताका नाम अभिमानी है। सो याकै सर्व कषायमंद होने तैं लोभ करि पापी जीवनिकौं नमीभूत न हो है। तातैं धर्म करि मानीसा भासै परंतु मानी है नांही। तातैं याकै धर्म ही है। ऐसैं

आगैं पूछै है जो याचक कौं गौरव कहा गयो जाकरि तिस जाचककै लघुपनौ होय, ऐसैं पूछैं उत्तर कहै हैं।

याचितुर्गौरवं दातुर्मन्ये संक्रान्तमन्यथा।
तदवस्थौ कथं स्यातामेतौ गुरुलघू तदा ॥१५३॥

अर्थ—मैं ऐसैं मानौ हौं जो याचक का गौरव है सो दातार विषैं सक्रमण रूप भया। जो ऐसैं न होइ अन्यथा न होइ तौ तिस याचना के काल विषैं याचना रूप अर देने रूप है अवस्था जिनकी ऐसैं ए दोऊ बडा अर छोटा कैसे हो है।

भावार्थ—उत्प्रेक्षा अलंकार करि आचार्य कहै हैं:—हमकौं ऐसा भासै है जो पहलैं तौ दोऊ पुरुष समान थे। बहुरि जिस समय याचक याचना करै अर दातार देवै तिस समय याचक का बड़ापना था सो निकसि दातार विषैं प्राप्त होइ गया। तातैं तत्काल याचकतौ हलका हो है। अर दातार महत हो है। जो ऐसैं न हो है तौ तिस समय याचक तो सकोचादिक रूप करि हीन कैसैं भासै है, अर दातार प्रफुल्लितादि रूप करि महत कैसैं भासै है। तातैं दीनपना निषिद्ध है। कोऊ कहै कि ऐसैं है तो मुनि भी तौ दान लेवै है, उनकौं भी हीन कहौ। ताका उत्तर। मुनि है ते याचनाकरि दीन होइ दान नांही लेवै है। जैसैं कोई राजानि की भेट करै तैसैं भक्त पुरुष विनय स्यौं दान देवै है। तहा भी लोभ तैं आशक्त होइ ग्रहण नांहीं करै है। तातैं यह हीन नाही होवै है। लोभतैं दीनता करि लियो चाहै सो ही पुरुष हीनता कौ प्राप्त होइ है। आगैं लेनें वाले का अर देनें वाला का गति विशेष दिखावता सूत्र कहै हैं।

अधो जिघृक्षवो यान्ति यान्त्यूर्ध्वमजिघृक्षव ।
इति स्पष्टं वदन्तौ वा नामोन्नामौ तुलान्तयोः ॥१५४॥

अर्थ—जिनकै ग्रहण करने की इच्छा पाइए है ऐसे जीव हैं ते अधोगति कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि जिनकै ग्रहण करने की इच्छा नांही ऐसे जीव हैं ते ऊर्ध्वगति कौं प्राप्त हो हैं। सो ऐसैं —ताखडी के दोय पालडे विर्षिका नीचा होना ऊंचा होना ते मानौं स्पष्ट प्रगटपने कहे है।

भावार्थ—ताखडा के दोय पालडे समान हैं, तहां जो अन्य वस्तु का ग्रहण करै सो तौ नीचा होइ जाय, अर न ग्रहण करैं सो ऊंचा हो जाय। ए ऐसैं हातैं संतें मानू यह बतावै है:—जैसें हमारी दशा हो है। तैसें जो लोभकरि ग्रहण करैगा सो तौ तत्काल भी नीचा होइगा अर आगामैं नरकादिक नीची गतिकौं प्राप्त होगा। अर जो लोभ छोरि ग्रहण न करैगा सो तत्काल भी ऊंचा रहैगा, अर आगामी स्वर्ग मोक्ष ऊंची गतिकौं प्राप्त होगा। ऐसैं युक्ति करि यहु प्रयोजन दिखाया दीनता करि हीनता और दुर्गति हो है। तातैं दीनता न करनी। इहां कोऊ पूछै—दीनता विषै ऐसा पाप कहा है? ताका उत्तर—दीन पुरुष के लोभ कषाय ऐसा तीव्र हो है जाकरि अन्य कषाय भी निर्बल होय जाय लोक लज्जा भी मिटिजाय, धर्मकौं भी गिनै नांही। बहुत कहा, धर्म सर्वोत्कृष्ट है ताकौ भी अपमान कराय अपना प्रयोजन साध्या चाहै। तातैं दीनता महापाप है।

आगे याचकनिका मनोवाछित अर्थ की सिद्धि न करै ऐसा जु ईश्वरपना तिसतैं दरिद्रपना ही भला है। ऐसैं दिखावता सूत्र कहै हैं।

सस्वमाशासते सर्वे न स्वं तत् सर्वतर्पि यत् ।
अर्थिवैमुख्यसंपादिसस्वत्वान्निस्वता वरम् ॥१५५॥

अर्थ—सस्व कहिये धनादिक सहित पुरुष ताकौ सर्व ही जाचैं, अर ऐसा धनादिक होइ नांही, जो सर्वकौं तृप्तिकरै। तातैं अर्थीनिकौं विमुखपने करनहारा ऐसा जु धन सहितपना तिसतैं धन रहितपनां है सो ही भला है।

भावार्थ—कोऊ जानैगा कि धनवान भए अर्थीनि के मनोरथ पूर्ण कीजिये है। तातैं धनवान होना भला है, सो ऐसैं तौ धनवानपना काहू कै न होइ जाकरि सर्व अर्थीनि के मनोरथ पूर्ण करि-सकै? अर किंचित् धनवानपना होइ तब सर्व अर्थी याकी आशा करै तहां सर्व की आशा पूर्ण होइ नाही, तब वे अर्थी यातैं दुखी होइ विमुख हो है। तातैं ऐसे धनवानपना तैं निर्धनपनां ही भला है। निर्धन भए कोऊ याकी आशा न करै। प्रत्यक्ष देखो धनवान के राजा मित्र स्त्री पुत्र याचनादि सर्व लागू होइ। अर निर्धन के कोऊ लागू न होइ। तातैं दातार होने के अर्थि धनवान होने की चाहि करिये है तहां लोभ अर मान का आधिक्य जानना। जो स्वयमेव धनवान होइ अर सर्वत्याग न करि सकै तहां दान देने मैं किछू लोभ का त्याग भया ताकरि तितना ही भला हो है। तातैं

निधिह् धान हना कहा है। बहुरि धान का घ्रुल करि धनवानपना को भला मानना योग्य नाही है।

आगैं जे धनवान कौं जापै हैं तिनिकै आशारूपी खानि कैसी है ऐसा कहै है।

आशाखनिरतीवाभूदगाधा निधिभिश्च या ।
सापि येन समीभूता तत्ते मानधनं धनम् ॥१५६॥

अर्थ—जो आशारूपी खानि निधि नतैं भी अत्यंत अथाह होत भई सो भी आशा खानि जिस करि समान रूप भई सो तेरे धना मानरूपी धन जाननां।

भावार्थ—धनादिक की चाहि ताका नाम आशा है सोई भई खानि सो नव निधाननितैं भी अथाह है। निधाननि विषैं धनादिक काढेतैं निधान टूटे नाही। परंतु कदाचित् उनका तौ थाह आवै, बहुरि इस आशा विषैं जो धनादिक की चाहि पाइए है ताका थाह नाहिं। नव निधान मिलैं भी आशा बढी ही रहै है। तातैं जानिए है, नव निधाननितैं भी याकै भी अथाहपनो पाइए है। बहुरि हे जीव जो तेरे बहु संतोषवृत्ति करि याचनादि रूप नम्रता न पाइए है, ताका नाम इहाँ मान है। सोई भया धन ताका प्रभाव ऐसा बहुत है। जाकरि ऐसो आशा खानि समान भए हो है। पूर्वोक्त मानधन भए आशाकै अधिकता का अभाव हो है। तातैं नव निधाननितैं भी अभिमान रूपी धनकौं बड़ा जानि संतोष रूप होइ धनादिक के अर्थि याचना करनी योग्य नाहीं। तातैं आशा

मेटने कै अर्थि धनादिक जाचिए है सो निधान पाए भी आश न मिटै तो स्तोक धनादिक तैं कैसें यहु मिटैगी। बहुरि संतोषवृत्ति करि धनादिक कै अर्थि नम्रीभूत न होना ऐसे ये परिणामनिकरि आशा का अभाव हो । तातैं ऐसा ही परिणमन उपादेय है।

आगैं सो आशा खान मान धनकरि कैसें समान भई। ऐसे पूछें कहै है।

आशाखनिरगाधेयमधः कृतजगत्त्रया
उत्सर्प्योत्सर्प्य तत्रस्थानहो सद्भिः समीकृता ॥१५७॥

अर्थ—यहु आशारूपी खानि है सो अथाह है। कैसी है यहु नीचे कीये है तीन जगत जानैं ऐसी है। सो तिस आशारूपी खानि विषैं तिष्ठते धनादिक तिनिकौं काढि काढि यह आशारूपी खानि सत्पुरुषनिकरि समान करी है, सो यहु बडा आश्चर्य है।

भावार्थ – पाषाणादिक की कोई खानि होय तामैं स्यौं पाषाणादिक काढि तिस खानि को अन्य भूमि समान करना सो ही कठिन देखिये है। बहुरि यहु आश्चर्य देखो यहु आशारूपी खानि ऐसी तौ अथाह, जानैं तीन लोक नीचे कीए, तीन लोक की संपदा भी आशा विषैं नीची है। अर आशा अधिक बड़ी है। सो ऐसी आशा खानि तामैं तिष्ठते पदार्थ तिनिकौं काढि काढि करि सत्पुरुष याकौं समान करै है। भाव यहु —आशा विषैं अनेक पदार्थनि की चाहि पाइए है। तहां सत्पुरुष हैं ते त्याग भाव करि इसकी चाहि

ग्रैरी, ऐसें सर्व चाहि छोरि तिस आशा कौं मिटाय समान भाव ति वीतराग भाव तिस रूप प्रवर्ते है।

आगे निग्रंथपनें की अवलंबि करि प्रतिज्ञा करी है महाव्रतनिको र्ने ऐसा मुनि है ताके परिग्रह का अंगीकार करने का अभाव तैं, ऐसें पूर्वोक्त प्रकार ही इस आशा का समाम रूप करना योग्य है ऐसैं भिक्षावृत्ता संता विहित इत्यादि दोय काव्य कहै है।

॥ हिरणीछंद ॥

विहितविधिना देहस्थित्यै तपांस्युपबृंहय—
न्नशनमपरैर्भक्त्या दत्तं क्वचित् कियदिच्छति ।
तदपि नितरां लज्जाहेतुः किलास्य महात्मनः
कथमयमहो गृह्णात्यन्यान् परिग्रहदुर्ग्रहान् ॥१५८॥

अर्थ—मुनि है सो तप को बधावता शरीर की स्थिति के अर्थि जो भोजन योग्य विधि करि अन्य गृहस्थों भक्ति करि दियो ताकौं कोई काल विर्षे किंचिन्मात्र चाहै है। सो भी इस महात्मामुनि कैं अतिशय करि लज्जा का कारण है तो अहो लोक है यहु महात्मा अन्य परिग्रह रूपी जो खोटे ग्रह तिनिकौं कैसें ग्रहण करै है ? सर्वथा न ग्रहण करै है।

भावार्थ—कोऊ अज्ञानी मुनि कै भी किंचित् परीग्रह मानैं त कौं समझाइए है। अहो मुनिकै सर्व आशा का अभाव भया है एक आहार मात्र वांछा पाइए है। सो भी शरीर राखन के अर्थि

आहार की चाहै है। जातैं विना आहार मनुष्य शरीर रहै नांही बहुरि शरीर कौं भी तप के अर्थि राखै है। जातैं मनुष्य शरीर विना तप रहै नाही, सो भोजन करि शरीरकौं राखि, तप ही कौं वधावै है। प्रमादी न हो है। बहुरि आचार शास्त्र विषैं जैसैं विधि वर्णन है तैसैं आहार मिलै तो ग्रहै है। आशक्त होय सदोष आहार न ग्रहण करै है। वहुरि अन्य गृहस्थ करि दिया आहार ग्रहै है। आप न वनावै है अदत्त नाहीं ग्रहै है। वहुरि भक्ति करि दिया आहार ग्रहै है। याचना करि दातार कौं दवाय नाही ग्रहै है। बहुरि ऐसा भी आहार नित्य न ग्रहै है। योग्य काल विषैं वा केई उपवासनिकै पारणै ग्रहै है। बहुरि ग्रहै है तब भी सपूर्ण उदर भरि आहार नाही करै है। किछू थोरा भी भोजन करै है। ऐसैं आहार ग्रहै है, तौ भी महत मुनिकौं लज्जा उपजै है, सो हम इतनी चाहि करै हैं सो हमारी हीनता है। बहुरि ऐसे भो कार्य विषैं जाकै लाज होय सो धन वस्त्रादिक दुष्ट परिग्रह जिनका तीव्र राग विना ग्रहण न होइ तिनिका ग्रहण कैसैं करै? सर्वथा न करै।

जिनागम विषैं लगोट मात्र परिग्रह राखैं भी अणुव्रती कह्या। अधिक परीग्रह होतैं मुनिपनौं कैसैं मानिये। तातैं मुनिकै वस्त्रादिक परिग्रह मानना मिथ्या है।

॥ शार्दूलछन्द ॥

दातारो गृहचारिणः किल धनं देयं तदत्राशनं,
गृह्णन्तः स्वशरीरतोपि विरताः सर्वोपकारेच्छया।

लज्जैवैष मनस्विनां ननु पुन कृत्वा कथं तत्फलं
रागद्वेषवशीभवन्ति तदिदं चक्रेश्वरत्वं कले ॥१५६॥

अर्थ—इस मुनि धर्म विर्षे गृहस्थ तौ दातार। अर देने योग्य भोजन मात्र अन्न अर आप सर्व का उपकार की इच्छा करि तिस भोजनकौं ग्रहण करते अपने शरीर तै भी विरक्त ऐसैं जु यह क्रिया हो है सोई यह बुद्धिवानौं न के लाज है। बहुरि यह बड़ा आश्चर्य है जो तिस भोजनकौं मुनि भेष का फल समझि करि राग द्वेष के वशीभूत हो है। सो यह कलिकाल को चक्रवर्ति पनौ है।

भावार्थ—गृहस्थ तौ अपनी भक्तितैं दातार होइ अर मुनि पात्र होइ तहां एक भोजन मात्र ही धन ही का दान है। अन्य धनादिक का दान नाहीं है। बहुरि तिसकौं भी मुनि गृहे है सो अपना वा दातार का वा अन्य जीवनि का जैसैं सर्व प्रकार भला होइ तैसैं गहै है। ऐसैं नाही जो आहार लेइ प्रमादी होइ अपना बुरा करै दातार कौं कषाय उपजाय वाका बुरा करै वा अन्य जीवनिकौं दोष का कारन होइ। औरनिका बुरा करै बहुरि आहार लेने तैं भी अपने शरीर तैं भी विरक्त रहै है। जातैं, है यहु शरीर मोहु इष्ट नांही परतु याकरि तप साधन करना है। तातैं ऐसैं यहु नष्ट न होय तैसैं थोरा नीरस आहार करना। स्वादादिक का लोभतैं आहार नांही करै है। ऐसैं मुनि आहार ग्रहण करै है सो ही मुनि कै लाज उपजावै है। आहार लेने तैं संकोच उपजै है। आपकौ हलका मानै है। बहुरि यहु बड़ा आश्चर्य भया है। इस

कलि काल विषैं आहार कै अर्थि मुनिपनो अंगीकार करै है। इस भपकरि आजीविका की सिद्धि करै है सो हमको ऐसैं भासै है। यहु कलिकाल विषैं चक्रवर्ति पने की महिमा है। जैसैं चक्रवर्ति अपने क्षेत्र के वासी देवादिक तिनि विषैं भी आज्ञा मनावै तैसैं यहु कलिकाल अपनी मर्यादा विषैं उपजे मुनि आदि तिनि विषैं भी विपरीतपनां प्रवर्त्तावै है। इहां कोऊ कहै – जु यहु काल दोष हैं तौ इस काल विषैं ऐसै ही मुनि मानौ। ताका उत्तर —जैसैं कलिकाल विषैं अन्याय प्रवर्त्तै है तौ ताकौं न्याय तो न मानना। यहु जानना जो अन्याय की प्रवृत्तिकाल दोषतैं है। तैसैं कलिकाल विषैं भ्रष्ट भेषधारी प्रवर्त्तै हैं तौ तिनिकौं मुनि तो न माननें, यहु जानना जो ऐसे भेषनिकी प्रवृत्ति काल दोषतै है। बहुरि जैसे कहिये यहु कार्य दुष्ट के उदयतैं भया है। तहां दुष्टवत् उस कार्य को निंदा जाननी। तैसैं जहा कहिये यहु कार्य कलि कालतैं भया तहां कलि कालवत् तिस कार्य की वहुत निंदा कीनी है। ऐसा जानना। तातैं जे मुनि भेपधारि जो भोजनादिक के अर्थी होय रागी द्वेषी हो हैं तिनिकी निंदा करने कै अर्थि इहां कलिकाल का महिमा कह्या है।

आगै राग द्वेष का आधीनपनां कर्मकरि करिये है तींह कर्म हे जीव तेरा कहा किया है सो कहै है।

॥ शार्दूल विक्रीडित छंद ॥

आमृष्टं सहजं तव त्रिजगतीबोधाधिपत्यं तथा
सौख्यं चात्मसमुद्भवं विनिहतं निर्मूलतः कर्मणा

दैन्यात्त्वविहितैस्त्वमिन्द्रियसुखैः संतृप्यसे निस्त्रप
स त्वं यच्छिवरयातनाकदशनैर्यद्रुस्थितिस्तुप्यसि ॥१६०॥

अर्थ—हे जीव जिस कर्म करि तेरा स्वभावभूत दीन जगत का सु ज्ञान ताका स्वामित्वपनां सो नष्ट कीया। बहुरि तैसें ही आत्मस अनित सुख सो मूर्खते नाशकों प्राप्त भया। सो कर्म तौ ऐसें कीया। बहुरि तू निर्लज्ज हुवा दीनपनां तैं तिसकर्म करि निपजाए इन्द्रिय सुख तिनिकरि तृप्त हो है। सो तू कोन जो यातना कहिये उपवासादिक का कष्ट ताहि सहिकरि पीछैं मिलै जो कुत्सित नीरस आहार ताकिरि बांधी है स्थिति आजीविका जानै ऐसा होत सवा संतुष्ट हो है।

भावार्थ—जैसें कोई बड़ा राजा ताकौं कोई वैरी राज-भ्रष्ट करै। बहुरि वह राजा दीन होय उस ही का दिया किंचित् भाजना-दिक ताकरि प्रसन्न होय। तहां तिसकौं निर्लज्ज कहिये धिक्कार दीजिये। तैसें हे जीव तू अनंतज्ञान सुख का स्वामी महंत पदार्थ है। बहुरि ऐसे ज्ञान सुख का नाश करि कर्म वैरीनैं तोकौं भ्रष्ट किया है। बहुरि तू दीन होय तिस कर्म उदयतैं उपज्या किंचित विषय सुख तिनिकरि संतुष्ट हो है सो तू निर्लज्ज है, धिक्कार देने योग्य है। बहुरि जैसें उस राजा की वैरी का दिया भी महा कष्टतैं बुरा भाजनादिक मिलै अर तहां वह राजा सतुष्ट होइ तौ वह बहुत निंद्य है। तैसें हे भ्रष्ट मुनि तेरे कर्म का दीया भी बहुत सुख नांही। पर्नै उपवासादिक कष्ट सहे तब गृहस्थके घर कैसा

तैसा आहार मिले, अर तहां तू अपनी आजीविका की थिरता भई मानि सन्तुष्ट हो है, तातैं तू बहुत निंद्य है। तातैं जैसैं उस राजा कौं अपने वैरी के नाश करने का उपाय करना योग्य है, तैसै तोकू कर्म का नाश ही करना योग्य है। विषयाशक्त होना योग्य नाही।

आगैं जो तेरैं इन्द्रिय सुख का अभिलाष है तो होहू तथापि जहां विशिष्ट ईन्द्रिय विषय है ताकौं दिखावता सूत्र कहै है।

तृष्णा भोगेषु चेद्भिक्षो सहस्वाल्पं स्परेव ते ।
प्रतीक्ष्य पाकं किं पीत्वा पेयं भुक्तिं विनाशयेः ॥१६१॥

अर्थ—हे भिक्षुक मुनि तेरैं जो विषय भोगनि विषैं ही चाहि है तो थोरा सा सहनशील होहु। ते भोग स्वर्ग विषै हैं। रे मूर्ख पचता भोजनकौं देखि अर पीवने योग्य जलादिक ही कौं पीय करि कहा भोजन का नाश करै ऐसैं मति करै।

भावार्थ—जैसैं कोई भूखा मूर्ख पचता भोजन कू प्रत्यक्ष देखि जेतैं भोजन पचै तेत धैर्य न करै, इतने काल भूख न सहै। अर किछू भोजन सबधी जलादिक ही कौं पीय भोजन का नाश करै। तैसैं तू विषयनि का अभिलाषी मूर्ख धर्म साधनतैं थोरा सा ही काल मैं स्वर्ग की प्राप्ति होय तहा विशेष विषय मिलै ताकौ विचार। जे तैं यह मनुष्य का आयु पूर्ण होय स्वर्ग मिलै तेतैं धैर्य न करै, इतने काल चाहिकौं न सहै। अर किछू इहा सदोष भोजनादिक विषय तिनिही कौं सेय करि स्वर्ग सुख का नाश करै है। सो ऐसा

काय सूं क्यों करै है, मति करै। जा भोगनि ही की वांछा है तौ यारे से काल धैर्य राखि, धर्म साधन करि, तोकूं स्वर्ग विषैं बहुत विषय मिलेंगे। यद्यपि विषयाभिलाष योग्य नांही, तथापि इहां भ्रष्ट होता जीवकूं लोभ दिखाय थांभ्या है। ऐसा भाव जानना।

आगैं कर्म करि इन्द्रिय सुख अर जीवितव्य ए दोय कार्य निपजाइए है। बहुरि जे ऐसे मुनि हैं तिनिका कर्म कहा करै, ऐसा दिखावता निर्धनत्वं इत्यादिश्लोक कहै है।

> निर्धनत्वं धनं येषां मृत्युरेव हि जीवितम्।
> किं करोति विधिस्तेषां सतां ज्ञानैकचक्षुषाम् ॥१६२॥

अर्थ—जिनकै निर्धनपनी ही धन अर मरणो सो जीवितव्य है ऐसे जे संत पुरुष, ज्ञान ही है एक नेत्र जिनिकै, तिनिका विधाता कर्म है सो कहा करै, किछू कर सकै नांही।

भावार्थ—जे महामुनि ज्ञान नेत्र करि यथार्थ पदार्थनि कौं अवलोकै हैं तिनिकै धनादिक रहित निर्ग्रन्थपनौं सोई धन है। जैसैं अन्य जीव धनतैं सुखी होय, तैसैं ये मुनि निर्ग्रन्थपनातैं सुखी हैं। बहुरि तिनिकै मरना सोई जीविता है। जैसैं अन्य जीव आयु धरनेतैं सुखी हो हैं तैसैं ए मुनि इन्द्रियादिक प्राण छूटे सुख माने है। ऐसे जे मुनि तिनिका कर्म कहा करै? कर्म का तौ वश इतना ही है। अनिष्ट रूप प्रवर्त्तैं तब निर्धनपनौं होय वा मरण होइ सो इनिकरि तौ मुनि दुखी होइ नांही। तातैं इनका कर्म किछू भी करि सकै नांही।

आगैं ऐसैं है तो विधाता कर्म है, सो कौनकै अपना कार्य का कर्ता हो है, सो कहै है।

जीविताशा धनाशा च येषां तेषां विधिर्विधिः ।
किं करोति विधिस्तेषां येषामाशानिराशता ॥१६३॥

अर्थ—जिनकै जीवने की आशा है अर धन की आशा है तिनिकै विधाता विधाता है। बहुरि जिनकै आशा नष्ट भई तिनका विधाता कहा करै ? किछू न करि सकै।

भावार्थ—इहां विधाता नाम कर्म का है, सो जे अज्ञानी पाया पर्याय रूप जीया चाहै हैं, अर धन चाहै हैं तिनकै कर्म है सो अपना कार्य निपजावने कौं समर्थ होता कर्मपना कौ धारै है। ते जीव कर्मतैं डरै हैं। हमारा मरण मति होहु। हमारे निर्धनपना मति होहु। ऐसैं आशा तैं कर्म उनकौं दुखी करै है। बहुरि जिनकै आशा नाशकौं प्राप्त भई, छता धनादिक को भी छोडि बैठे, अर मरणकै कारणनिकै सन्मुख भए, तिनिका कर्म किछू करि सकै नाही। ए मुनि कर्म तैं डरै नाही, मरण हो है तौ होहू, पर्याय छोडने का भय नाहीं। अर निधनपना कौं निराकुलता का कारण जानि स्वाधीनपने ही धनादिक छोड्या है। ऐसैं आशा छोरी तिनकौं कर्म कैसैं दुखी करै। मोह हीन भए कर्म का उदय होता हीन होता सदृश है। आत्मा कौं दुखी करने रूप कार्य का कर्ता न हो है।

भावै कोई तौ बड़ा राज्य छांडि भारा का नाशकौं अवलंबै है कोई तप छोरि राज्य कौं अंगीकार करै है, तिनका फल दृष्यपना संता पुरा इत्यादि दोय श्लोक कहै हैं।

परां कोटिं समारूढौ द्वावेव स्तुतिनिन्दयो ।
यस्त्यजेत्तपसे चक्रं यस्तपो विषयाशया ॥१६४॥

अर्थ—स्तुति अर निंदा इनिका सर्वोत्कृष्ट भाग कौ ए दोय ही जीव प्राप्त हो हैं। एक तौ जो तपके अर्थि चक्रकौं छांडै, अर एक जो विषय की आशाकरि तपकौं छांडै।

भावार्थ—इस लोक विषैं कोई स्तुति योग्य, केई निंदा योग्य जीव हैं तिन सबनि विषैं जो चक्रवर्ति पदकौ छोरि मुनिपद धारै हैं सो तो सर्वोत्कृष्टपनैं स्तुति करने योग्य हैं। ऐसी प्राप्त भई चक्रवर्तिपना की संपदाकौं छारि कैसा मुनि धर्म रूप दुर्द्धर अनुष्ठान आचरै है। तातैं याका महिमा उत्कृष्टपने स्तवने योग्य है। बहुरि जो मूढ़ा हूवा मुनि पदकौं छोरि विषय वांछातैं राज्य पदकौं अंगीकार करै हैं सो सर्वोत्कृष्टपनैं निंदा करने योग्य हैं छोटी हू प्रतिज्ञा भंग कीयें निंदा होय। यातैं तो मुनिपद अंगीकार करि ताका भंग किया है। तातैं याको भ्रष्टपनौं उत्कृष्टपनैं निंदा योग्य है। इहां कोई कहै कि निंदा तौ करनी योग्य नांही। ताका उत्तर—ईर्षातैं द्वेष बुद्धिकरि निन्दा करनी योग्य नांही है। बहुरि पापाचरण को प्रगटता करि ताकौं छुरावनावनैं के अर्थि निंदा करने मैं दोष नांही। ऐसैं न होय तौ पापी जीव की निंदा शास्त्रनि विषैं काहेकौं करिए है।

॥ हिरणीछन्द ॥

त्यजतु तपसे चक्रं चक्री यतस्तपसः फलं
सुखमनुपमं स्वोत्थं नित्यं ततो न तदद्भुतम् ।
इदमिह महच्चित्रं यत्तद्विषं विषयात्मकं
पुनरपि सुधीस्त्यक्तं भोक्तुं जहाति महत्तपः ॥१६५॥

अर्थ—चक्रवर्ती है सो तपके अर्थि चक्रकौं छाडै है तौ छांडो। जातैं तप का फल अनौपम्य आतम जनित शास्वता सुख हो है। तातैं सो कार्य तौ आश्चर्य कारी नाही। बहुरि इस लोक विषैं यहु बड़ा आश्चर्य है, जो सुबुद्धी होय छोड्या हूवा विषयरूप विषकौं बहुरि भोगवने अर्थि बडे तपकौं छाडै है।

भावार्थ—लोक विषैं घने सुखकै अर्थि किंचित् सुख कौ छाडै। ताका बड़ा आश्चर्य नाहीं। सर्वथा दुखदायक जो विष ताकौं छोडि बहुरि ताके खाने कै अर्थि बड़ा पदकौ छाडै ताका बडा आश्चर्य होय है। तातैं इहा भी मोक्ष सुख कै अर्थि चक्रवर्ति पदकौं छाडै ताका कहा आश्चर्य है। जो सर्वथा दुख दायक जे विषय तिनकौं छोडि, बहुरि तिनके सेवने के अर्थि त्रिलोक पूज्य मुनि पदकौं छाडै है। सो यहु बड़ा आश्चर्य है। ऐसा अनर्थ कैसै बनै है।

आगैं तप त्यजने वालौं का बहुरि आश्चर्य करत सता सूत्र कहै हैं।

॥ वसततिलकाछन्द ॥

शय्यातलादपि तु कोपि भयं प्रपातात्
तुङ्गात्ततः खलु विलोक्य किलात्मपीडाम् ।

चित्रं त्रिलोकशिखरादपि दूरतुङ्गाद्
धीमान् स्वय न तपसः पतनाद्बिमेति ॥१६६॥

अर्थ—तुच्छ कहिये बालक है सो भी आपके पीड़ा होती देखि ऊंचा जो शय्यातल तिसतैं भी पड़नतैं डरै है। अर यहु निरपम करि बड़ा आश्चर्य है जो बुद्धिवान पुरुष तीन लोक का शिखर समान अतिशय करि ऊंचा जो तप तिसतैं भी आप पड़नेतैं नांही डरै है।

भावार्थ—बालक विचार रहित है सो भी भारी सी ऊंची शय्या तिसतैं पड़ने ते भयवान हो है। वाकै भी इतना विचार है जो इहां तैं पड़े मेरे पीड़ा उपजैगी। बहुरि यहु मुनि लिंग का भारी है सो तो विचारवान है। बहुरि यहु तप है सो तीन लोक का शिखर समान ऊंचा है। इहां तीन लोक का जीव तपकौं पूज्य मानै है। तातैं ऊंचा जानना। सो इसतैं भ्रष्ट होवा नाहीं भय करै है आप ही भ्रष्ट हो है। इतना न विचारै है इसतैं भ्रष्ट भए मोकू इस लोक विर्षे हास्यादिक पीड़ा होयगी परलोक विर्षे चिरकाल पर्यंत नरकादि निगोदादि के दुख भोगवन होंहिगे। सो यहु बड़ा आश्चर्य है। अहो लोक विर्षे तौ ऊंचा पद पावै पीछै पराधीनपने भी नीचा होवैं इतनी लज्जा हो है तहां अपघातादिक करना विचारै है। यहु ऐसा निर्लज्ज भया है मुनिपद सारिखा ऊंचा पद पाय आप ही स्वाधीन भ्रष्ट होय नीचा हो है। सो ऐसा असमंजस कार्य देखि कैसैं आश्चर्य न हो है। इहां आश्चर्य कहने का यहु भाव

है। भ्रष्ट होता मुनि लोक रीतिकौं उल्लंघि निन्दा का स्थान भया है।

आगैं जा तप करि महा पाप का धोवना होइ तिस तपकौं भी नीच पुरुष मलिनपनाकौं प्राप्त करै है, ऐसा कहै हैं।

विशुध्यति दुराचारः सर्वोपि तपसा ध्रुवम्।
करोति मलिनं तच्च किल सर्वाधरोऽपरः ॥१६७॥

अर्थ--तपकरि सर्व किया हुवा दुराचार है सो निश्चय शुद्ध हो है, दूरि हो है। बहुरि जैन मत तै बाह्य भया ऐसा सर्व तै निकृष्ट निंद्य जीव है सो तिस तपकौं मैला करै है।

भावार्थ--जैसैं जलकरि मल धोइये है। बहुरि जा धोवने का कारण जल ही मैं मल मिलावै तौ वाकौं नीच कहिये। तैसैं तप करि पाप दूरि होइ है। बहुत पापी भी होइ अर तप करै तौ पाप कौं दूरि करै। बहुरि जो पाप दूरि करने का कारण तप तिस ही विषैं पाप लगावै तौ वह सर्वोत्कृष्ट नीच है। इहां यहु भाव। जो पाप ही करता होय सो तो नीच ही है। अर पाप मेटने का मुनि लिंग धारै अर तिस विषैं दोष लगावै सो उत्कृष्ट नीच है। सो अन्यत्र भी ऐसा न्याय कीया है। अन्य स्थान विषैं कीया पाप तौ धर्म स्थान विषैं दूरि होय। धर्म स्थान विषैं कीया पाप कहां दूरि होय, वज्र लेप हो है। तातैं गृहस्थ पद का उपजाया पाप मुनि पद विषैं दूरि होय। अर मुनि पद विषैं कीया पाप कहा दूरि होय,

बन्ध क्षेप हा है । ऐसें निश्चय करि मुनि लिंग धरै याप अगम्य याग्य नाहीं।

आगे आश्चर्य के बहुत कारण हैं तिन विषैं तपकौं छोड़ं वाला के अति आश्चर्य पणा के कारण कौं दिखावता सूत्र कहै हैं

॥ वसन्ततिलकाछंद ॥

सन्त्येव कौतुकशतानि जगत्सु किंतु
विस्मापकं तदलमेतदिह द्वय नः ।
पीत्वाऽमृत यदि वमन्ति विसृष्टपुण्या
सम्प्राप्य संयमनिधिं यदि च त्यजन्ति ॥१६८॥

अर्थ—तीन जगतनि विषैं कौतूहलनि के सैंकड़े पाइए ही है। परन्तु इनि विषैं हमकौं तो ए दोय ही कार्य असमर्थपनैं आश्चर्य उपजावने हारे हैं। एक तौ भाग्य हीन पुरुष अमृत पीय करि ताकौं वमैं है अर एक जो संयम निधान को पाय करि ताकौं छांडै है।

भवार्थ—जहां असंभव कार्य भासै तहां आश्चर्य मानिए है। सो लोकनिकै तो अनेक कौतुक रूप कार्य आश्चर्य कौं उपजावै है। परंतु हमकौं तौ इन दोय कार्यनिही का आश्चर्य है। कोई महा भाग्य तैं आकरि जरादिक रोग न होइ, ऐसा अमृत पान किया। बहुरि ताकौं वमै सो एक तौ यहु आश्चर्य है। अर कोई काल लब्धितैं आकरि जन्म मरणादि दुःख का नाश होय ऐसा संयम

निधान का ग्रहण कीया, बहुरि वाकौं छाडै, सो एक यहु आश्चर्य है। इहां दोय आश्चर्य कहे। तहां पहलै तौ दृष्टांत रूप दूजा दार्ष्टांत रूप जानना। जैसैं अमृतपान करि ताका वमन करनां तैसैं संयम ग्रहणकरि ताका त्यजन करना विपरीत कार्य है। तातैं ऐसा कार्य विवेकी करै नांही।

आगैं तिस पूर्वोक्त कारणतैं संयम निधानकौं नांही छांडते ऐसे विवेकी जीव हैं ते सर्व परिग्रह त्याग करि रागादिक का निर्मूल नाश करने कै अर्थि यत्न करहू। ऐसैं सीख देता सूत्र कहै हैं।

॥ मालिनीछन्द ॥

इह विनिहितबह्वारम्भबाह्योरुशत्रो—
रुपचितनिजशक्तेर्नापरः कोप्यपायः।
अशनशयनयानस्थानदत्तावधानः
कुरु तव परिरक्षामान्तरान् हन्तुकामः ॥१६६॥

अर्थ—इस मुनि लिंग विषै नाशकौं प्राप्त कीए हैं बहुत आरंभादि पाप कर्मरूप बाह्य के वैरी जानै, अर एकठी कीन्ही है अपनी शक्ति जिहिं, ऐसा जो तू सो तेरे और तौ कोऊ विघ्न करन हारा कष्ट रह्या नाही, परंतु अंतरंग वैरीनि का नाश करने का अभिलाषी होय भोजन करना सोवना चालना तिष्ठना इत्यादि क्रियानि विषैं सावधान होत संता तू तेरी रक्षाकौं करि, यहु हम सीख दई है।

बस लेप हा है। ऐसें निश्चय करि मुनि लिंग धरें याय लगावनां योग्य नांही।

आगें आश्चर्य के बहुत कारण हैं तिन विषैं तपकौं जोवने बाला ही अति आश्चर्य पर्णा के कारण कौं दिखावता सूत्र कहै हैं।

॥ वसन्ततिलकाछंद ॥

सन्त्येव कौतुकशतानि जगत्सु किंतु
विस्मापकं तदलमेतदिह द्वय नः।
पीत्वाऽमृतं यदि वमन्ति विसृष्टपुण्या
संप्राप्य संयमनिधिं यदि च त्यजन्ति ॥१६८॥

अर्थ—तीन जगतनि विषैं कौतूहलनि के सैंकडे पाइए ही है। परन्तु इनि विषैं हमकौं तो ए दोय ही कार्य अत्यर्थपनैं आश्चर्य उपजावने हारे हैं। एक तौ भाग्य हीन पुरुष अमृत पीय करि ताकौं वमैं है अर एक जो संयम निधान को पाय करि ताकौं छांडै है।

भवार्थ—जहां असंभव कार्य भासै तहां आश्चर्य मानिए है। सो लोकनिकै तो अनेक कौतुक रूप कार्य आश्चर्य कौं उपजावै है। परंतु हमकौं तौ इस दोय कार्यनिही का आश्चर्य है। कोई महा भाग्य तैं जाकरि जरादिक रोग न होइ, ऐसा अमृत पान किया। बहुरि ताकौं वमै सो एक तौ यहु आश्चर्य है। अर कोई काल लब्धितैं जाकरि जन्म मरणादि दुःख का नाश होय ऐसा संयम

निधान का ग्रहण कीया, बहुरि वाकौं छांडै, सो एक यहु आश्चर्य है। इहा दोय आश्चर्य कहे। तहां पहलै तौ दृष्टांत रूप दूजा दार्ष्टांत रूप जानना। जैसैं अमृतपान करि ताका वमन करना तैसैं सयम ग्रहणकरि ताका त्यजन करना विपरीत कार्य है। तातैं ऐसा कार्य विवेकी करै नांही।

आगैं तिस पूर्वोक्त कारणतैं सयम निधानकौं नांही छांडते ऐसे विवेकी जीव हैं ते सर्व परिग्रह त्याग करि रागादिक का निर्मूल नाश करने कै अर्थि यत्न करहू। ऐसैं सीख देता सूत्र कहै हैं।

॥ मालिनीछन्द ॥

इह विनिहितबह्वारम्भबाह्योरुशत्रो—
रुपचितनिजशक्तेर्नापरः कोप्यपायः।
अशनशयनयानस्थानदत्तावधानः
कुरु तव परिरक्षामान्तरान् हन्तुकामः ॥१६६॥

अर्थ—इस मुनि लिंग विषै नाशकौं प्राप्त कीए हैं बहुत आरंभादि पाप कर्मरूप बाह्य के वैरी जानै, अर एकठी कीन्ही है अपनी शक्ति जिहिं, ऐसा जो तू सो तेरे और तौ कोऊ विघ्न करन हारा कष्ट रह्या नाही, परतु अंतरग वैरीनि का नाश करने का अभिलाषी होय भोजन करना सोवना चालना तिष्ठना इत्यादि क्रियानि विषैं सावधान होत सता तू तेरी रक्षाकौं करि, यहु हम सीख दई है।

भावार्थ—राजानि के शत्रु दोय प्रकार होइ हैं। एक तौ बहिरंग एक अंतरंग। तहां जे अन्य राजादिक अपने स्थानतैं बाह्य प्रगट बैरी तेतौ बहिरंग शत्रु हैं। बहुरि जे खानपानादिक के साधक क्रियादिक अपने पासि मांही रहत छाने बैरी ते अंतरंग का शत्रु हैं। तहां जो राजा बहिरंग शत्रुनिका नाश करै ताकै राज भ्रष्ट होने का कारण नांही। परंतु जो खानपानादि क्रियानि विषैं सावधान प्रवर्त्तै तौ अंतरंग शत्रुनिकरि मरणकौ न पावै। तातैं अंतरंग शत्रुनितैं भी जैसैं अपनी रक्षा होय तैसैं खानपानादि क्रियानि विषैं सावधान रहना योग्य है। तैसैं मुनिनि के शत्रु दोय प्रकार हैं। एक तौ बहिरंग एक अंतरंग। तहां जे हिंसादि रूप आरंभादिक अपने मुनि लिंग तैं बाह्य प्रगट विपरीत भासैं ते तौ बहिरंग शत्रु हैं बहुरि खानपानादि क्रियानि विषैं रागादिक प्रमाद रूप मुनि लिंग विषैं भी मांही छाते छाने विपरीत भावते अंतरंग शत्रु है, तहां जो मुनि बहिरंग आरंभादिक का त्याग करै ताकै मुनिपद तैं भ्रष्ट होने का कारण रह्या नांही। परंतु जो खानपानादि क्रियानि विषैं प्रमादी होय सावधान न प्रवर्त्तैं तौ अंतरंग रागादि भाव निकरि मुनिपद का नाश कौं पावैं। तातैं अंतरंग रागादि शत्रुनितैं भी जैसैं अपना मुनिपद की रक्षा होय, तैसैं खान पानादि क्रियानि विषैं सावधान रहना योग्य है। भाव इहां यह है। बाह्य आरंभादिक ही का त्याग करि निश्चिंत न होना। मुनि लिंग विषैं खान पानादि क्रिया रही है, तहां भी रागादिक न करनो।

आगैं मनकौं रोके आत्माकी रक्षा होय अर रागादि का नाश होय तिस मन का रोकना ऐसैं करनो योग्य है। ऐसैं कहै हैं।

॥ शिखरणीछंद ॥

अनेकान्तात्मार्थप्रसवफलभारातिविनते
वचः पर्णाकीर्णे विपुलनयशाखाशतयुते ।
समुत्तुंगे सम्यक्प्रततमतिमूले प्रतिदिनं
श्रुतस्कन्धे धीमान् रमयतु मनो मर्कटममुम् ॥१७०॥

अर्थ—बुद्धिवान है सो इस मन रूपी वदर कू दिन प्रति सदा काल शास्त्र रूपी वृक्ष विषैं रमावो। कैसा है शास्त्र रूपी वृक्ष अनेकान्त स्वरूप जो अर्थ, तेई भये जे फूल फल, तिनके भारकरि नम्रीभूत है। वहुरि वचन रूपी पाननि करि व्याप्त है। वहुरि विस्तीर्ण नय रूपी शाखा डाहली तिनके सैंकडानि सयुक्त है। वहुरि भलै प्रकार ऊचा है। वहुरि भला विस्तार लिये जो मतिज्ञान सो जाका मूल जड है।

भावार्थ—कोऊ कहै मन तौ वदर समान चचल है सो सावधानी राखें भी रागादि रूप परिणमैं, तौ कहा करिए। ताकौं शिक्षा दीजिए है। जैसें वदर ठाला रहै तब तौ कछू विगार करै ही करै। तातैं वाकौं वृक्ष विषैं रमा दीजिये तौ अपना विगार न करै, अर वै भी प्रसन्न रहै। तैसें मन निरालंब रहै तव तौ रागादि रूप प्रवर्त्तै ही प्रवर्त्तै। तातैं वाकौं शास्त्राभ्यास विषय लगा दीजिए तौ रागादि रूप न प्रवर्त्तै, अर वह मन भी प्रसन्न रहै। इहां वाह्य शास्त्रनिका पठन पाठन करना ताही का नाम शास्त्राभ्यास जाननां। शास्त्र कै अनुसारि स्वरूप ध्यानादिक का करना सो भी शास्त्राभ्यास

ही है। यातैं शुक्ल ध्यान विर्षै भी वितर्क सहित ध्यान कह्या। बहुरि वितर्क नाम श्रुत का कह्या है। तातैं यावत् केवलज्ञान न होय तावत् शास्त्र विर्षै ही मन लगाये रागादिक हीन हो है। सा यहु शास्त्र मन भंवर के रमावने कौ वृक्ष समान कह्या। तहां वृक्ष विर्षै तो सारभूत फल हो है। ताका भार करि नम्र है। अर शास्त्र विर्षै सारभूत स्याद्वाद रूप अर्थ पाइए है ताका बाहुल्यपनां करिभाद्य है। बहुरि वृक्ष विर्षै पान हो है ताकरि सघन शोभै है। शास्त्र विर्षै युक्ति कीयें वचन पाइए है ताकरि संकीर्ण शोभै है। बहुरि वृक्ष विर्षै शाखा हो है तिनके आश्रय पत्र फल फूल पाइए है। शास्त्र विर्षै अनेक नय हैं तिनके आश्रय वचन रचना वा अर्थ निरूपण करिए है। बहुरि वृक्ष ऊंचा शोभै है। शास्त्र त्रिलोकय पूज्य ऊंचा शोभै है। बहुरि वृक्षके विस्तार रूप मूल हो है। सोई कारण मूल है। शास्त्रके विर्षै विस्तार लिए बुद्धि अथवा मतिज्ञान पूर्व कारण मूल हो है। ऐसैं वृक्ष समान शास्त्र विर्षै मन भंवर कौं रमावो।

आगैं शास्त्र विर्षै मनकौं रमावना जीव है सो ऐसैं तत्त्वकौ भावै ऐसा कहै हैं।

> सदैव तदतद्रूपं प्राप्नुवन्न विरंस्यति।
> इति विश्वमनाद्यन्तं चिन्तयेद्विश्ववित् सदा ॥१७१

अर्थ—समस्त तत्त्वनिका जाननहारा ज्ञानी है सो अनादि निधन समस्त जीवादि तत्त्वनिकौं ऐसा चिंतवै है। जो कोई एक वस्तु तिस वि वित स्वरूपकौं अर तिसतैं प्रतिपक्षी स्वरूप कौ प्राप्त होत सता कांही नाशकौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—शास्त्राभ्यास करने वाला ज्ञानी केवल शब्द अलंका-रादि विषैं ही नांही मनकौ रमावै है। ऐसैं वस्तु स्वरूप कौं चितवै है। एक कोई जीवादिक वस्तु है सो नित्य भी अनित्य भी है। सत्तारूप भी है, असत्ता रूप भी है एक भी है, अनेक भी है इत्यादि तिस रूप है अर तिस रूप नाही भी है। सो ऐसे भावकौ प्राप्त होता जीवादिक वस्तु है सो नाश कौ प्राप्त न हो है, अपने स्वभाव रूप रहै है। ऐसैं ही अनादि निधन समस्त जीवादिक पदार्थ पाइए हैं। बहुरि ऐसै ही शास्त्रद्वार करि तत्त्व ज्ञानी जीव चितवै है सो ऐसे चितवनतैं वस्तु स्वरूप भासैं सम्यग्दर्शनादिक कौ पाइ अपना कल्याण करै है।

आगैं ऐसा ज्ञान तौ भ्रम रूप होसी ऐसी कोई आशका करै ताकौ निराकरण करता सूत्र कहै है।

एकमेकक्षणे सिद्धं ध्रौव्योत्पादव्ययात्मकम्।
अबाधितान्यतत्प्रत्ययान्यथानुपपत्तितः ॥१७२॥

अर्थ—एक ही वस्तु एक ही काल विषैं ध्रौव्य उत्पाद व्यय इनि तीनू स्वरूप है। इहा हेतु कहे है—प्रमाणकरि अखंडित ऐसी जु यहु अन्य है, ऐसी प्रतीति अर यहु सोई है ऐसी प्रतीति ताकी अन्यथा असिद्धि है।

भावार्थ—जो एक ही अपेक्षा तैं वस्तु का तिस रूप भी कहिये अर तिस रूप नाही भी कहिये तौ भ्रम ही है। बहुरि अन्य अपेक्षा-तैं कहिए तौ विरोध नाही जैसैं पुरुष कौं एक ही पुरुष का पिता भी कहिए पुत्र भी कहिए तौ भ्रम ही है। अर और का पिता और का

पुत्र कहिए तौ विरोध नांही। वस्तु स्वरूपही ऐसा है, सो इहां एक ही वस्तु नित्य अनित्य कह्या ताका उदाहरण कहै हैं। कोई एक पुरुष रंक था बहुरि वह राजा भया, तहां अवस्था पलटने की अपेक्षा पहले रंक था अब राजा भया ऐसा अन्यपना भासे है। तातैं यहु अन्य है ऐसा मानिए है। बहुरि मनुष्यपनां की अपेक्षा पहले भी मनुष्य था अब भी वही मनुष्य है ऐसा एकपनां भासे है तातैं यहु सोई है, ऐसा मानिये है। सो ऐसी प्रतीति प्रत्यक्षादि प्रमाणनिकरि बाधित नांही है। ऐसैं ही वस्तु स्वरूप भासे है तातैं कोई पुरुष एक काल विषैं उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना कौ धारै है। जिस समय रंक तैं राजा भया उस ही एक काल विषैं राजापनां का तौ उत्पाद है रंकपनां का व्यय है मनुष्य पना ध्रौव्य है ऐसैं ही कोई जीव मनुष्य तैं देव भया तहां मनुष्यपना देवपना की अपेक्षा यहु अन्य है ऐसी प्रतीति करिये है। जीवपना की अपेक्षा यहु सोई है ऐसी प्रतीति करिये है। तातैं मनुष्यतैं देव होने का समय विषैं देवपने का उत्पाद, मनुष्यपना का व्यय, जीवपनां का ध्रौव्य ऐसैं एक ही वस्तु एक काल विषैं तीनू भाव धरै पाइए है। याही प्रकार सर्व जीवादिक वस्तु एक समय विषैं स्थूल पर्यायनि करि वा सूक्ष्म पर्यायनि करि उत्पाद व्यय ध्रौव्यपनौं कौ धारै है। तातैं एक वस्तु विषैं नित्य अनित्यपना सिद्ध भया। ऐसैं ही स्व द्रव्यक्षेत्र काल भाव अपेक्षा सत्तापनां पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा नास्तिपना मानना। एक ही पुरुष कौं एहु द्रव्य सो पुरुष है यहु द्रव्य सो पुरुष नांही कोई पुरुष इस क्षेत्र विषैं है इस क्षेत्र विषैं नांही इ[illegible]

काल विषै है इस काल विषैं नांही। ऐसा स्वरूपमय है, ऐसा स्वरूप मय नाही। ऐसैं मानिये है। तातैं एक ही वस्तु युगपत् सत्ता असत्ता रूप है। बहुरि अशी की अपेक्षा एक, अंशनि की अपेक्षा अनेक मानना। एक ही पुरुषकौं सर्व शरीर अपेक्षा एक भी कहिए, अर हस्त पदादि अपेक्षा अनेक रूप भी मानिये है। तातैं एक ही वस्तु युगपत् एक अनेक रूप है। ऐसैं ही तिस रूप है, अर तिस रूप नाहीं भी है। ऐसा तत्त्व भासै है। सो यथा योग्य शास्त्र द्वार करि प्रमाणतै अविरुद्ध अपेक्षातैं सम्यग्ज्ञानी जीव तैसैं ही विचारै है।

आगैं कोऊ तर्क करै जो वस्तु कै ध्रौव्यादि तीन स्वरुप पनौं असिद्ध है। जातैं तिस वस्तु कै सर्वथा नित्यादि एक एक स्वरूपपनौं ही पाइए है। ऐसी आशका कौ दूरि करता सूत्र कहै हैं।

॥ वसन्ततिलकाछन्द ॥

न स्थास्नु न क्षणविनाशि न बोधमात्रं
नाभावमप्रतिहतप्रतिभासरोधात् ।
तत्त्वं प्रतिक्षणभवत्तदतत्स्वरूप—
माद्यन्तहीनमखिलं च तथा यथैकम् ॥१७२॥

अर्थ—वस्तु है सो सर्वथा स्थिर नित्य ही नाही, क्षण विनस्वर ही नाहीं, ज्ञान मात्र ही नाही, अभाव स्वरूप ही नांही। जातैं अखडित प्रतिभासने का निरोध है। अविरुद्धपने करि ऐसै भासता नांही। जातै वस्तु समय समय प्रति तिस रूप भी है। अर तिस रूप नाहीं

भी है। ऐसा ही अनादि नियम है। सो जैसें एक पदार्थ ऐसें ही भासैं है तैसें ही सर्व पदार्थ जाननां।

भावार्थ—वस्तु का स्वरूप सर्वथा एक रूप नांही है। नाना अपेक्षा तैं नानारूप है। सांख्य नैयायिक आदि मतवाले वस्तु कूं सर्वथा नित्य ही मानैं है। बौद्धमती क्षण विनश्वर ही मानै है। कोई बौद्धमती ज्ञानाद्वैतवादी एक ज्ञानी ही है, बाह्य कोई वस्तु नांही ऐसा मानै है। कोई बौद्धमती शून्यवादी सब वस्तु का अभाव मानै है। इत्यादि एकांत रूप वस्तुकौं मानै है। सो ऐसे है नाहीं तातैं विचार कीए ऐसे एकांत विर्षे विरोध भासै है। एक ही वस्तु विर्षे अवस्था पलटे विना अर्थ क्रिया की सिद्धि होती नांही, तातैं सर्वथा नित्य कैसैं मानिये। बहुरि अन्य अन्य अवस्था होतैं भी कोई भाव का नित्यपना करि सर्वथा वस्तु एक भासै है। तातैं सर्वथा क्षण विनश्वर कैसैं मानिये। बहुरि ज्ञान भी भासै है, बाह्य पदार्थ भी भासै है। जो बाह्य पदार्थ न मानिये तौ प्रमाण अप्रमाण ज्ञान का विभाग न होइ, तातैं सर्वथा ज्ञान मात्र ही नांही है। बहुरि प्रत्यक्ष पदार्थ भासै है तिनका अभाव मानें बाँका उपदेश भी शब्द रूप पदार्थ है सो भी अभाव रूप ही ठहर्‌या। प्रत्यक्षकौं झूठ कहै सो बनैं नांही। तातैं सर्वथा अभाव रूप नांही है। ऐसैं एकांत रूप तौ वस्तु नाहीं। तौ कैसा है। जिस रूप भी है, अर जिस रूप नांही भी है, सो ही कहिए है। वस्तु है सो द्रव्य अपेक्षा नित्य है पर्याय पलटने की अपेक्षा क्षण विनश्वर है। ज्ञान विर्षे भासने की अपेक्षा ज्ञान मात्र है। बाह्य वस्तु सत्ता रूप है तिनकी अपेक्षा

ज्ञान मात्र नांही बाह्य वस्तु भी है। पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव विषैं यहु नास्ति है ताकी अपेक्षा अभाव है। स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव विषैं अस्ति है ताकी अपेक्षा अभाव नाही, सद्भाव है। ऐसैं ही अनेकान्त रूप अनादि निधन वस्तु का रूप है। सो एक पदार्थ विषैं विचारि देखो। जैसैं एक जीव चेतनत्वादि भावनि की अपेक्षा नित्य भी है, अर नर नारकादि पर्यायनि की अपेक्षा अनित्य भी है। ज्ञान विषैं प्रति भास्या जीव का आकार सो ज्ञान मात्र भी है। जीव अपना अस्तित्व लिए पदार्थ भी है पुद्गलादिक का द्रव्य क्षेत्र काल भाव विषैं जीव का अभाव भी है। जीव का द्रव्य क्षेत्र काल भाव विषैं जीव का सद्भाव भी है। ऐसैं ही अनेकांत रूप जैसैं जीव एक पदार्थ है तैसै ही सर्व पदार्थ अनादि निधन अनेक अपेक्षा करि तिस रूप भी हैं। अर तिस रूप नांही भी हैं। बहुरि जैसा है तैसा ही मानें सम्यग्ज्ञान हो है। तातैं तैसैं ही मानना योग्य है।

आगैं जो ऐसा सर्व वस्तुनिका साधारण समान स्वरूप है तौ आत्मा का असाधारण स्वरूप कैसा है। जो भाया हुवा तिस आत्मा कैं मुक्ति कौं साधै ऐसैं पूछे कहै हैं।

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज्ज्ञानभावनाम् ॥१७४॥

अर्थ—आत्मा है सो ज्ञान है असाधारण स्वभाव जाका ऐसा है। बहुरि स्वभाव की प्राप्ति सो विनाश रहित है। तातैं अविनाश अवस्था कौं चाहता विवेकी है सो ज्ञान भावना कौं भावै।

भावार्थ—पूर्वे जे नित्य अनित्यादि धर्म कहे ते तो सर्व वस्तुनि विर्षे समान रूप साधारण है। बहुरि जो यहु ज्ञान है—जानना है सो आत्मा ही विर्षे पाइए है। सो यहु आत्मा का असाधारण स्वभाव है। इस ही लक्षणनि करि परद्रव्यनितैं भिन्न आत्मा के अस्तित्व का निश्चय हो है। बहुरि यह नियम है-वस्तु का अस्तित्व होतें वाके स्वभाव का अभाव न हो, तातैं लक्षण नाश भए लक्ष्य का अस्तित्व कैसें रहे ? बहुरि जैसें जो पुरुष अपने धन ही का धनी होय प्रवर्ते ताकी एक सी दशा रहै। बहुरि जो परधन का धनी होय प्रवर्ते ताकी एक दशा रहै नांही। तैसें आत्मा का स्वभाव ज्ञान है सो जीव अपनें ज्ञान ही का स्वामी होय प्रवर्ते। ए पदार्थ जैसें परिणमैं तैसें परिणमो। मैं इनका जानन हारा ही हौं, ऐसी भावना राखे ताकैं अविनाशी अवस्था हो है। तातैं जानपणां तो याका स्वभाव, ताका तौ अभाव होय नांही। बहुरि जानपनां बिना ज्ञान भावनि का यहु स्वामी होता नाहीं, याकी अवस्था कैसें पलटै। बहुरि जो जीव पर द्रव्य के स्वभावनि का स्वामी होय प्रवर्ते, शरीर धन स्त्री पुत्रादिक अपनें स्वभाव रूप परिणमैं, तिनिकौं अपन जानैं तिनिकै अविनाशी अवस्था रहै नांही। तातैं शरीरादिक अवस्था एक रूप रहै नांही। यहु तिनकी अवस्था पलटै आपकी अवस्था पलटी मानैं तहां अविनाशीपना कैसें रहै। तातैं जो विवेकी अविनाशी अवस्थाकौं चाहै सो एक ज्ञान भावनांही कौ भावै।

आगैं प्रश्न—जो पृथक्त्ववितर्क एकत्ववितर्क भेद लिए शुक्ल

ध्यान स्वरूप जो श्रुतज्ञान भावना रूप है स्वभाव जाका ऐसा ज्ञानकौ भाए फल कहा हो है। ताका उत्तर कहै है।

ज्ञानमेव फलं ज्ञाने ननु श्लाध्यमनश्वरम्।
अहो मोहस्य माहात्म्यमन्यदप्यत्र मृग्यते ॥१७५॥

अर्थ—निश्चय करि ज्ञान विषैं ज्ञान ही फल है सो सर्वथा सराहने योग्य है। अर अविनाशी है। बहुरि जो इहां अन्य किछू फल अवलोकिये है सो बड़ा आश्चर्य है। यहु मोह की महिमा जानना।

भावार्थ—श्रुतज्ञान करि पदार्थनिकौं यथार्थ जानिए ताका तत्काल तो पदार्थनिका जानपनां होना ही फल है। अर परंपरा करि ताका फल केवलज्ञान है तहां सर्व पदार्थनिका जानपना हो है। ऐसैं ज्ञान का फल ज्ञान ही है। सो सर्व प्रकार प्रशंसा योग्य है। जातै यथार्थ ज्ञान भए पदार्थ जैसे के तैसे भासैं तहां निराकुलता हो है। निराकुलता सुख का लक्षण है। सुखकौं सर्व चाहै है। बहुरि इस सुख विषैं पराधीनता आदि कोई दोष नाही है। बहुरि जो विषय सामग्री रूप फलकौं चाहिये सो यहु मोह की महिमा है। जैसैं खाजि रोग भए खुजावने की सामग्री भली लागै है। तैसैं मोह तैं काम क्रोधादि भाव आत्मा कै होइ, तब याकौं स्त्री शस्त्रादिक सामग्री भली भासै है। उनकौं चाहै है। बहुरि ज्ञानी जनकौं ज्ञान बिना आन फल का चाहना आश्चर्य भासै है। जैसैं भूत लगे पुरुष की चेष्टा का आश्चर्य होइ तैसैं मोही जीवनिकै चेष्टा का ज्ञानी कौं आश्चर्य हो है।

आगे शुक्लध्यान की भावना विर्षे प्रवर्त्तें ऐसे भव्य अर अभव्य तिनके कहा फल होय, सो कहै है ।

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यो विशुद्धो भाति निर्वृतः
अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली च भस्म वा भवेत् ॥१७६॥

अर्थ—शास्त्ररूपी अग्नि विर्षे भव्य है सो तो सांचा पुष्पराग रत्नवत् मल रहित निष्पन्न होत संता विशुद्ध निर्मल सोहै है। बहुरि दुष्ट अभव्य है सो अंगीरावत प्रकाशमान होत संता मल संयुक्त हो है वा भस्म रूप हो है ।

भावार्थ—जैसें पद्मराग मणि है सो तो अग्निकरि लगे हुए मलनि का नाश होने तैं निष्पन्नताकौं पाइ शुद्ध भाव रूप होत संता सोभायमान हो है, बहुरि इंधन का अगारा है सो अग्नि करि प्रकाशमान तो होइ परंतु कै तो कोयला रूप मैला होय, कै राख रूप भस्म होय। तैसें धर्मात्मा भव्य जीव है सो तो शास्त्र का अभ्यास करि लगे हुए अज्ञान रागादिक मलनि का नाश होने तैं सिद्धपद कौं पाइ शुद्ध स्वभाव रूप होत संता प्रशंसायोग्य हो है। बहुरि अधर्मी अभव्य जीव है सो शास्त्र का अभ्यास करि पदार्थनिकौं जानता प्रसिद्ध तौ होय परंतु रागादि दोषनि करि मैला हो है ।

आगें ध्यान की सामग्री कौं दिखावता सूत्र कहै हैं ।

मुहुः प्रसार्य सज्ज्ञानं पश्यन् भावान् यथास्थितान् ।
प्रीत्यप्रीती निराकृत्य ध्यायेदध्यात्मविन्मुनिः ॥१७७॥

अर्थ—आत्मा का अधिकार रूप जो अध्यात्म भाव ताके जानने हारा मुनि है सो वारवार सम्यग्ज्ञान कौ फैलाय जैसैं पदार्थ तिष्ठै हैं सो तैसैं तिनिकौ अवलोकता सता रागद्वेष कौ निराकरण करि ध्यावै है।

भावार्थ—आत्म-ज्ञानी जीव ध्यान करै है। तहां पहलै तो आगम अनुमानादिक रूप सम्यग्ज्ञानतैं जीवादि पदार्थनि का निश्चय करै बहुरि यथार्थ श्रद्धान करता सता जैसैं रागद्वेष न होय तैसैं बाह्यसाधन वा अतरंग विचारि करि रागद्वेपनि का नाश करै, ऐसी सामग्री भए ध्यान की सिद्धि हो है। जातैं उपयोग की निश्चलता का नाम ध्यान है। सो रागद्वेप होतैं पर द्रव्यनि विषैं उपयोग भ्रमै तहां ध्यान कैसैं होय। बहुरि पदार्थनिका निश्चय भये विना पर द्रव्य इष्ट अनिष्ट भासै तहां राग द्वेष कैसैं दूरि होय। अपना ज्ञान पदार्थनि के जानने विषैं लगाये विना पदार्थनिका निश्चय कैसैं होय। तातैं ज्ञानकौ विस्तारि पदार्थनि का यथार्थ निश्चय करि रागद्वेष कौं मेटि कोई एक पदार्थ कौं यथार्थ ध्यावता अन्य सर्व चिंतवन कौं रोकि ध्यानावस्थाकौं जीव प्राप्त हो है। यहु ध्यान है सो साक्षात मोक्षमार्ग है ताकै अर्थि भव्यनिकौं ऐसी सामग्री मिलावनी योग्य है।

आगैं राग द्वेष कौं निराकरण करि काहे तैं ध्यान करै, ऐसा प्रश्न कीए उत्तर कहै हैं। जो तिन रागद्वेषनि कै ससार को कारण जे कर्म तिनके उपजावने का कारणपना पाइए है। तातैं तिनकौ नष्ट करि ध्यान करै सोई कहै है।

वेष्टनोद्वेष्टने यावत्तावद् भ्रान्तिर्भवार्णवे ।
आवृत्तिपरिवृत्तिभ्यां जन्तोर्मन्थानुकारिणः ॥१७८॥

अर्थ—मथ वा रई ताका अनुसारी तिस सरीखा जो यहु प्राणी ताकै यावत् बंधना अर खुलना पाइए है तावत् संसार समुद्र विषैं गमन अर आगमन तिनकरि भ्रमण हो है।

भावार्थ—जैसैं माथनी विषैं रई हो है, ताकै रस्सी का बंधना अर खुलना यावत् पाइए है तावत् गमनागमन होने करि ताकै परिभ्रमण हो है। तैसैं संसार विषैं यहु जीव है ताकै नवीन कर्म का बंधना अर पूर्व कर्म का उदय होय करि निर्जरना यावत् पाइए है तावत् नरकादि पर्यायनि विषैं गमनागमन होने करि याकै परिभ्रमण पाइए है। बहुरि पूर्व कर्म का उदय होतैं याकै रागादिक हो है। अर रागादिक भावनितैं नवीन कर्म बंधै है। तातैं संसार विषैं भ्रमण का कारण रागादिक का भाव जानने।

आगै आत्मा कै कर्म का खुलना है सो कोई तो भ्रमण का और नवीन बंध का कारण है, कोई नांही है। ऐसा दिखावता सूत्र कहै है।

मुच्यमानेन पाशेन भ्रान्तिर्बन्धश्च मन्थवत् ।
जन्तोस्तथासौ मोक्तव्यो येनाभ्रान्तिरबन्धनम् ॥१७९॥

अर्थ—मंथ जो रई तिस सरीखा यहु जीव ताकै खुलता जो फांसी करि भ्रमण अर बंध हो है। सो यहु फांसी तैं खोलनी जाकरि भ्रमण न होइ अर बंधन होइ।

भावार्थ—जैसैं माथनी विषैं रई हो है ताकै रस्सी की फांसी हो है। ताका खुलना दोय प्रकार है। एकतौ खुलना ऐसा है जाकरि नवीन बंध तौ होता जाय, अर माथनी विषैं भ्रमण हो है। और एक खुलना ऐसा हो है जाकरि नवीन बंध नांही होय है, अर माथनी विषैं भ्रमण भी नाही हो है। फांसीतैं छूटना ही हो है। तैसैं संसार विषैं यहु जीव है ताकै कर्म की फासी पाइए है, ताका निर्जरा होना दोय प्रकार है। एक तौ निर्जरा ऐसी हो है जाकरि नवीन बंध होता जाय है, अर संसार विषैं भ्रमण हो है। अर एक निर्जरा ऐसी हो है जाकरि नवीन बंध नांही हो है, अर संसार विषैं भ्रमण भी नांही हो है। कर्म फासितैं मुक्त हो है। इहां ऐसा जानना जो पूर्वैं बंध्या हुवा कर्म काल पाइ अपना उदय रस देइ निर्जरै है तहां सविपाक निर्जरा हो है। सो तौ नवीन कर्म बंधने का अर संसार विषैं भ्रमण का कारण है। बहुरि जो पूर्वैं बंध्या हुवा कर्म है सो धर्म साधन मैं भी अनुराग नहीं होने करि अपना उदय रस दीए विना ही निर्जरै है। तहां अविपाक निर्जरा हो है। सो नवीन कर्म बंधने का अर संसार विषैं भ्रमण का कारण नाही है। तातैं कर्म फास की ऐसे अविपाक निर्जरा करनी योग्य है, जाकरि बंध अर भ्रमण न होइ।

आगैं जीव कै कैसैं बंध हो है, अर कैसै बंध नांही हो है। ऐसा सूत्र कहै है।

॥ आर्या छंद ॥

रागद्वेषकृताभ्यां जन्तोर्बन्धः प्रवृत्त्यवृत्तिभ्याम्।
तत्त्वज्ञानकृताभ्यां ताभ्यामेवेक्ष्यते मोक्षः ॥१८०॥

अर्थ—राग द्वेष भावनि करि कीन्ही ऐसी जे प्रवृत्ति अर अप्रवृत्ति तिनिकरि ती ाव के बंध हो है। अर तत्त्वज्ञान करि कीनी जे प्रवृत्ति अप्रवृत्ति तिनि ही करि मोक्ष अवलोकिये है।

भावार्थ—जिस रूप होय आत्मा प्रवर्त्तै ताकी तौ तहाँ प्रवृत्ति जाननी। अर जिस रूप होय आत्मा नांही प्रवर्त्तै ताकी तहां अप्रवृत्ति जाननी। तहां मोह के उदयतैं रागद्वेष भाव निपजै तिनकरि कदाचित् अशुभ कार्यनिकी प्रवृत्ति होय अर शुभ कार्य-निकी अप्रवृत्ति होय, कदाचित् शुभ कार्यनि की प्रवृत्ति होय अर अशुभ कार्यनिकी अप्रवृत्ति होय। सो ऐसी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति करि तौ आत्मा के बंध हो है। बहुरि मोह का उदय क्षीण होनेतैं तत्त्व ज्ञान होय। ताकरि ज्ञान मात्र शुद्धोपयोग की प्रवृत्ति होय, शुभ अशुभ भावनि की अप्रवृत्ति होय सो,ऐसी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति करि आत्माकै मोक्ष हो है। तातैं ऐसा ही साधन करना योग्य है।

आगैं पूछै है जो बंध हो है सो पुण्यरूप अर पाप रूप हो है। सो काहेतैं निपजै है ? बहुरि तिन दोऊनिका अभाव काहे तैं हो है ? ऐसैं आशंका करि उत्तर कहै हैं।

॥ आर्याछंद ॥

द्वेषानुरागबुद्धिर्गुणदोषकृता करोति खलु पापम्।
तद्विपरीता पुण्यं तदुभयरहिता तयोर्मोक्षम् ॥१८१॥

अर्थ—गुण और दोष तिन विषैं कीन्ही जो द्वेषरूप अर अनुराग रूप बुद्धि सो तौ निश्चय करि पापकौं करै है, अर तिसतैं

विपरीत गुण विषैं अनुराग, दोष विषै द्वेष रूप वुद्धि सो पुन्यकौं करै है। बहुरि तिन दोऊनितैं रहित जो वुद्धि है सो तिन पाप पुण्य रूप कर्मनिका मोक्षकौं करै है।

भावार्थ—वुद्धि नाम उपयोग का है। सो उपयोग तीन प्रकार है। अशुभोपयोग, शुभोपयोग तथा शुद्धोपयोग। तहां जाकरि आत्मा का भला होय ताका नाम गुण है। जाकरि वुरा होय ताका नाम दोष है। सो धर्म रूप भावनितैं आत्मा का भला हो है तातैं धर्म कौ सूचता जो भाव सो तो गुण है। अर अधर्मरूप भावनितैं आत्मा का वुरा हो है। तातैं धर्म विरोधी जो भाव सो दोष हैं। सो जिस जीव कै तीव्र मोह के उदयतैं गुण विषैं द्वेष होय अर दोष विषै अनुराग होय। अथवा तिसही अभिप्राय तैं जा विषैं गुण होय वा जो गुण का कारण होय तिस विषैं तौ द्वेष होय, अर जा विषैं दोष होय वा दोष का कारण होइ तिस विषैं अनुराग होय, तिस जीवकै अशुभोपयोग पाइए है। ताकरि पाप कर्म का वंध हो है। बहुरि जिस जीव कै मंद मोह के उदय तैं गुण विषैं अनुराग होइ, अर दोष विषैं द्वेष होइ। अथवा तिस ही अभिप्रायें तैं जाविषैं गुण पाइए है वा जो गुण कारण होइ तिस विषैं तो अनुरागी होइ अर जा विषैं दोष होइ वा दोष का कारण होइ तिस विषैं द्वेष होइ तिस जीव कै शुभोभयोग पाइए है। ताकरि पुण्य कर्म का वध हो है। इहां कोऊ कहै—द्वेष वुद्धितैं पुण्य वध कैसै होइ? ताका समाधान—जो अपना कषाय का प्रयोजन लिये द्वेष करै तहां तौ पाप वध ही है। बहुरि जैसैं कोऊ

पुरुष मित्र का शत्रु विषै द्वेष करै, तैसें जो धर्म के विरोधी विषै द्वेष करै तहाँ वाके अभिप्राय कै विषै धर्म का अनुराग ही है। तातैं पुण्य बंध हो है। ताका उदाहरण। सूर सिंह दोऊ मरे तहां सूर तौ मुनिरक्षा की अभिप्राय तैं मरि पांचवें स्वर्ग का देव भया। सिंह मुनि मारने का अभिप्राय तैं मरि पांचवें नर्क गया। बहुरि शास्त्रनि विषै पापनि की वा पापी जीवनि की निंदा करिये है। तातैं अप्रशस्त द्वेष तैं भी पुण्य बंध समझे है। ऐसें दोऊ उपयोग राग द्वेष सहित प्रवर्तै है। तातैं इनिकौं अशुद्धोपयोग कहिये है। बहुरि जिस जीव कै मोह का अभावतैं ऐसे दोऊ प्रकार के राग द्वेष न पाइए तिस जीव के शुद्धोपयोग हो है तिस करि पुण्य कर्म अर पाप कर्म का नाश ही हो है। नवीन बंध नाहीं हो है। पूर्व बंध की निर्जरा होय है। ऐसैं तीन प्रकार उपयोग है। सोई पुण्य पाप का बंध अर तिनि दोऊनिका नाश ताका कारण जानना।

आगैं जो राग द्वेष पूर्वोक्त प्रकार बंध का कारणपणा है तौ तिनका रागद्वेषनिका उपजना काहेतैं हो है ? ऐसैं पूछे सूत्र कहै है।

मोहबीजाद्रतिद्वेषौ बीजान्मूलाङ्कुराविव ।
तस्माज्ज्ञानाग्निना दाह्यं तदेतौ निर्दिधक्षुणा ॥१८२॥

अर्थ—जैसैं बीजतैं वृक्षकै जड़ अर अंकूरा हो है तैसें मोह मूल कारणतैं आत्माकै रागद्वेष हो है। ताते इनि राग द्वेष नकौं जो जीव दग्ध कीया चाहै है तीह जीव ज्ञानरूपी अग्निकरि मोह दग्ध करना योग्य है।

भावार्थ—अतत्त्व श्रद्धानरूप मिथ्यात्व भाव का नाम तो मोह है। अर इष्ट अनिष्ट पदार्थनिकौं मानि तिनि विषैं प्रीति अप्रीति करनी तिनिका नाम राग द्वेष है। सो अतत्त्व श्रद्धान ही तैं पदार्थ इष्ट अनिष्ट भासै हैं। तातैं जैसैं वृक्ष कै जड अर अकुरा का मूल कारण बीज है। तैसैं राग द्वेष का मूल कारण मोह जानना। बहुरि जैसैं कोई जड अकुराकौ दग्ध कीया चाहै सो वाकै बीज कौ दग्ध करै। तैसैं जे रागद्वेष का नाश कीया चाहै सो मोह का नाश करै। मोह का नाश भए उनका नाश सहज ही हो है। सम्यग्दृष्टी कै मोह का नाश भए पीछै कदाचित् रागद्वेष रहे भी है तो, जैसैं उपाडे रोंख की जड अर अकुरा केतेक काल रहै हैं परतु शीघ्र सूखेंगे, तैसैं ते राग द्वेष शीघ्र नाशकौं प्राप्त होहिंगे। बहुरि कोई मिथ्यादृष्टी कै मोह का सद्भाव होतैं रागद्वेष थोरे भी बाह्य प्रकटै तो जैसैं बीज होते जड अकुरे थोरे भी बाह्य दीसैं परतु शीघ्र वधैंगे तैसैं रागद्वेष शीघ्र वृद्धिकौं प्राप्त होहिंगे। तातैं राग द्वेष का मूल कारण मोहकौं जानि तिसही का नाश करना। सो जैसैं बीज जलावने का कारण अग्नि है, तैसैं मोह नाशकौं कारण ज्ञान है। ज्ञान तैं जीवादि तत्त्वनि का स्वरूप कौं यथार्थ जानैं तौ अतत्त्व श्रद्धान को नाश हो है। तातैं तत्त्व ज्ञान का अभ्यास विषैं तत्पर रहना। इतना किए सर्व सिद्धि स्वयमेव हो है।

आगैं सो इन राग द्वेषनि का बीज-भूत मोह सो कैसा है, बहुरि जाके नाश विषैं कारण कहा है, सो कहै है।

पुराणो ग्रहदोषोत्थो गम्भीरः सगतिः सरुक्।
त्यागजात्यादिना मोहव्रणःशुध्यति रोहति॥१८२॥

पुत्र मित्र का शत्रु विषै द्वेष करै, तैसें जो धर्म का विरोधी विषै द्वेष करै तहाँ वाके अभिप्राय कै विषै धर्म का अनुराग ही है। तातैं पुण्य बंध हो है। ताका उदाहरण। सूर सिंह शूरु करे तहां सूर तौ मुनिरक्षा की अभिप्राय तैं मरि पांचवैं स्वर्ग का देव भया। सिंह मुनि मारने का अभिप्राय तैं मरि पांचवैं नर्क गया। बहुरि शास्त्रनि विषै पापनि की या पापी जीवनि की निंदा करिये है। तातैं कथंचित् द्वेष तैं भी पुण्य बंध संभवै है। ऐसें दोऊ उपयोग राग द्वेष सहित प्रवर्त्तै है। तातैं इनिकौं अशुद्धोपयोग कहिये है। बहुरि जिस जीव कै मोह का अभावतैं ऐसें दोऊ प्रकार के राग द्वेष न पाइए तिस जीव कै शुद्धोपयोग हो है तिस करि पुण्य कर्म अर पाप कर्म का नाश ही हो है। नवीन बंध नाहीं हो है। पूर्व बंध की निर्जरा होय है। ऐसैं तीन प्रकार उपयोग है। सोई पुण्य पाप का बंध अर तिनि दोऊनिका नाश ताका कारण जाननौं।

आगैं जो राग द्वेष पूर्वोक्त प्रकार बंध का कारणभूत है तौ तिनका रागद्वेषनिका उपजना काहेतैं हो है ? ऐसैं पूछे सूत्र कहै हैं।

मोहबीजाद्रतिद्वेषौ बीजान्मूलाङ्कुराविव ।
तस्माज्ज्ञानाग्निना दाह्यं तदेतौ निर्दिधक्षुणा ॥१८२॥

अर्थ—जैसें बाजतैं वृक्ष के जड़ अर अंकूरा हो है तैसें मोह मूल कारणतैं आत्मा के रागद्वेष हो है। तातैं इनि राग द्वेषनकौं जो जीव दग्ध कीया चाहै है तीह जीव ज्ञानरूपी अग्निकरि मोह दग्ध करना योग्य है।

भावार्थ—अतत्त्व श्रद्धानरूप मिथ्यात्व भाव का नाम तौ मोह है। अर इष्ट अनिष्ट पदार्थनिकौं मानि तिनि विषैं प्रीति अप्रीति करनी तिनिका नाम राग द्वेष है। सो अतत्त्व श्रद्धान ही तैं पदार्थ इष्ट अनिष्ट भासै हैं। तातैं जैसैं वृक्ष कै जड अर अंकुरा का मूल कारण बीज है। तैसैं राग द्वेष का मूल कारण मोह जानना। बहुरि जैसैं कोई जड अकुराकौ दग्ध कीया चाहै सो वाके बीज कौं दग्ध करै। तैसैं जे रागद्वेष का नाश कीया चाहै सो मोह का नाश करै। मोह का नाश भए उनका नाश सहज ही हो है। सम्यग्दृष्टी कै मोह का नाश भए पीछै कदाचित् रागद्वेष रहे भी है तो, जैसैं उपाडे रोंख की जड अर अकुरा केतेक काल रहै हैं परतु शीघ्र सूखेंगे, तैसैं ते राग द्वेष शीघ्र नाशकौं प्राप्त होहिंगे। बहुरि कोई मिथ्यादृष्टी कै मोह का सद्भाव होतैं रागद्वेष थोरे भी बाह्य प्रकटै तो जैसैं बीज होते जड अकुरे थोरे भी बाह्य दीसैं परतु शीघ्र वधैंगे तैसैं रागद्वेष शीघ्र वृद्धिकौं प्राप्त होहिंगे। तातैं राग द्वेष का मूल कारण मोहकौं जानि तिसही का नाश करना। सो जैसैं बीज जलावने का कारण अग्नि है, तैसैं मोह नाशकौं कारण ज्ञान है। ज्ञान तैं जीवादि तत्त्वनि का स्वरूप कौं यथार्थ जानैं तौ अतत्त्व श्रद्धान को नाश हो है। तातैं तत्त्व ज्ञान का अभ्यास विषैं तत्पर रहना। इतना किए सर्व सिद्धि स्वयमेव हो है।

आगैं सो इन राग द्वेषनि का बीज-भूत मोह सो कैसा है, बहुरि जाके नाश विषैं कारण कहा है, सो कहै है।

पुराणो ग्रहदोषोत्थो गम्भीरः सगतिः सरुक्।
त्यागजादित्यादिना मोहव्रणःशुध्यति रोहति॥१८२॥

अर्थ—मोह रूपी गूमडा याका है सो कैसा है, पुरातन है। गूमडा तौ पर्ये काल का भया है। अर मोह अनादिकाल तैं भया है। बहुरि कैसा है, मद दोषतैं निपज्या है। गूमडा तौ मंगलादिक ओदे मद आये निपजै है। मोह है सो पर द्रव्य का महत्वरूप परिग्रह ताके दोषतैं निपजै है। बहुरि कैसा है, गंभीर है। गूमडा तो ऊँडा हो है मोह है सो याका थाह न पाइये ऐसा बड़ा है। बहुरि कैसा है, गति सहित है। गूमडा तौ रुधि रुधिरादिक का गमन कीए है, मोह है सो नारकादिक गति का सद्भाव कीए है। बहुरि कैसा है, पीडा सहित है। गूमडा तौ पीडा दे है, अर मोह आकुलता निपजावै है। ऐसा मोहरूपी गूमडा है सो त्याग आत्मा-दिक करि शुद्ध होय है अर रौह कौं प्राप्त हो है। गूमडा तौ रुधिरादिका छोडना अर आस्यादिक पुतादिक लगावना इनि उपायनि करि शुद्ध हो है। अर आमसी रूप रौहकौं प्राप्त होय। अर मोह है सो पर द्रव्यनिका छोडना अर निज जाति का महण करना इनि उपायनि करि शुद्ध हो है अर सम्यक्त्व रूप रौहकौं प्राप्त हो है।

भावार्थ—जैसें गूमडा अपना शरीर ही विर्षे उपजै है परंतु आपकौं दुख दायक है। तैसें मोह है सो अपने ही अस्तित्व विर्षे प्रगट हो है परंतु आकुलता उपजावै है। तातैं उपाय करि याका नाश करना ही योग्य है।

आगैं मोहरूपी गूमडा को शुद्ध कीया चाहै तिह जीव कू नाश कौं प्राप्त भये भी कुटु बनि विर्षे शोक न करना ऐसैं कहै है।

सुहृदः सुखयन्तः स्युर्दुःखयन्तो यदि द्विषः ।
सुहृदोपि कथं शोच्या द्विषो दुःखयितुं मृताः ॥१८४॥

अर्थ—जो आपकौं सुखी करै ते तौ मित्र होंहि अर दुःखी करै ते शत्रु होंहि। तौ जे मित्र भी थे अर वे दुःखी करने कौं मुए तौ वे भी शत्रु भए। ते कैसैं शोक करने योग्य होंहिं।

भावार्थ—लोक विषैं जो आपकौं सुख उपजावै सो तौ मित्र कहिए अर दुःख उपजावै सो शत्रु कहिए। बहुरि जो पहलै मित्र भी था अर पीछै जो आपकौं दुःख दायक होय तौ वाकौं भी तहां शत्रु ही मानिये है। बहुरि जाकौं शत्रु मानिये ताका शोक भी नांही करिए है। तातैं इहां अपने स्त्री पुत्रादिक है ते तौ तेरी मानि विषैं मित्र थे परतु वह मरणकौं प्राप्त भये तबतौ तुझकौं दुखदायक भए। तातैं वै भी शत्रु ही भए। अब उनका शोक कहा करना सो प्रत्यक्ष देखो जैसैं शत्रु का स्मरणादिक दुःख उपजावै है तैसैं ही मूए पीछै स्त्री पुत्रादिक का स्मरणादिक भी दुःख उपजावै है। तातैं शास्त्रन्याय करि तौ स्त्री पुत्रादिक बहु हितकारी नाही। बहुरि मूए पीछै भी उनकौं हितकारी मानि शोक करै है सो यहु बड़ा मोह है। जो मोह कू दूरि किया चाहै सो स्त्री पुत्रादिक के मरणादिक होतैं भी शोक नाहीं करै है।

आगैं स्त्री पुत्रादिक मित्रनि के मरणविषैं उपज्या है दुःख जाकै ऐसा जो तू सो कहा करै है सो कहै है।

॥ शिखरणी छंद ॥

अपरमरणे मत्वास्मीयानलभ्ध्यतम रुदन्
विलपविवरां स्मिन्मृत्यौ तथात्म महात्मन ।
विगयमरणे भूय साध्य यशः परजन्म वा
कथमिति सुधी शोकं कुर्यान्मृतेपि न केनचित ॥१८५॥

अर्थ—जो जीव अतिशयकरि अलभ्य काहू प्रकार मेट्या न जाय ऐसा जो आपतें अन्य स्त्री पुत्रादिकनि का मरण ताकौं होत संतें तिनकौं अपने मानि रोवता संता विलाप करे हैं, सो जीव आप विषैं मरण अवस्था होतें तैसें ही अतिशय करि रोवता विलाप करै है या ऐसे मूरख आत्मा के भयरहित मरण होतैं निपजै ऐसा मधुर यश अर उत्कृष्ट परलोक सो कैसें होय ? न होय । यातें सुबुद्धी जीव है सो मूए भी कोई प्रकार शोक नांही करे है ।

भावार्थ—जो जीव स्त्री पुत्रादिक का मरण होतें प्रत्यक्ष आपतैं तिनिका संबंध छूटै तौ भी मोह करि तिनिकौं अपना मानता संता रोवे है विलाप करै है । सो जीव आपका मरण होतैं तौ अत्यंत शोक करै ही करै । एक इष्ट का वियोग होतैं ही शोक होइ तौ मरण समय तौ सर्व ही का वियोग हो है । तातैं जाके पुत्रादिक का वियोग विषैं शोक हो है, ताके मरण का भय रहित जो समाधि मरण सो न होय । बहुरि समाधि मरणतैं इस लोक विषैं जे यश हो है । अर परलोक विषैं उत्कृष्ट पद हो है सो ताके कैसें होय तातें ज्ञानी मोहकौं घटाइ पहले ही स्त्री पुत्रादिक कौं अपना मानता संता काहू

का मरण भये भी शोक न करै वाही कै समाधि मरण की सिद्धि हो है। ताकरि वाकै यहां यश की अर आगैं स्वर्ग मोक्षादिक की प्राप्ति हो है।

आगैं यहु शोक काहेतैं हो है, अर यहु किस कारण है सो कहै हैं।

हानेः शोकस्ततो दुःखं लाभाद्रागस्ततः सुखम्।
तेन हानावशोकः सन् सुखी स्यात् सर्वदा सुधीः ॥१८६॥

अर्थ—इष्ट सामग्री की हानितैं शोक निपजै है अर तिस शोकतैं दुःख हो है। वहुरि इष्ट सामग्री की प्राप्तितैं राग निपजै है। अर तिस रागतैं सुख हो है। तिह कारण करि सुबुद्धी जीव है सो हानि विषैं शोक रहित होत सता सदा काल सुखी हो है।

भावार्थ—सर्व जीव सुखकौं चाहै है। सुख का घात दुःख है दुःख हो है सो शोकतैं हो है। सो कहै है। सो इष्ट सामग्री का वियोग भए हो है। वहुरि जो ज्ञानी ऐसा विचार करै है। जो मोहतैं परवस्तु कूं इष्ट मानै है। ए इष्ट नाही अर ये पर वस्तु मेरे कबहू होय नाही, मेरे राखे रहै नांही, तातैं परका वियोग विषैं शोक कहा। ऐसैं विचार जो हानि होतैं भी शोक न करै ताकै दुःख काहे का होय? दुःख भये विना सुख का अभाव होय नाही। तब वै ज्ञानी सदाकाल सुखी ही रहै है। तातैं सुखी रह्या चाहै सो हानि भये शोक न करै। अर जो कोई हानि न होने का उपाय करि सुखी भया चाहै है। सो संसार विषैं कोई सामग्री की हानि होय

आकुलता हो है सो मोहतैं पर द्रव्य का ग्रहण कीए हो है जातैं यहु तो पर द्रव्यकौं ग्रहै वै अपना होइ नाही। अपने आधीन परिणमैं नाही, तहा आकुलता उपजै तातैं पर द्रव्य का त्यागकरि निराकुलता करनी सोई सुख है। सो ऐसी दशा भए वर्तमान भी सुखी हो है। अर आगामी भी याका फल परम सुख है। बहुरि पर द्रव्य का ग्रहण करि आकुलता करनी सो दुख है। सो ऐसी दशा भए वर्तमान भी दुखी हो है। अर आगामी भी याका फल दुख ही है। बहुरि शास्त्र विषैं विषय सेवन का फल दुख ही कह्या है। जहा तृष्णा करि आकुलता लीए विषय सेवै है ताही का फल दुख हो है। अर विषय सुख तौ भोगभूमिया कै वा इद्रादिक कै घने पाइए है। परतु उनकै तृष्णा थोरी तातैं ते कुगति कौं नाही प्राप्त होवै है। अर रंकादिक कौं विषय सुख नांही मिलै है। परतु तृष्णाकरि आकुलित होय नरकादिक कौं पावै है। बहुरि जो तपश्चरणादिक कष्ट का फल सुख कह्या है। सो बाह्य तौ तपश्चरणादिक करै, अतरग विषैं सक्लेशरूप दुख नाही होवै है। ताके तपका फल सुख कह्या। बहुरि तपश्चरण करता दुखी हो है ताकै आर्त्तध्यान होने करि ताका फल दुख ही हो है। तातैं जो जीव मोह घटनेतैं वर्तमान सुखी हो है सोही आगामी भी सुख कौ पावै है। अर मोह बधने तैं वर्तमान दुखी हो है तातैं सो ही आगामी भी दुखपावै है। शास्त्र विषैं भी दुःख शोकादिक तैं असाताका बध कह्या है। असाताका उदय आए दुखी ही हो है। तातैं दुख का फल सुख है ऐसा भ्रमकरि परलोक के सुख का उपायतैं परान्मुख मति होहु बहुरि जो इहां विषय सुख छोडिये है सो मिश्री मिलै जैसैं गुड का स्वाद बुरा लागै तैसैं शाति रस पाए विषय सुख नीरस भासैं

ही होय तातैं तहां शोक न करना। सो ही सुखी होन का उपाय है।

आगे कहै हैं जो इहां सुखी होय सो परलोक विषैं कैसा होय सो कहै हैं।

सुखी सुखमिहान्यत्र दु:खी दु:खं समश्नुते ।
सुखं सकलसन्यासो दु:खं तस्य विपर्यय ॥१८७॥

अर्थ—इस लोक विषैं जो सुखी है सो परलोक विषै भी सुख कौं पावै है अर इस लोक विषैं दुखी है सो परलोक विषैं भी दुखकौं पावै है। तहां सर्व प्रकार वस्तु का त्याग सो तो सुख है। अर ताका उलटा परवस्तु का ग्रहण सो दुःख है।

भावार्थ—कोई जीव ऐसा भ्रम करै कि वर्तमान सुख छोडि कष्ट दुःख सहिये तौ परलोक विषैं सुख होय। सो परलोक तौ परोक्ष है, न जानिये तहाँ कहा होइगा? अब इहां सुख छोडि कष्ट दुःख सहिये सो तो उचित नाहीं। ताकौं समझाइये है। जो इहां दुखी होइ सो परलोक विषैं सुख पावै ऐसा तू भ्रम मति करै। जो इहां सुखी होइ सोही परलोक विषैं भी सुखी हो है। अर इहां दुःखी होइ है सोई परलोक विषैं भी दुखी होय है। इहां प्रश्न—जो शास्त्रनि विषैं तौ यहु प्रसिद्ध है जो विषय सुख सेवै सो दुःख कौं पावै। अर तपश्चरणादिक कष्टकौं सहै सो सुखकौं पावै, तुम कैसें कहौ हौ। ताका उत्तर—तू ही बाह्य सामग्रीतैं सुख दुःख मानै, है सो तेरै भ्रम है। बहुरि हम कहै हैं जो अपने परिणाम आकुलता रहित होय सो तो सुख है, अर आकुलता सहित होय सो दुःख है। बहुरि

आगे अब सर्व संग का त्यागी मरण जन्म विषैं जाकै समान बुद्धि पाइए, ऐसा मुनि सर्व शास्त्र का ज्ञाता, दुर्द्धर तप का करन हारा ताकौं शिक्षा देता सूत्र कहै हैं।

॥ पृथ्वीछंद ॥

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो
यदीच्छसि फलं तयोरिह हि लाभपूजादिकम्।
छिनत्सि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम्॥१८६॥

अर्थ—सर्व शास्त्र कूं पढ़करि अर चिरकाल पर्यंत घोर तपकूं सेय करि जो तू तिनका फल इस लोक ही विषैं लाभ बड़ाई आदि फल कौं चाहै है, तो तू सूना विवेक रहित है चित्त जाका ऐसा होता संता भला तप रूपी वृक्ष का फूलहीं कौ छेदै है। इस तप का जो भला रस कूं लीये याका फल स्वर्ग मोक्षादिक ताकूं तू कैसैं पावैगा?

भावार्थ—जैसैं कोई वृक्ष उगावै तहां पहलै फूल होय, पीछै फल लागै। बहुरि जो फूल ही कू छेदि आप अंगीकार करै तौ वाका मीठा पाका फल की प्राप्ति न होइ। तैसैं जो जीव शास्त्राभ्यास बहुत करै अर उत्कृष्ट तपश्चरण करै, तहां पहलै लाभ पूजादिक निपजै, भक्त पुरुष मथोरथ साधै वा स्वयमेव ऋद्ध चमत्कारादिक उपजै ऐसैं तौ लाभ होइ। अर महतता विशेष होइ ऐसा पूज्य होय इत्यादि कार्य निपजै पीछै स्वर्ग मोक्ष का फल की

तातैं विषय सुख न भोगवे है किछू तिनकै छोडने विषै दुःखी न हो है। तातैं विषय सुख छोडन का भी भय मतिकरै। सांचा धर्म साधनतैं वर्तमान भी सुख हो है, अर आगामी भी सुख हो है। तातैं ऐसा ही कार्य करना योग्य है।

आगैं पूछे हैं कि पुत्रादिक का मरणतैं तो शोक हो है अर तिनकी उत्पत्ति तैं हर्ष होय सो यहु उत्पत्ति कहा है, ऐसें पूछे उत्तर कहे है।

मृत्योर्मृत्यन्तरप्राप्तिरुत्पत्तिरिह देहिनाम्
तत्र प्रमुदितान्मन्ये पाश्चात्ये पक्षपातिनः ॥१८८॥

अर्थ—इस संसार विषैं देहधारी जीवनि के एक मरणतैं अन्य मरण की प्राप्ति ताका नाम उत्पत्ति है। तातैं जे तिस उत्पत्ति विषैं हर्षवंत हो हैं तिनिकों मैं पीछे भया मरण विषैं पक्षपाती मानों हौं।

भावार्थ—पुत्रादिक का जन्म भए हर्ष करिये है अर तिनका मूए पीछे शोक करिये हैं। सो जे जन्म है सो नवीन मरण हो है तातैं आयु के नाश का नाम मरण है, सो समय समय आयु घटै है। तातैं याकै सदा काल मरण पाइए है। तहाँ पूर्व पर्याय संबंधी मरण छांडि नवीन पर्याय संबंधी मरण का प्रारंभ तिसही का नाम जन्म है। ऐसें जन्म विषैं जे हर्ष मानें हैं ते नवीन मरण के पक्षपाती अनुरागी हैं। बहुरि जे मरण के अनुरागी तिनसों परस्पर हित संबंध कैसें मानिये। ऐसें युक्ति करि पुत्रादिक का जन्म मरण विषैं हर्ष विषाद करना छुड़ाया है।

तपश्चरण करि इष्ट अनिष्ट सामग्री मिले राग द्वेष न होने के साधन करने तैं कषायनि कौं घटावै है, तिसका तौ शास्त्र पढना अर तप करना सफल है। बहुरि जो जीव शास्त्र पढिकरि वा तपश्चरणकरि विषय कषायनि के कार्यनिकौं साधै मन रमावने के अर्थि वा मान बडाई के अर्थि वा भोजन धनादिक के अर्थि शास्त्र पढ़ै है, तप करै है, सो जीव तौ लोक की पाति विषै बैठ्या है। जैसैं अन्यलोक विषय कषायनि के अर्थी व्यापार सेवादिक कार्य करै हैं तैसैं इसनैं यहु उपाय कीया है। इहां तर्क —जो व्यापारादिक विषैं तो हिंसादिक हो है, इस उपाय विषैं कोई हिंसादिक है नाही, तातैं व्यापारादिक तैं तौ यहु उपाय भला है। ताका उत्तर —व्यापारादिक विषैं तौ बाह्य पाप विशेष दीखै है। अर इस उपाय विषैं अतरग पाप बहुत हो है।

आगैं कोऊ पूछै है कि शृगार सहित लोकनिकू अवलोक करि विषयनि की अभिलाषा जीवनिकै उपजै है। सो कैसैं विषय कषाय जीते जाय ? तब व गुरु उत्तर कहै हैं।

॥ वसत तिलकाछ्द ॥

दृष्ट्वा जनं व्रजसि किं विषयाभिलाषं
स्वल्पोप्यसौ तव महज्जनयत्यनर्थम्।
स्नेहाद्युपक्रमजुषो हि यथातुरस्य
दोषो निषिद्धचरणं न तथेतरस्य ॥ १६१ ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू लोकनिकौं शृगार सहित देख करि कहा विषयाभिलाष कू प्राप्त हो है ? यह अल्प हू विषयाभिलाष तोकौं

प्राप्ति होइ, बहुरि जो जीव लाभ पूजादिक कौं आप चाहै, आप अंगीकार करै, लोभी होइ करि भक्तपुरुषनि तैं किछू लीया चाहै वा उनकौं दीया धनादिक कौं अंगीकार करै वा ऋद्धि चमत्कारादिककौं चाहै, तिनकौं भये सन्तुष्ट होय। बहुरि मानी होय करि आप महंत पणौं चढायणौं चाहै या महंतता चढ़ई भए मदवान होय। सो जीव परम सुख रूप रसकौं लीये प्रगटै, ऐसा स्वर्ग रूप मोक्ष फल ताकौं न पावै। तातैं यहु सीख है शास्त्राभ्यास वा तपश्चरण का साधन करि लाभ पूजादिक का अर्थी न होना।

॥ पृथ्वीछंद ॥

तथा श्रुतमधीत्य शश्वदिह लोकपंक्तिं विना
शरीरमपि शोषय प्रथितकायसंक्लेशनैः ।
कषायविषयद्विषो विजयसे यथा दुर्जयान्
शमं हि फलमामनन्ति मुनयस्तपः शास्त्रयो ॥१६०॥

अर्थ—हे भव्य ! तू लोक की पंक्ति बिना इहां जैसैं निरंतर शास्त्रकौं पढ़ि अर विस्तार लीए काय क्लेश तिनिकरि शरीर कौं भी मासि जैसैं दुर्जय कषाय विषय रूपी वैरीनिकौं तू जीतै। जातैं महामुनि हैं। ते तप अर शास्त्र का फल उपशम भाव ही कौं कहै है।

भावार्थ—केवल शास्त्र का पढ़ना अर तप का करना ही कार्यकारी है नांही। कार्यकारी तो उपशम भाव है। तहां जो जीव शास्त्र पढ़िकर तत्व ज्ञानतैं कषायनि कौं घटावै है वा

तपश्चरण करि इष्ट अनिष्ट सामग्री मिले राग द्वेष न होने के साधन करने तैं कषायनि कौ घटावै है, तिसका तो शास्त्र पढना अर तप करना सफल है। बहुरि जो जीव शास्त्र पढिकरि वा तपश्चरणकरि विषय कषायनि के कार्यनिकौं साधै, मन रमावने के अर्थि वा मान बडाई के अर्थि वा भोजन धनादिक के अर्थि शास्त्र पढ़ै है, तप करै है, सो जीव तौ लोक की पांति विषैं बैठ्या है। जैसैं अन्यलोक विषय कषायनि कै अर्थी व्यापार सेवादिक कार्य करै हैं तैसैं इसनैं यहु उपाय कीया है। इहां तर्क — जो व्यापारादिक विषैं तो हिंसादिक हो है, इस उपाय विषैं कोई हिंसादिक है नाही, तातैं व्यापारादिक तै तो यहु उपाय भला है। ताका उत्तर — व्यापारादिक विषैं तो बाह्य पाप विशेष दीखै है। अर इस उपाय विषैं अंतरंग पाप बहुत हो है।

आगैं कोऊ पूछै है कि शृंगार सहित लोकनिकूं अवलोक करि विषयनि की अभिलाषा जीवनिकै उपजै है। सो कैसैं विषय कषाय जीते जांय ? तब व गुरु उत्तर कहै हैं।

॥ वसत तिलकाछंद ॥

दृष्ट्वा जनं व्रजसि किं विषयाभिलाषं
स्वल्पोप्यसौ तव महज्जनयत्यनर्थम्।
स्नेहाद्युपक्रमजुषो हि यथातुरस्य
दोषो निषिद्धचरणं न तथेतरस्य ॥ १६१ ॥

अर्थ — हे भव्य ! तू लोकनिकौं शृंगार सहित देख करि कहा विषयाभिलाष कूं प्राप्त हो है ? यह अल्प हू विषयाभिलाष तोकौं

महा अनर्थ उपजावे है। जैसें रोगी कू दधि दुग्ध घृतादिक का किंचित् हू सेवन अयोग्य आचरण है सो दोष कू उपजावे है तैसा और कू नांही।

भावार्थ—अज्ञानी जीव आकमिक शृंगारादि सहित देखि करि विषयनि की वांछा करे है सो तू कदाचित् मतिकरै। यह अल्प हू अभिलाष तोहि महादुःख का कारण है। जैसें कोऊ रोगी सन्निपात वस्तु का किंचित् हू सेवन करै, ताकैं रोग की अतिवृद्धि होय। सो रोगीनिकू सन्निपात वस्तु का सेवन उचित नांही। तैसें विवेकीनिकू विषयाभिलाष उचित नांही।

आगे कहे हैं जो जीव मात्र है तिनिके दुख दायक वस्तुनिसू अरुचि हो है, सो ए विषय तेरै भव भव के दुखदाई तिनि विषैं वा है अभिलाष करना कैसें योग्य है।

॥ हिरणीछंद ॥

अहितविहितप्रीतिः प्रीतं कलत्रमपि स्वयं
सकृदपकृतं श्रुत्वा सद्यो जहाति जनोप्ययम्।
स्वहितनिरत साक्षाद्दोषं समीक्ष्य भवे भवे
विषयविषवद्ग्रासाभ्यासं कथं कुरुते बुधः ॥१६२॥

अर्थ—जैसें कोऊ मनुष्य अपनी प्यारी स्त्री जासू अधिक रची है, अर वाकीं दुराचार सुनैं तो सुनकरि तत्काल आप दि तजे। तैसें आत्म कल्याण विषैं सावधान जो विवेकी,

भोजन ता समान जो ए विषय, तिनिका भव भव विषैं दोष देखि करि कैसैं इनिका सेवन करै ? सर्वथा न करै।

भावार्थ—काहू कै स्त्री सूं अधिक प्रीति होइ। अर वह वाकूं दुराचारनी सुनै, तौ तत्काल तजै। तैसैं पंडित विवेकी आत्मार्थी भव भव विषैं विषयनि के दोष देखि करि कैसैं विषयानुरागी होय ? सर्वथा न होय। विष का भरया जो भोजन मिष्ट तौ लागै, परतु प्राण हरै, त्यौं ए विषय रमणीक भासै हैं, परतु अनत भव प्राण हरै हैं।

आगैं कहै हैं कि जा समय तू विषयनि का अभ्यास करै है ता समय कैसा है अर जब इनितैं रहित हो है तब कैसा हो है।

॥ शार्दूल विक्रीडितछन्द ॥

आत्मन्यात्मविलोपनात्मचरितैरासीद् रात्मा चिरं
स्वात्मा स्याः सकलात्मनीनचरितैरात्मीकृतैरात्मनः।
आत्मेत्यां परमात्मतां प्रतिपतन् प्रत्यात्मविद्यात्मकः
स्वात्मोत्थात्मसुखो निषीदसि लसन्नध्यात्ममध्यात्मना ॥१६३॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू आत्मज्ञान के लोपनहारे जे विषय कषायादिक तिनिकी प्रवृत्तिकरि चिरकाल दुराचारी भया। अर जब तू आत्मा के सम्पूर्ण कल्याण के कारण ज्ञान वैराग्यादिक अपने निजभाव तिनिकूं अंगीकार करै तब तिनिके अंगीकार करिबे करि श्रेष्ठ आत्मा है। आत्मा ही पावै जाकौं ऐसी जो परमात्मा-

दशा, ताहि प्राप्त होय संता केवलज्ञान स्वरूप भया संता आत्मकरि उपज्या जो आत्म सुख ता विषैं शोभायमान हुआ संता, अपने शुद्धात्म भाव करि अपने अध्यात्म स्वरूप विषैं तिष्ठैगा।

भावार्थ—जब लग तेरै बहिरात्म दशा है तब लग विषय कषायनि के सेवन करि दुराचारी है। अर जब सकल कल्याण रूप ज्ञान वैराग्यादिक का आचरण करै तब अंतरात्मा होय करि परमात्म पद पावै। तहां केवल ज्ञान रूप भया संता अनंत सुख विषैं निरचल तिष्ठै है।

आगैं कहै है कि या जीव कू सदाकाल दुख का कारण शरीर है ताके अभाव के निमित्त शास्त्रोक्त विधि कर यत्न करना योग्य है।

॥ पृथ्वीछंद ॥

अनेन सुचिरं पुरा त्वमिह दासवद्वाहित—
स्ततोऽनशनसामिभक्तरसवर्जनादिक्रमैं ।
क्रमेण विलयावधि स्थिरतपो विशेषैरिदं
कदर्थय शरीरकं रिपुमिवाद्य हस्तागतम् ॥१६४॥

अर्थ—या जगत विषैं या शरीरनैं तोकूं आगैं अनतकाल दास की नांई भ्रमायो तातैं अब तू उपवास अर अल्प आहार तथा रस परित्यागादि विधि रूप तपके विशेषकरि निरंतर अनुक्रम तैं मरण पर्यंत याहि क्षीणकरि, जैसैं कोऊ हाथ आये शत्रु कू क्षीण करै।

भावार्थ—आगैं या शरीरमैं ताकू अनंत काल दासवत भव

भव विषैं भटकाया। अर तै याके सबंध तैं अनेक दुःख पाये। तातै अब तू जैसै कोऊ हाथ आये वैरी कूं क्षीण करै। तैसैं तू नाना प्रकार तप करि या शरीर कूं क्षीण करि।

आगैं कहै हैं कि या ससार विषैं जो कछू अनर्थ की परपराय है ताका मूल कारण यह शरीर है, तातैं शास्त्रोक्त तप करि याही क्षीण करि।

॥ वसन्ततिलकाछंद ॥

आदौ तनोर्जननमत्र हतेन्द्रियाणि
काङ्क्षन्ति तानि विषयान् विषयाश्च मानं।
हानिप्रयासभयपापकुयोनिदाः स्यु—
र्मूलं ततस्तनुरनर्थपरम्पराणाम् ॥१९५॥

अर्थ—प्रथम ही शरीर की उत्पत्ति होय है। ता शरीर विषैं ए दुष्ट इंद्रिय विषयनि कूं वांछै है। अर ते विषय महतताकी हानि करै है। अर महाक्लेश के कारण हैं। बहुरि भय के देन-हारे अर पाप के उपजावन हारे, नर्क निगोदादि कुयोनि के दायक हैं। तातै यह शरीर ही अनर्थ की परंपराय का मूल कारण है।

भावार्थ—ससार दशा विषैं यह जीव पूर्व शरीर कूं तजि नवीन शरीर कूं धारै है, सो शरीर विषैं ए दुष्ट इंद्रिय अपने विषयनि कूं वांछै है। अर ते विषय अपमान के कारण क्लेश के कर्ता, भयकारी, पाप के उपजावनहारे, कुगति के देने हारे हैं। तातैं यह शरीर ही अनर्थ की परपरा का मूल कारण जानना।

आगैं कहे हैं कि ऐसे शरीर कूं पोषिकरि अज्ञानी जीव कहा करै सोई कहे हैं ।

शरीरमपि पुष्णन्ति सेवन्ते विषयानपि ।
नास्त्यहो दुष्करं नृणां विषा द्वाञ्छन्ति जीवितुम् ॥१९६॥

अर्थ—अहो लोको । मूर्ख जीव कहा कहा न करै । शरीर कूं तौ पोषैं, अर विषयनि कूं सेवैं । मूर्खनिकूं कछू विवेक नांही, विष तैं जीया चाहै । अविवेकीनि कूं पाप का भय नांही अर विचार नांही, विनो विचारैं न करने योग्य कार्य होय सो करैं ।

भावार्थ—जो पण्डित विवेकी हैं ते शरीर सूं अधिक प्रेम न करै । नाना प्रकार की सामग्री करि याहि न पोषैं । अर विषयनि कू न सेवै । अर जे मूढ जन हैं ते शरीर कू अधिक पोषै, अर विषयनि कू सेवै न करिवे योग्य कार्य की संका न करै । जो विषयनि कू सेवै हैं ते विष खाय जीया चाहै हैं ।

आगैं कहे हैं शरीर कूं तपादिक करि पीरा उपजावते हू मुनि कलिकाल के दोष तैं पर्वत की गुफादिक काय क्लेश के स्थानक तिनकूं तजिकरि ग्राम की समीप आय बसे हैं ऐसा दिखावै है ।

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्यां यथा मृगाः ।
वनाद्विशन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

अर्थ—जैसैं मृग दिन कूं वन मैं जहां भ्रमणकरि सिंहादिक के भय तैं रात्रि विर्षै वन सैं ग्राम के समीप आय रहै हैं तैसैं

कलिकाल विषैं मुनि हू दिन विषैं बन निवास करि रात्रि कूं ग्रामकै समीप आवै हैं। सो हाय! हाय! यह बडा कष्ट है। मुनि महा निर्भय, ते मृगनि की नांई ग्राम के समीप कैसे आय वसै?

भावार्थ—मृगनि की यह रीति है-दिनकू बन विषैं विचरै हैं, अर रात्रि कूं ग्राम कै निकटि आय बसै। तैसैं दुःखम काल विषैं मुनिहू रात्रि विषैं ग्राम कै समीप निवास करै यह बडा दोष है। मुनिनि कूं गिर सिखर गिर गुफा विषम वन नदीनि के तट इत्यादि निर्जनस्थानक ही विषैं रहना योग्य है।

आगैं कहै हैं कि तपहू कूं ग्रहकरि जे इन्द्रीनिकै वशी भूत होय हैं तिनतैं गृहस्थ अवस्था ही श्रेष्ठ है।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
श्वः स्त्रीकटाक्षलुण्टाकैलु प्तवैराग्यसंपदः ॥१९८॥

अर्थ-या जगत विषैं स्त्रीनि के नेत्रनि की जो कटाक्ष तेई भये लुटेरे, तिनकरि वैराग्य सपदा लुटाय दीनभया अर होनहार है ससार भ्रमण जातैं, ऐसैं तपतैं गृहस्थपना ही श्रेष्ठ है।

भावार्थ—गृहस्थ अवस्था विषैं तौ निज स्त्री का तो सेवन है ही। अर जे तप कूं धारि करि नगर की स्त्रीनि के नेत्रनि जो कटाक्ष, तेई भए लुटेरे, तिनकरि लूटिगई है वैराग्य सपदा जिनकी ऐसे तपतैं गृहस्थ अवस्था ही श्रेष्ठ जाननी। वह तप ससार ही का कारण है।

आगैं कहै हैं—या शरीर।कि योगतैं तू स्त्री का अनुरागी होय दुखीभया सो शरीर तेरी लार एक पैंड न जाय, तातैं शरीरादिक सू स्नेह तजि।

॥ मंदाक्रांता छन्द ॥

स्वार्थ भ्रंशं त्वमविगणयन् त्यक्तलज्जाभिमानः
संप्राप्तोस्मिन् परिभवशतैर्दुःखमेतत् कलत्रम्।
नान्वेति त्वां पदमपि पदाद्विप्रलब्धोसि भूयः
सख्यं साधो यदि हि मतिमान् मा ग्रहीर्विग्रहेण ॥१६६॥

अर्थ—हे भव्य ! जीव तू या शरीर के होतें सते अपना अर्थ जो शुद्धोपयोग रूप आत्म कल्याण, अथवा पंचमहाव्रत यती का धर्म तथा अणुव्रत रूप श्रावक का धर्म ताकै नाश कूं न गिणता संता अपमान कै सैंकर नि करि स्त्री संयोग कूं प्राप्त भया सो इस स्त्री का संबंध ही महादुःख का मूल है। कैसा है तू तज्या है लज्जा अर अभिमान जानैं। इहां अ समास शब्द का अर्थ गय म न होना, अज्ञाको बुधि जानो। सो तू स्त्री का संगतैं निर्लज्ज अर अज्ञानक भया जो समास हानना नांही। सो ते तो शरीर के अर्थि अपना अर्थ खाया अर यह तो तेरे संगि एक पैंड न जाय। सो तू ऐसा ठगाया है। जो वारंवार याही मूं प्रीति करै है। अब ताहि कहै हैं जो बुद्धिवान है तो शरीर मूं प्रीति मति करै।

भावार्थ—तू तो शरीर का नाना प्रकार जतन करै है, अर याके का अनुराग होय निर्लज्ज अर दीन भया है।

अर शरीर तौ तेरै साथि एक पैंड न जाय। तातै हे भव्य! तू या देह तैं नेह तजि। अर देह के प्रसगी हैं पुत्र कलत्रादि, तिनतैं प्रीति तजि।

आगैं कहै हैं जे मूर्तीक पदार्थ हैं तिनिहू मैं परस्पर मिलाप होतैं भी भेद न मिटै है। काहू का लक्षण काहू सू न मिलै। तौ मूर्तीक अर अमूर्तीक कैसैं एक होहिगे। यह तेरे प्रीतति न आवै सो बडी भूलि है।

॥ शिखरणीछन्द ॥

न कोप्यन्योन्येन व्रजति समवायं गुणवता
गुणी केनापि त्वं समुपगतवान् रूपिभिरमा।
न ते रूपं ते यानुपव्रजसि तेषां गतमति—
स्ततश्छेद्यो भेद्यो भवसि बहुदुःखे भववने ॥२००॥

अर्थ—कोई ही गुणी कहिये द्रव्य सो काहू ही द्रव्य सौं एकता के भाव कू न प्राप्त होय यह प्रत्यक्ष है। अर तू कर्म के योग करि रूपी पदार्थनि सू ममत्त्व भाव कूं प्राप्त भया जिन शरीरादि पदार्थनिपरि तू आशक्त होइ एकता जानि प्रवर्त्या है, ते पुद्गल तेरे रूप नाही! तू तो निर्बुद्धी हुवा वृथा ही एकता मानै है। या अभेद बुद्धिकरि तिनिसूं आशक्त भया भव वन विषैं बहुत दुखी होयगा, छेद्याजायगा, भेद्याजायगा, भव भव दु ख भोगवैगा, तातैं देहादिक सूं नेह तजि।

भावार्थ—रूपी पदार्थ जे परमाणू तेऊ सब भिन्न हैं यद्यपि मिलिकरि बंधरूप होय है। तथापि न्यारे न्यारे हैं। तो तू अमूर्तीक पदार्थ तेसौं ए कैसें मिलै अर तू इनसौं कैसें मिलै। तातैं इनसौं राग तज।

आगैं कहै हैं पूर्वैं जाका वर्णन कीया सो शरीर ऐसा है तौ ता विषैं ममता बुद्धिकरि आसा क्यौं धरनी।

माता जातिः पिता मृत्युराधिव्याधी सहोद्गतौ।
प्रान्ते जन्तोर्जरा मित्रं तथाप्याशा शरीरके ॥२०१॥

अर्थ—कैसा है शरीर। ए पचि तौ जाकी माता है अर मरण जाका पिता है। अर आधि कहिये मन का सोच, व्याधि कहिए वायु पित्त कफ आदि रोग, यही जाके भाई। अर अंत विषैं जरा मित्र है। शरीर तौ ऐसा, तथापि शरीर विषैं तेरी आशा है, बड़ा अचिरज है।

भावार्थ—शरीर तौ जन्म मरण आधि व्याधि जरा रूप है। अर तूतौ अजर अमर अनादि निधन अखंड अव्याबाध है। तेरा अर याका कौन संबंध है।

आगैं कहै हैं तू तौ शुद्ध बुद्ध स्वरूप है परंतु शरीर करि अशुद्धताकू प्राप्त भया।

॥ वसंत तिलका छंद ॥

शुद्धोप्यशेषविषयावगमोप्यमूर्तो—
प्यात्मन् त्वमप्यतितरामशुचीकृतोसि।

मूर्तं सदाऽशुचि विचेतनमन्यदत्र
किन्ना न दूषयति धिग्धिगिदं शरीरम् ॥२०२॥

अर्थ—हे चिदानंद ! तू तो शुद्ध कहिए निर्मल है। अर पस्त निज पर का ज्ञाता है। अमूर्तिक है तौऊ या जडनें तोहि शुचि किया। यह मूर्तिक सदा अशुचि अचेतन ससार विषैं जे शर कपूरादि सुगंध वस्तु हैं तिनहूं कूं दुर्गंध करै है। तातैं क्कार धिक्कार या शरीर कूं।

भावार्थ—जे केशर कपूरादि सुगंध द्रव्य हैं तेऊ शरीर के बंध तैं दुर्गंध होय जाय हैं। याकैं सबंध तैं तू महा दुखी भया, ार गति के दुख भोगये, अशुचि अपावन देह का धारण करि अशुचि कहाया। तातैं यासूं प्रेम तजि। धिक्कार या शरीर कूं ताके प्रसंग करि तू ससार वन विषैं भ्रम्या।

आगैं कहै हैं या शरीर विषैं तू अनुराग बुद्धिकरि नष्ट भया नैदि शरीर कूं अनित्य जान्या।

हा हतोसितरां जन्तो येनास्मिस्तव सांप्रतम्।
ज्ञानं कायाऽशुचिज्ञानं तत्त्यागः किल साहसः ॥२०३॥

अर्थ—हाय ! हाय ! हे प्राणी ! तू अत्यंत ठिगाया, नष्ट भया, शरीर के ममत्व करि अति दुखी भया। कायाका अशुचि जानना यही ज्ञान है अर शरीर कूं पवित्र जानना यही अज्ञान है। शरीर का ममत्व छोड़ना, निरादर करि तजना यही बड़ा साहस है।

भावार्थ—अनादि कालतैं अपना स्वरूप कू तैं न जान्या, परकौं आपा मानि नष्ट भया। यह शरीर अशुचि सू महा पवित्र। तेरा अर याका कहा संबंध ? यातैं देह सू नेह तजि निर्ममत्व होहु ज्यौं बहुरि शरीर का धारण न करै।

आगैं कहै हैं कि यद्यपि साधुके शरीर सू ममत्व नाहीं, तथापि प्रबल रोग के उदयतैं चित्त विषैं व्याकुलता होती हायगी, ताका दाय मैं वह व्याख्यान करै हैं।

> अपि रोगादिभिर्वृद्धैर्न मुनिः खेदमृच्छति ।
> उडुपस्थस्य कः क्षोभः प्रवृद्धेऽपि नदीजले ॥२०४॥

॥ वसंत तिलकाछन्द ॥

> जातामय प्रतिविधाय तनौ वसेद्वा
> नो चेत्तनु त्यजतु वा द्वितयी गति स्यात् ।
> लग्नाग्निमावसति वह्निमपोह्य गेही
> निर्हाय वा व्रजति तत्र सुधीः किमास्ते ॥२०५॥

अर्थ—रोगादिक की वृद्धि हू करि मुनि खेद कू प्राप्त न होय। जैसैं नदी का जल वृद्धि कू प्राप्त भया तथापि दृढ नाव विषैं तिष्ठ्या ताकू कहा विकल्प ? तैसैं ज्ञानी मुनिनि कू रोगादिक की वृद्धि हू विषैं कहा विकल्प ? अर अणुव्रती श्रावक कै कदाचि रोग उपज्या तौ निर्दोष औषधादिक के योगतैं रोग शांति करि शरीर विषैं बसै। अर प्रबल रोग की शांतता न जाने तौ अनशन वृत्ति

करि शरीर कू तजै। ए दोय ही रीति। जैसैं घर कै अग्नि लागी तब सुबुद्धी ताहि बुझाय घर मैं बसै, अर बुझता न जानैं तौ घर छोडि दूर जाय बसै। तैसैं शरीर रहतो जानैं तौ योग्य औषधादिक करि रोग की निवृत्ति करै। अर रहना न जानै तौ निर्ममत्व होय तजै।

भावार्थ—श्रावक को तौ दोय रीति है। पवित्र औषधादिक का सेवन करै, तथा न भी सेवन करै। अर साधु इच्छा करि तौ औषध का सेवन न करै। अर श्रावक निर्दोष औषध आहारादिक दे तौ निराग भावनि तैं ले राग भाव न करै।

आगै कहै हैं औषधादिक करि रोग न मिटै तौ ज्ञानीनि कू शरीर नाश होने का भय न करणा। मरण का भय अज्ञानीनि कै होय है।

शिरस्थं भारमुत्तार्य स्कन्धे कृत्वा सुयत्नतः।
शरीरस्थेन भारेण अज्ञानी मन्यते सुखम् ॥२०६॥

अर्थ—जैसैं कोऊ शिर का बोझ उतारि काधै धरि सुख मानै है तैसैं जगत के जीव रोग का भार उतारि शरीर के भारकरि सुख मानै हैं।

भावार्थ—जगत के जीव रोग गए शरीर रहे सुख मानै हैं अर ज्ञानी जीव शरीर का सबध ही रोग जानै है। तातैं शरीर जाय तौ विषाद नाही। जैसा शिर का भार तैसा ही कांधे का भार। जैसैं रोग का दुख तैसाही देह धारण का दुख है।

आगैं याही अर्थ कू दृढ करै है।

यावदस्ति प्रतीकारस्तावत् कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।
तथाप्यनुपशान्तानामनुद्वेग प्रतिक्रिया ॥२०७॥

अर्थ—जो लौं रोग को उपशांतता होती दीखै तौलौं याग्य औषधादिक का ग्रहण करै अर जो रोग न मिटै तौ विकल्प न करै। शरीर सू उदास होना निर्विकल्प रहना यही बड़ा यत्न है।

भावार्थ—जैसैं शरीर की स्थिति है तैसैं रहै। अर स्थिति पूर्ण भए कदाचित् रहै तातैं हर्ष शोक नांही।

आगैं शिष्य पूछै है—कौन उपाय तैं शरीर सू उदासीनता करनी।

यदादाय भवेज्जन्मी त्यक्त्वा मुक्तो भविष्यति ।
शरीरमेव तत्याज्य किं शेषै क्षुद्रकल्पनै ॥२०८॥

अर्थ—तैजसकार्माण मूल शरीर है तिनिके यागतैं नये नव शरीर धरि संसारी जीव भ्रमण करै है। मनुष्य अर तिर्यंच होय तब औदारिक शरीर धारैं। देव अर नारकी होय तब वैक्रियिक देह धारै। अर तैजसकार्माण के अभाव तैं शरीर न धरै तब मुक्त हाय। शरीर का धारना सोई संसार। तातैं शरीर का सर्बंध त्याज्य ही है। क्षुद्र विकल्पनि करि कहा ?

भावार्थ—शरीर के धारक संसारी अर अशरीरी सिद्ध तातैं शरीर मैं ममत्व तजना है।

आगैं कहै हैं इह जीव तौ शरीर का उपकार करै है। अर शरीर यास प्रतिकूल है। तातैं शरीर का ममत्व तजना।

नयन्सर्वाशुचिप्राय शरीरमपि पूज्यताम्
सोप्यात्मा येन न स्पृश्यो दुश्चरित्रं धिगस्तु तत् ॥२०६॥

अर्थ--सर्व अशुचि का मूल जो शरीर ताहू कूं आत्मा पूज्य पद कूं प्राप्त करै है। अर शरीर आत्मा कू चाडालादिक के जन्मकरि अस्पर्श करै है। तातैं ताके दुराचार कूं धिक्कार होहु। आत्मा तौ या मलिन शरीर सू उपकार करै है। मुनिपद के योग तैं देव अर मनुष्यादिकनि करि सेवनीक करै है।

अर शरीर अशुभ कू उपनाय जीव कौ कुयोनि मैं डारि ऐसा करै है जो कोऊ भेटै नाही। तातैं शरीर कू धिक्कार।

भावार्थ--आत्मा तौ शरीर कू सयमादि साधनकरि पूज्य करै है अर शरीर अज्ञान दशा विषैं जीव कू नरक निगोद तिर्यंच गति तथा मनुष्यादि जन्म करि अस्पर्श करै है। सो अचिरज नाही। भला होय सो भली ही करै, बुरा होय सो बुरी ही करै।

आगैं कहै हैं ससारी जीव शरीरादि तीन भाग कूं धरै है सो श्लोक दोय मैं कहै हैं।

रसादिराद्यो भागः स्याज् ज्ञानावृत्यादिरऽन्वितः।
ज्ञानादयस्तृतीयस्तु ससार्येवं त्रयात्मकः ॥२१०॥

भागत्रयमिदं नित्यमात्मानं मन्त्ववर्तिनम् ।
भागद्वयात् पृथक् कर्तुं यो जानाति स तत्त्ववित् ॥२११॥

अर्थ—आदि का भाग तौ सप्तधातु मई शरीर है। ता पीछे दूजा ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म का भाग है। अर तीसरा भाग ज्ञानादिक निज भाव का है। या भांति ससारी जीव तीन भाग कू धरै है। तीन भाग मई ससारी जीव है, जो शरीर का भाग अर कर्म का भाग इनि दोय भागनितैं जीव कू जुदा करन की विधि जानैं सो तत्त्व ज्ञानी कहिये।

भावार्थ—शरीर अर शरीर के मूल कारण कर्म तिनितैं जीव कू जुदा करि ज्ञानादिक निज भाव विर्षे रमैं सोई तत्त्वज्ञानी अर पर वस्तु विर्षे रत होय सो अज्ञानी है।

आगे शिष्य प्रश्न करै है:—दोय भागतैं आत्मा का जुदा करना तप के आचरण तैं होय है सो तप करना कठिन ताका समाधान करै है।

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान् ।
चित्तसाध्यान् कषायारीन् न जयेयत्तदज्ञता ॥२१२॥

अर्थ—जो तू क्लेश सहिबे कू असमर्थ है चिरकाल दुर्धर तप न करै तौ मन ही करि जीत ताहि ऐसे क्रोध मान माया लोभ वैरी तिनिकू तौ जीति अर न जीतै तौ बड़ी अज्ञानता है। कषाय जीतिबे मैं तौ काय क्लेश नाहीं मनका का सुप्रटनि है।

भावार्थ—शरीर के क्लेश करि तपकौ तू कठिन जानै है। दुर्द्धर तप न करि सकै तौ मन वसिकरि कषाय ही क्षीण पारि। कषाय जीतिवे मे कायक्लेश नाही, मन ही का कारण है। ए कषाय जीव के शत्रु हैं।

आगै कहै हैं कि जौ लग कषायनि कू-न जीतैं तौ लग मुक्ति के कारण जे उत्तम क्षमादि गुण तिनकी प्राप्ति तोकूं अति दुर्लभ है।

॥ मालिनी छंद ॥

हृदयसरसि यावन्निर्मलेप्यत्यगाधे
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात्।
श्रयति गुणगणोयं तन्न तावद्विशङ्कं
सयमशमविशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥२१२॥

अर्थ—जौ लग तेरे निर्मल अगाध हृदय रूप सरोवर विषैं निश्चय सेती कषाय रूप जलचरनिका समूह बसै है, तौ लग गुणनिका समूह निशकपणै प्रवेश न करि सकै। तातैं शम दम यम भेदनि करि कषायनि के जीतिवेका जतन करि। शम कहिये समता भाव रागादिक का त्याग। दम कहिये मन इंद्रीनिका निरोध। यम कहिये यावत् जीव हिंसादिक का त्याग।

भावार्थ—जौ लग तेरे हृदय विषैं कषायनि का सचार है तौ लग शम दमादि गुणनिका लेश मात्र हू अगीकार नाही। तातैं कल्याण कै निमित्त कषाय तजि।

आगैं कषायनिकूं जीतना सोही मोक्ष का कारण है, ऐसा कहि करि जे कषायनि के आधीन होइ हैं तिनकी हास्य करते संते कहै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडित छंद ॥

हित्वा हतुफले किलात्र सुधियस्तां सिद्धिमामुत्रिकीं,
वाञ्छन्त' स्वयमेव साधनतया शंसन्ति शान्तं मन' ।
तेषामाखुबिडालिकेति तदिदं धिग्धिक् कलेः प्राभवं
येनैतेपि फलद्वयप्रलपनाद् दूरं विपर्यासिता ॥२१४॥

अर्थ—जे कहियेके सुबुद्धी या भव विर्षे हेतु कहिये कारण-निर्ग्रन्थमहव्रतादि अर फल कहिये कार्य मन की शांतता तिनकूं तजिकरि परलोक की सिद्धि वांछै है अर आपही अपने मन कषाय साधन करि अपनी प्रशंसा करै हैं, कषायनि के वशि हैं। अर जानै है हम शांतचित्त हैं। सो यह बड़ा विरुद्ध है। क्रोधादिक मैं अर उपशांततादि गुणनि मैं परस्पर वैर है। जैसैं बिलाव और मूसे कै अनादि का परस्पर वैर है। तातैं बारंबार धिक्कार होहु कलिकाल के प्रभाव कूं। जाके प्रभाव करि सुबुद्धी हू या लोक परलोक का फल ताका विनाश करवेतैं अत्यंत ठिगाये गये हैं।

भावार्थ जे कषाय तजैं बिनु शांत चित्त कहावै हैं ते वृथा ही अपनी प्रशंसा करै हैं। कषायनि कै अर शांतता कै परस्पर विरोध है। जे बुद्धिमान कहाय आत्म-कल्याण न करै ते दोऊ जन्म बिगारै हैं अत्यंत ठिगाये हैं।

आगै श्री गुरु शिष्य कूं शिक्षा करै हैं:—जो तू महातप अर ज्ञानकरि संयुक्त है, अर कषायनि का जीतनहारा है तौ अहंकार का लेश हू मतिकरि, अहंकार कूं मूलतैं उपारि डारि।

॥ स्रग्धराछंद ॥

उद्युक्तस्त्वं तमस्यस्यधिकमभिभवं त्वामगच्छन् कषाया
प्राभूद्वोधोप्यगाधो जलमिव जलधौ किंतु दुर्लक्ष्यमन्यैः।
निर्व्यूढेपि प्रवाहे सलिलमिव मनाग् निम्नदेशेष्ववश्यं
मात्सर्यं ते स्वतुल्यैर्भवति परवशाद् दुर्जयं तज्जहीहि ॥२१५॥

अर्थ —तू तप विषैं उद्यमी भया है। अर तोतैं कषाय अति अपमान कू प्राप्त भये हैं। अर समुद्र विषैं जल अगाध होय, तैसैं तेरै ज्ञान अगाध भया है। परतु एक तोहि शिक्षा करै हैं–यह बात औरनिकरि अगम्य है। या दोष कूं विरले तजै। जैसैं जल के प्रवाह विषैं तुच्छ हू नीचे स्थानक विषैं जल निःसन्देह औंडा होय है सो गूढ़ है। लोकनिके जानवेमैं नांही, तैसै अपनी बराबरि के विषैं कर्मनि के वशतैं अदेखसका भाव होइ है। जाहि शास्त्र विषैं मात्सर्य्य कहै है सो अति दुर्जय है, ताहि तू तजि।

भावार्थ--जो तू तपस्वी है, मंद कषायी है, गभीर चित्त है तौ मत्सर कहिए अदेखसका भाव तजि। अपनी बराबरि तथा अधिक विषैं अदेखसका भाव मति करै। इह बड़ा दोष है, तू सर्वथा तजि।

आगे कोऊ प्रश्न करै है—इनि कषायनि के हावैं मरे जीव का कहा अकल्याण है ? ताका उत्तर करै हैं—यहां काम क्रोधादिक का उदय होइ सो ही जीव का अकल्याण। इह कथन दृष्टांतकरि दृढ करै हैं। प्रथम ही क्रोध के उदय विषैं अकल्याण दिखावै हैं।

॥ वसन्ततिलकाछन्द ॥

चित्तस्थमप्यनवबुद्धय हरेण जाड्यात्
क्रुद्ध्वा बहिः किमपि दग्धमनङ्गबुद्ध्या।
घोरामवाप स हि तेन कृतामवस्था
क्रोधोदयाद्भवति कस्य न कार्यहानिः ॥२१६॥

अर्थ—देखो काम तौ चित्त विषैं हुवा बाह्य न हुवा। अर महादेव नैं क्रोधकरि अग्नि जानि कोऊ बाह्य पदार्थ भस्म कीया सो काम न मूवा। काम के योग तैं सराग अवस्था कूं प्राप्त भया। काम की करी घोर वेदना सही सो क्रोध के उदय तैं कौन के कार्य की हानि न होइ ?

भावार्थ—क्रोध के उदयतैं सर्व कार्य का नाश होय। महादेव नैं क्रोध करि बाह्य पदार्थ काम जानि भस्म कीया सो काम न मूवा, वे क्रोधी कामकरि पीडित ही भया।

आगे मान के उदय विषैं अकाज दिखावै है।

॥ वसन्ततिलकाछन्द ॥

चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसंस्थं
यत् प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुक्तः ।
क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय
मानो मनागपि हतिं महतीं करोति ॥२१७॥

अर्थ--देखो बाहुबली अपनी दाहिणी भुजापरि आय तिष्ठ्या जो चक्र ताहि तजि करि जिन दीक्षा आचरी। तपकरि संसारतैं मुक्त भए। परन्तु कैयक दिन कछुइक सज्वलनमान का उदय रह्या, ताकरि वर्ष पर्यंत केवल न उपज्या। महाकाय क्लेश किया तऊ मान गए विना मुक्त न भए। यह तुच्छ मात्रहू मान महा मोटी हानि करै है। तातैं मान त्याज्य है। तन धन रूप संपदा यौवन राजलक्ष्मी इनिका गर्व करै सो ये सब क्षण भंगुर है। अर आत्मा तौ निश्चयकरि सिद्ध समान है। त्रैलोक्य का आभूषण है ताकै मान काहे का ?

भावार्थ—मान ही मोक्ष का विघ्नकारी है। बाहुबली सारिखे तपस्वी बलवान विवेकी सूक्ष्म सज्वलन मान के उदयकरि वर्ष पर्यंत केवल न पावते भये। मान कणिका गई तब केवल उपज्या।

आगैं कहै हैं ते विवेकी महत्तता जानै है। तिनिकूं तुच्छ मात्र हू मान करना उचित नाही, यह दोय श्लोक मैं दिखावै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमो
लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गो गतिर्निर्वृते ।
येषां प्रागजनीह तेपि निरहङ्काराः श्रुतेर्गोचरा—
श्चित्रं संप्रति लेशतोपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः ॥२१८॥

॥ मालिनीछंद ॥

वसति भुवि समस्तं सापि संधारितान्यै—
रुदरमुपनिविष्टा सा च ते चापरस्य ।
तदपि किल परेषां ज्ञानकोणे निलीनं
वहति कथमिहान्यो गर्वमात्माधिकेषु ॥२१९॥

अर्थ—या लोक विर्षे पूर्वे महा महत्पुरुष भए। जिनकै वचन विर्षे सत्य, अर शास्त्र विर्षे बुद्धि हृदय विर्षे दया, अर भुजानि विर्षे शूरवीरता पराक्रम अर लक्ष्मी का याचकनि के समूह विर्षे पूर्ण दान, अर निर्वृत्ति मार्ग विर्षे गमन, जिनमैं ए गुन होते भये तेऊ अहंकार रहित शास्त्रविर्षे गाए हैं। परन्तु यह बड़ा अचिरज है अबार या कलिकाल विर्षे लेशमात्र हू गुण नाहीं तोऊ तिनिकै अति उद्धतता, है महा गर्व मैं छकि रहे हैं।

भावार्थ—पूर्वे चतुर्थकाल विर्षे बड़े सत्यवादी शूरवीर दयावान दातार महा विरक्त भए तोऊ गर्व का लेश न भया। अर अबार रंच मात्र गुण नाहीं, तथापि उद्धत हैं, गर्वंवत हैं। यह बड़ा अचिरज है।

अर्थ—गर्व करना झूठा है। गर्व तौ तब करै जब आपतैं कोऊ अधिक न होय, सो एक सूं एक अधिक है। प्रत्यक्ष देखो या पृथ्वी विषैं समस्त बसै हैं। सब का आधार पृथ्वी है। सो त्रैलोक्य की भूमि घनोदधि घनवात तनवात इनि तीन वात वलानिकै आधार है। पृथ्वी अर वातवलय आकाश के उदर में है। सो अनंता आकाश केवली के ज्ञान अंशमैं लीन भया है। एक सूं एक अधिक है। तातैं जगत विषैं आपतैं बहुतनिकूं अधिक जानि कौन गर्व करै? विवेकी कदापि गर्व न करै।

भावार्थ - एकतैं एक अधिक है। सब पृथ्वी कै आधार, पृथ्वी पवन कै आधार, ए वातवलानिकै, ते वातवलय आकाश कै आधार सो आकाश समस्त ज्ञान मैं माय रह्या है। अर संसारी जीवनि मैं विभूति करि एक सूं एक अधिक है। जीवत्व करि सब समान हैं।

आगैं मायाचार के योग तैं जीव का अकल्याण होइ है सो तीन श्लोकनि में दिखावै है।

॥ शिखरिणीछंद ॥

यशो मारीचीयं कनकमृगमायामलिनितं
हतोऽश्वत्थामोक्त्या प्रणयिलघुरासीद्यमसुतः।
सकृष्णः कृष्णोऽभूत् कपटबहुवेषेण नितरा—
मपि छद्माल्पं तद्विषमिव हि दुग्धस्य महतः ॥२२०॥

॥ श्लोक ॥

मेय मायामहागर्तान्मिथ्याघनतमोमयात् ।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहय ॥२२१॥

॥ वसन्ततिलकाछंद ॥

प्रच्छन्नकर्म मम कोपि न वेत्ति धीमान्
ध्वंसं गुणस्य महतोपि हि मेति मंस्थाः ।
कामं गिलन् धवलदीधितिधौतदाहो
गूढोप्यबोधि न विधु' सविधुन्तुदः कैः ॥२२२॥

अर्थ—अल्प हू कपट महा मोटे गुणनि कू हरै है जैसे घन दूध कू कणिका मात्र हू विष दूषित करै है। देखो मारीच जो रावण का मंत्री ताका वस कपट करि कनक मृग होने तैं मलिन भया। अर राजा युधिष्ठिर का अति निर्मल यश सो तिनिके मुख तैं यह वचन निकस्या था "अश्वत्थामा हत"। न जानिए, नर जानिए वा कुंजर। सो या मायाचार के वचन करि राजा युधिष्ठिर मित्रनि मैं लघु भए। तातैं अल्प हू मायाचार महत गुणनिकू हरै है।

भावार्थ—मायाचार महादुराचार है। मारीच मंत्री लघुता कू प्राप्त भया। राजा युधिष्ठिर सारिखा 'अश्वत्थामा हत' या वचन कहिवे करि लघुताकूँ प्राप्त भए। अहो भव्य जीव हो ! माया रूपी औंडे खाडे तैं डरो। यह माया मिथ्या भाव रूपी महा अंधकार

मई है। जाविर्षे लुक रहे है, क्रोधादिक महादुष्ट सर्प जहां खाडा होइ तहा अधकार हू होइ। अर तामें सर्प हू रहै।

भावार्थ—यह माया रूप खाडा अति औंडा है। जामैं मिथ्या रूप अघेरा है। जामैं क्रोधादि सर्प रहै है।

अर्थ—हे जीव तू ऐसा सदेह मति राखै, जो गुप्त पाप मेरा कोऊ न जानैगा, बुद्धिवान हू न जानै तौ और कैसै जानैं? अर मेरे मोटे गुणनि का यह पाप कैसै आच्छादन करैगा। ऐसी तू कदापि मति जानै। प्रगट देखि, चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरणनि करि जगत के आताप कू निवारै है। सो ऐसे चंद्र हू कूं प्रच्छन्न जो राहु सो आच्छादित करै है। या बात कूं सब ही जानै है। ऐसा कौन जो या वात को न जाने।

आगै लोभ कषाय थकी जीव का अकाज दिखावै है।

॥ हिरणीछन्द ॥

वनचर भयाद्धावन् दैवाल्लताकुलवालधिः
किल जडतया लोलो बालव्रजे विचलं स्थितः।
वत स चमरस्तेन प्राणैरपि प्रवियोजितः
परिणततृषां प्रायेणैवंविधा हि विपत्तयः ॥२२३॥

अर्थ—देखो लोक विर्षे प्रसिद्ध है—वनचर जो भील अथवा व्याघ्र ताके भय थकी सुरह गाय भागी, सो दैवयोगतैं ताकी पूंछ वेलितैं उलझी सो मूढताकरि वालन का समूह जो पूछ ताके लोभ

तें करी हाइ रही सु वनचरनैं प्राणनिर्ते रहित करी। तातैं जो तृष्णासुर है तिनके बाहुल्यता करि या प्रकार विपत्ति हो है।

आगैं कहै है अकल्याण की करनहारी जो कषाय तिसिकरि जीतिकरि अस्त है संसार जिनकै ते ऐसी सामग्री कूं प्राप्त होय हैं। सो ताय श्लोकनि मैं दिखावै हैं।

॥ हिरणीछंद ॥

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः
शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।
नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति ॥२२४॥

अर्थ—विषय सूं विरक्तता, अपरिग्रह का त्याग, कषायनिका निग्रह सम कहिए शांतता, रागादिक त्याग, दम कहिये मन इंद्रीनिका निरोध, यम कहिये यावत् जीव हिंसादिक पापनि का त्याग, तिनका धारण तत्त्व का अभ्यास, तपश्चरण का उद्यम, मन की वृत्ति का निरोध जिनराज विषैं भक्ति, जीवनिकी दया ए सामग्री विवेकी जीवनिकै संसार समुद्र का तट निकटि आये होय है।

॥ मालिनीछंद ॥

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।

विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥२२५॥

अर्थ—यम नियमादि योग के मूल हैं। यम कहिए जन्म पयत अयोग क्रिया का त्याग, अर नियम कहिए घरी पल प्रहर पत्त मास चातुर्मास वर्षादिक का संवर। सो यम नियमादि विषैं साधु तत्पर हैं, महा शात चित्त देहादिक बाह्य वस्तुनितैं निवृत्त भया है भाव जिनका, अर समाधि कहिये निर्विकल्प दशा कूं प्राप्त भए हैं सर्व जीव मात्र विषैं दया जिनको विहित कहिये शास्त्रोक्त अल्प है योग्य आहार जिनकै, अर दूरिकरी है निद्रा, अर निश्चय किया है अध्यात्म का सार आत्म स्वभाव जिननैं। निरतर आत्म-अनुभव विषैं गमन है।

आगैं कहै हैं जे ऐसे गुणनिकरि मडित मुनिराज हैं ते निश्चय सेती मुक्ति के भाजन हो हैं।

॥ मालिनीछद ॥

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्व-संकल्पमुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः ॥२२६॥

अर्थ—भली भाति जान्या है समस्त तजिवे योग्य अर ग्रहण करिवे योग्य वस्तु का स्वरूप जिन, अर हिंसा आदि सब पापनितैं

दूरि हैं अर आत्म कल्याण के कारण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तिन विषैं आरूढ़ है चित्त जिनका। अर निर्वृत्ति होय गये हैं सब इन्द्रियन के विषय जिनके अर वचन ऐसा बोलें हैं, जिन विषैं अपना कल्याण अर पर जीवनि का कल्याण, अर सर्व संकल्प विकल्पतैं रहित, ते महापुरुष सर्व पर-पचनतैं रहित क्यों न मुक्ति के भाजन होहिं? निःसन्देह शिव सुख सुख के भाजन होय।

भावार्थ—जे सर्व पर-पचन तैं रहित होंहि तेई मुक्ति होंहि, यह मुक्ति का मूलनिःप्रपंचपना ही है। जे हेयोपादेय कूं जानि सब त्याग योग्य वस्तुनि कूं तजि आत्म-कल्याण के कारण रत्नत्रय तिनिकौं अंगीकरि विषयनितैं विरक्त होहि तेई भव सागर के पार होंहि।

आगैं कहै है। मुक्ति हुवा चाहै है तू अर मुक्ति के अर्थि रत्न त्रय का धारण किया है। अर रत्नत्रय के मगतै भय करना अर जगत कूं विषयासक्त देखि आप विषयासक्त न होना।

॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥

दासत्वं विषयप्रभोर्गततवतामात्मापि येषां पर—
स्तेषां भो गुणदोषशून्यमनसां किं तत्पुनर्नश्यति।
भेतव्यं भवतैव यस्य भुवनमद्योति रत्नत्रयं
भ्राम्यन्तीन्द्रियतस्करश्च परितस्त्वं तन्मुहुर्जागृहि ॥२२७॥

अर्थ—विषय रूप प्रभु कहिये राजा ताके ग्राम भाव कू प्राप्त भये हैं जे अविवेकी लोक गुण अर दोष के विचारतैं शून्य है चित्त जिनका, अर जिनका आत्मा भी पराधीन है तिनकी रीति देखि हो विवेकी ! तू भूलै मति। ते तौ सम्यग्ज्ञान रूप धन करि रहित दरिद्री है। सो इनिका कहा जाय ? अर तेरै तीन भवन विषैं उद्योत करनहारा रत्नत्रय धन है। तातैं तोय भय करना। इंद्री चोर तेरै आसि पासि चौगिरद फिरै हैं। तिनकरि न मुसावै सो यत्न करि। तेरी ज्ञान विभूति पै न ग्रहै सो करि, सदा जाग्रत रहु।

भावार्थ—जैसैं ससार विषैं निर्धन पुरुष हैं ते तौ जाग्रत रहौ वा शयन करो, तिनकूं चोरन तैं कछू भय नाही, चोर तिनका कहा ले। अर रत्नत्रयादि धनकरि पूर्ण है तिनकूं चोरनितैं सदा सावधान रहना। सावधान न रहै तौ चोरनिपैं मुसावै। तैसैं अविवेकी जीव तौ रत्नत्रय रूप धनतैं रहित है, तिनिकू इन्द्रीरूप चोरनिका भय नाही। तातैं प्रमादी भए यथेष्ट विषयनि कू सेवे है। अर तू रत्नत्रय रूप धन का धारी है। तातैं इन्द्रिय रूप चोरनितैं सावधान रहु। जो प्रमादी होयगा तौ अपना निज धन मुसावैगा।

आगै कहै हैं जो विषय विषैं गया है मोह तेरा मा कमडल पीछी आदि संयमोपकरण विषैं हू अनुराग मति करै यह शिक्षा दे है।

॥ वसन्त तिलका छन्द ॥

रम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो
मुह्येद्वृथा किमिति संयमसाधनेषु ।
धीमान् किमामयभयात् परिहृत्य भुक्तिं
पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम् ॥२२८॥

अर्थ—हे बुद्धिमान मनोज्ञ स्त्री आदि वस्तुनि विर्षे गया है मोह तेरा, ऐसा तू संयम के साधन जे पीछी आदि तिनि विर्षे वृथा मोह क्यों करै ? जैसे कोऊ रोग के भयतैं भोजन कू तजि मात्रा तैं अधिक औषधि लेकरि कहा अजीर्ण करै ? कदाचित् न करै।

भावार्थ—जैसें कोऊ बुद्धिवान अजीर्ण के भयतैं भोजन कू तजि पाचक औषध भी मात्रा तैं अधिक न लेै। तैसें ज्ञानी कनक कामिनी आदि परिग्रह कू तजिकरि संयम के साधन जे कमंडलु पीछिकादिक तिनहू विर्षे ममत्व न करै। ममत्व है सो बंध का कारण है। अर जो ममत्व करै तो वीतराग भाव कू न पावे मरागते होय महाव्रत को भंग करै।

आगे कहै हैं—सर्व पदार्थनि विर्षे निर्मोही मुनि या प्रकार आपकू कृतार्थ मानै है।

॥ पृथ्वीछंद ॥

तपः श्रुतमिति द्वयं बहिरुदीर्य रूढं यदा ।
कृषेः फलमिवालये समुपनीयते स्वात्मनि

कृषीनल इवोज्भितं करणचोरबाधादिभि-
स्तदा हि मनुते यतिः स्वकृतकृत्यतां धीरधीः ॥२२६॥

अर्थ—जैसैं किसान क्षेत्र विषैं बीज बोय करि कण की वृद्धि करै है। सो चोरादिक की बाधाकरि रहित होय अपने घर मैं अन्न लेयकरि आवै तब आपकू कृतार्थ मानैं। तैसैं साधु तप अरु श्रुत की वृद्धिकरि इन्द्रियादिक चोर तिनकी बाधाकरि रहित आत्म स्वरूप विषैं लय होय तब आपकू कृतार्थ मानै। वह किसान हू अपने कर्तव्य की कृतार्थता तब ही मानै जब निराबाध अन्न घरमैं आय परै। अर साधु धीर-बुद्धि अपने संयम की कृतार्थता तब ही मानै जब इंद्रियादिक चोर की बाधाकरि रहित तप श्रुत रूप बीज का फल ज्ञान रूप कण आप विषैं लय करै।

भावार्थ—तप श्रुत का फल आत्म-ज्ञान, ताके बाधक इन्द्रियादिक चोर, तिनि तैं ज्ञान न हरया जाय। अर अपने स्वरूप विषै लय होय तब यती आपकू कृतार्थ जानै। जैसें किसान अनेक परिश्रम करि खेती करी है अर निर्विघ्न-पणैं नाज अपने घर में ले आवै तब आपकूं कृतार्थ जानै।

आगै कहै हैं कि काहू के मन मैं ऐसा विचार है जो श्रुतज्ञान करि मेरे समस्त अर्थ का परिज्ञान है। तातैं आशा रूप शत्रु मेरा किछू विघ्न करवे समर्थ नाहीं। ऐसा जानि आशा रूप शत्रुतैं निरभय रहना उचित नाहीं। इह श्री गुरु शिष्य कू शिक्षा दे है।

॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥

दर्पार्थस्य न मे किमप्ययमिति ज्ञानावलेपादयम्
नोपेक्ष्यस्त्व जगत्त्रयैकडमरं नि शेषयाऽऽशाविषम् ।
पश्याम्भोनिधिमप्यगाध सलिलं बाबाध्यते वाडव
क्रोडीभूतविपक्षकस्य जगति प्रायेण शान्ति कुत ॥२२०॥

अर्थ—यह आशा रूप शत्रु मेरे ज्ञानमंद के कछू विघ्नकारी नाहीं, या भांति ज्ञान के गर्व तें आशा रूप शत्रु कू भस्य न गिनना। जगत्रय का एक अद्वितीय वैरी महा भयकारी आशा शत्रु सर्वथा दूरि ही करना। ताका दृष्टांत कहै हैं। देखो अगाध है जल जा विर्षे ऐसा जो समुद्र ताहि वडवानल बाधा उपजावे है सोखे है। तातें या जगत में जाहि शत्रु लागे रहै ताहि आकुलता करि शांति कहा तें होय? जिनके रंच मात्र हू शत्रु नाहीं तेई निराबाध जान हू। सो ऐसा वो प्रबल शत्रु है। याके होतें शांतता कहां ते होय?

भावार्थ—जैसें समुद्र तौ अगाध है अर वडवानल अग्नि लोक कहै, तौऊ ताके जल कू सोखे है। सो रंच मात्र हू शत्रु के अभाव विनि निराबाधता नाहीं तो प्रबल शत्रु के होतें निराबाधता काहे तें होय? तैसें आशा के अभाव बिन निराकुलता कहा तें होय? अर कदाचित् तू जानेगा जो मेरे संयमादि गुण प्रबल हैं आशा कहा करैगी? सो ऐसा न विचारना। समुद्र अति गंभीर था तौऊ ताकू रंच मात्र हू वडवानल ताने सोख्या। तो आशा तो

तीव्र अग्नि सयम रूप समुद्र कू सोपै है मोघै। तातै आशा का सर्वथा नाश होय सो यत्न करना।

आगै कहै है जो तू आशा रूप शत्रु कू निर्मल कीया चाहै है तौ सर्वथा मेह का परित्याग करि।

॥ आर्याछिंद ॥

स्नेहानुबद्धहृदयो ज्ञानचारित्रान्वितोपि न श्लाघ्यः।
दीप इवापादयिता कज्जलमलिनस्य कार्यस्य॥२३१॥

अर्थ—मोह करि युक्त है हृदय जाका सो पुरुष यद्यपि शास्त्र के ज्ञानकरि तथा शुभ आचरण करि मडित है तौऊ प्रशसा योग्य नाहीं। जैसैं दीप स्नेह कहिए तेल ताकरि युक्त है, सो काजल कू उपजावै है। तैसैं स्नेह कहिए राग भाव, ताकरि सहित है सो मलिन कार्य जे पापरूप अशुभ कर्म तिनका उपजावनहारा है। ऐसा जानि जगत सू स्नेह तजना।

भावार्थ—जैसै तेल के सबध करि युक्त दीपक प्रकाश तौ करै है, परतु कज्जल रूप कलंकनि कू निपजावै है। तैसैं तेरा शुभाचरण रूप दीपक राग भाव रूप तेल करि युक्त भया पाप रूप कलक कूं निपजावै है। तातै देहादिक सूं नेह तजि। जैसै तेल विना अग्नि सदा प्रकाश रूप रहै है। अर कज्जल रूप कलक कू नाहीं उपजावै है। तैसें तू वीतराग भाव रूप रहु, जाकरि कर्म कलंक न निपजै।

आगैं कहै हैं जगत का स्नेह करि बंध्या है चित्त तेरा सो इष्ट अनिष्ट विषैं राग द्वेष करि क्लेश कूं भोगवै है।

रतेररतिमायातः पुनारतिमुपागतः ।
तृतीयं पदमप्राप्य बालिशो बत सीदसि ॥२३२॥

अर्थ—अज्ञानी तू विषयनि की रुचि तैं अरुचि में आवै है। अर बहुरि इनि ही तैं रुचि करै है। ऐसैं करतैं तीसरा पद जो जगत तैं उदासीनता रूप वैराग्य ताहि पाये बिना दुखी है। ऐसा जानि जो तू कल्याण का अर्थी है तो रागद्वेष कूं तजि अर वैराग्य कूं भजि।

भावार्थ—स्त्रीआदिक विषयनि कूं प्रथम तो रुचिकरि भोगवै है। अर पीछै तत्काल ही अरुचि होय जाय है। बहुरि उन ही सौं रुचि करै है। ऐसैं करतैं वांछा रूप व्याधि तैं सदा व्याकुल ही रहै है। रुचि अरुचि तैं रहित जो वीतराग भाव ताहि न पावता सदा खेद खिन्न रहै। तातैं रागद्वेष कूं तजि सम भाव कूं भजि, ताकरि सुखी होय।

आगैं कहै है—अनेक दुःखनिकरि तप्तायमान जो तू, सो मोक्ष सुख के अभाव तैं अल्पलेश मात्र जो विषय सुख ताकरि आपकूं सुखी मानै है सो वृथा है।

तावद् दुःखाग्नितप्तात्माऽयःपिण्ड इव सीदसि ।
निर्वासि निर्वृताम्भोधौ यावत्त्वं न निमज्जसि ॥२३३॥

अर्थ—तू लोह के पिंड की नाईं दु ख रूप अग्निकरि तप्ताय-मान है। सो जौ लगि मोक्ष के सुख रूप समुद्र विषैं मग्न न होय है तौ लगि इन्द्रीनि करि उपजे जे लेश मात्र विषय सुख तिनकरि आपकू सुखी मानै है सो वृथा है।

भावार्थ—जैसै लोह के गोले कूं पूरण जल में डबोइए तब ही आतापतैं रहित होय। अर जो लेश मात्र जलतैं छांटिये तौ ताप न मिटै, वह जल ही भस्म हो जाय। तैसैं जीव रूप गोला दु ख रूप अग्निकरि तप्तायमान जो लगि निर्वाण के सुख रूप समुद्र विषैं मग्न न होय, तौ लगि दु ख रूप आताप न मिटै। देवपद राज्यपद रूप अल्प सुखकरि सुखी मानैं सो वृथा है। इनि सुखनि करि कदाचि दु ख रूप आताप न मिटै। ए रंचमात्र सुख खिण मैं विलाय जाय।

आगै कहै हैं- कि निर्वृत्ति सागर विषें मग्न होना ज्ञान के अगीकार कीए होइ है। तातैं ज्ञानादि उपाय करि ताका अगीकार करहु।

मंक्षु मोक्षं सु सम्यक्त्वसत्यङ्कारस्वसात्कृतम्।
ज्ञानचारित्रसाकल्यमूल्येन स्वकरे गुरु ॥२३४॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की पूर्णता रूप भया जो धन ताकरि तू शीघ्र ही निर्वाण कू अपने हाथि करि। जब सत्य रूप मुक्ति अपने वसि करी तब कृतार्थ भया।

भावार्थ—जैसें कोऊ पुरुष इष्ट वस्तु कू धनादिक देकरि अपने हाथि करै। तैसें तू रत्नत्रय रूप धनकरि मोक्ष पदार्थ कू अपने हाथि करि ज्यों सुखी होय।

आगी कहै है—सराग भाव की है उत्कृष्टता जामें ऐसी प्रवृत्ति अर वीतराग भाव की है उत्कृष्टता जामें ऐसी जो निवृत्ति, इन दोऊनि की अपेक्षा यह जगत कैसा है सो दिखावै है।

॥ उपेन्द्रवज्रा छंद ॥

अशेषमद्वैतमभोग्यभोग्यं
निवृत्तिवृत्त्योः परमार्थकोट्याम्।
अभोग्यभोग्यात्मविकल्पबुद्ध्या
निवृत्तिमभ्यस्यतु मोक्षकांक्षी ॥ २३५ ॥

अर्थ—यह समस्त जगत निवृत्ति की अपेक्षा तौ भोगिवे योग्य नाहीं, त्यागने योग्य है, अर प्रवृत्ति की अपेक्षा सकल जगत भोगिवे योग्य है ? कैसा है जगत ? अद्वैत कहिए एक रूप है ? विषय कषायनि की प्रवृत्ति सो प्रवृत्ति कहिए। अर तिनकी निवृत्ति सो निवृत्ति कहिए। सो इन दोऊनिकी अपेक्षा अभोग्य रूप अर भोग्य रूप जानि प्रवृत्ति कू तजि मोक्ष के अभिलाषी निवृत्ति हू का अभ्यास करहु। प्रवृत्ति का फल संसार निवृत्ति का फल निर्वाण है।

भावार्थ—यह जगत अविवेकीनि कू तौ राग के वस करि भोग्य रूप भासै है। अर विवेकीनि कू ज्ञान भाव करि त्याग रूप भासै

है। तातैं जो तू मोक्षाभिलाषी है तौ तजिवे ही का अभ्यास करि जातैं मुक्त होय।

आगै कहै है कि निवृत्ति का अभ्यास कौ लगि करना।

निवृत्तिं भावयेद्यावन्निवर्त्यं तदभावतः।
न वृत्तिर्न निवृत्तिश्च तदेव पदमव्ययम् ॥२३६॥

अर्थ—जौ लगि तजिवे योग्य मन वचन कायादिक का संबंध न छूटै तौ लगि निवृत्ति ही का अभ्यास करना। अर जब पर वस्तु का अभाव होइ गया तब न प्रवृत्ति अर न निवृत्ति, केवल शुद्ध स्वरूप ही है। जो पर पदार्थनितैं सर्वथा रहित होना सोही अविनाशी पद है।

भावार्थ—जौं लगि या जीव कै रागादिक पर-भावनि की प्रवृत्ति है तौ लगि याकूं निवृत्ति ही का अभ्यास करना। अर जब इह वस्तु के संबंध तैं रहित होय मुक्त भया तब प्रवृत्ति अर निवृत्ति दोऊनिहीतैं प्रयोजन नाही। जैसे रोग है तौ लगि औषध का सेवन करना कर्त्तव्य है। अर रोग का अभाव भए औषध तैं प्रयोजन नाही। तैसैं जौ लगि प्रवृत्ति है तौ लगि ताके निवारिवे कै अर्थि निवृत्ति का अभ्यास है। अर प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव भए निवृत्ति हूतैं कछू प्रयोजन नाही।

आगै कहै हैं प्रवृत्ति का स्वरूप कहा, निवृत्ति का स्वरूप कहा, अर इनिका मूल कारण कहा?

रागद्वेषौ प्रवृत्तिः स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम् ।
तौ च बाह्यार्थसम्बद्धौ तस्मात्तांश्च परित्यजेत् ॥२३७॥

अर्थ— राग अर द्वेष येही प्रवृत्ति अर इनिका निषेध सो ही निवृत्ति । अर ए दोऊ बाह्य पदार्थनि के संबंध तैं है, तातैं धन धान्यादि बाह्य पदार्थनि का त्याग करना ।

भावार्थ—रागादिक की प्रवृत्ति का मूल कारण पर वस्तु का संबंध है। तातैं निवृत्ति के अर्थि देहादिक पर-द्रव्यनितैं ममत्व तजना। यातैं पर वस्तु कू अनादितैं अपनी मानी परंतु परवस्तु याकी भई नांही। तातैं इनिकू अपनी जानि वृथा ही खेदखिन्न होय है। सो निज स्वरूप कू जानि परतैं प्रीति तजना योग्य है।

आगे कहे हैं कि परिग्रह का परित्याग करता जो मैं सो या प्रकार भावना भाऊं हूं।

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः ।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः ॥२३८॥

अर्थ—मैं संसार रूप भ्रमण के विषैं भव भ्रमण के अभाव के अर्थि पूर्वे न भाई जो सम्यग्दर्शनादि भावना तिनकू भाऊं हूं। अर जे मैं पूर्वे मिथ्यादर्शनादि भावना अनादि काल तैं भाई ते नांही भाऊं हूं।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनादि भावना भव-भ्रमण का कारण, पूर्वे सदा भाई अब न भाऊं हूं। अर सम्यग्दर्शनादि भावना मोक्ष

का कारण कदे न भाई सो भाऊँ हूँ।

आगे कहै हैं कौन वस्तु हितकारी, कौन अहितकारी ? सोई दिखावै है।

शुभाशुभे पुण्यपापे सुखदुःखे च षट् त्रयम्।
हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम् ॥२३६॥

अर्थ—शुभ कहिए उत्तम वचन, करुणा रूप मन, सयम रूप काया–ये प्रशसा योग्य हैं। अर अशुभ कहिये कुवचन, निरदय चित्त, अव्रतरूप काया, ये निंदा योग्य हैं। इन दोऊनि करि पुन्य पाप होय है। शुभतैं पुन्य, अशुभ तैं पाप। पुन्यतैं सुख, पापतैं दुख। ए शुभ अशुभ, पुन्य पाप, सुख दु ख छह भए। तिनिमैं आदि के तीन शुभ, पुन्य, सुख ए हितकारी सो आदरणे, अर अत के तीन अशुभ, पाप, दु ख ए अहित कारी, ते तजिवे योग्य हैं।

भावार्थ—निश्चय नय करि विचारिए तौ या जीव कू एक शुद्धोपयोग ही उपादेय है। अर शुभ अशुभ दोऊ ही हेय हैं। तथापि व्यवहार नयकरि विचारिए तौ अशुभ तौ सर्वथा ही तजिवे योग्य है। जातैं ए सर्वथा मोक्ष मार्ग का घातक है। अर शुभोप-योग यद्यपि मोक्ष का साक्षात् कारण नाही, परतु परपराय मोक्ष का कारण है। तातैं कथचित् प्रकार प्रथम अवस्था विषैं उपादेय है। शुभ परणामनि तैं पुन्य का बंध होय, अर पुन्य तैं स्वर्गादिक का सुख होय। अर अशुभ परिणामनितैं पाप का वध होय, पापतैं नरक निगोदादिक दु ख होय। तातैं काहू प्रकार हू अशुभोपयोग उपादेय नाही।

आगें अशुभादि तीनके त्याग का अनुक्रम दिखावे हैं।

तत्राप्यार्यं परित्याज्यं शेषौ न स्त स्वत स्वयम्।
शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥२४०॥

अर्थ—प्रथम तौ अशुभ भवित छूटै। ताके अभाव करि पाप अर दुःख हू छूटैं। बहुरि शुद्धोपयोग के प्रभाव करि शुभ हू छूटै। अर शुभ के छूटे तैं पुण्य अर स्वर्गादिक सुख हू न होय। कारण के अभाव तैं कार्य हू का अभाव होइ। जब शुभ हू छूट्या तब परम वीतराग भाव रूप शुद्धोपयोग विषैं तिष्ठ करि परम पद कू पावै। वह परम पद शुभ अशुभ दोऊनितैं रहित है। दोऊनि के अंत विषैं होइ अशुद्ध है।

भावार्थ—आत्मा का उपयोग दोय प्रकार है। एक शुद्ध, एक अशुद्ध। अशुद्ध के दोय भेद। अशुभ तथा शुभ। सो अशुभ तैं पाप अर पापतैं नरकादि दुःख। तातैं अशुभ तौ सर्वथा तजिबे ही योग्य। बहुरि शुभ तैं पुण्य अर पुण्य तैं स्वर्गादिक सुख, सो अशुभ के निवारिबे अर्थि शुभ का ग्रहण होय है। पीछे शुद्धोपयोग भए शुभ हू छूटै है। शुद्धोपयोग के प्रसाद करि यह जीव मुक्त हो है।

आगें चार्वाक प्रश्न करै है आत्मा होइ तौ परम पद की प्राप्ति होइ, आत्मा ही नांही तौ परम पद कैसें होय? अर आत्मा कू गर्भ आदि मरण पर्यंत काहू नै देख्या नांही। जातु होइ तौ दृष्टिपरे। इह तौ चार्वाक कही। अर सांख्य कहता भया आत्मा तौ

सदा मुक्त ही है। पहली अशुभ कूं तजि वहुरि शुभ कूं तजि परम पद पावै, इह तौ अयुक्त। तब श्री गुरु दोऊनि का समाधान करै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

अस्त्यात्माऽस्तमितादिबन्धनगतस्तद्बन्धनान्यास्रवै—
स्ते क्रोधादिकृताः प्रमादजनिताः क्रोधादयस्तेऽव्रतात् ।
मिथ्यात्वोपचितात् स एव समलः कालादिलब्धौ क्वचित्
सम्यक्त्वव्रतदक्षताऽकलुषतायोगैःक्रमान्मुच्यते ॥२४१॥

अर्थ—वहुरि सो आत्मा जातिस्मरण करि आपके पूर्व भव दृष्टि परै है, अर भूतादिक अपने पूर्व भव कहै हैं, सो जीवनि के पूर्व भव को प्रतीति आवै है। तातैं आत्मा है सो आत्मा अनादिकाल का कर्मनि करि वध्या है। ते कर्म बंध आश्रवनि करै हैं। अर आश्रव क्रोधादिक करि होइ हैं। अर क्रोधादिक प्रमाद जनित हैं। अर प्रमाद हिंसादिक अव्रतनितैं हैं। अर अव्रत हैं सो मिथ्यात्त्व करि उपचित कहिए पुष्ट हैं। सो आत्मा मिथ्या दर्शनादि करि मलिन है। अर काल-लब्धि पाय काहू एक मनुष्य भव विषै सम्यक्त्व, व्रत, विवेक, निःकषायता इनि के योगकरि अनुक्रम मैं मुक्ति होइ है।

भावार्थ—चार्वाक तौ ऐसै कहै हैं जो आत्मा है ही नाही। सो आत्मा न होइ तौ ऐसा संदेह कौनकै होइ जो आत्मा नाही ? अर आत्मा न होइ तौ वितरादिक ऐसैं क्यौं कहै जो मैं फलाना था, अर अगिले भव की तथा या भाव का पहलो वात कौन क[illegible]

आवे। अर जो आत्मा ही न होय तौ पुण्य पाप का फल कौन भोगवे? आत्मा न होय तौ अहंकार ममकार कौन के होय? तातैं आत्मा है, इह बात निःसन्देह भई। अर सांख्य कहै जो सर्वथा शुद्ध ही है। सो सर्वथा शुद्ध ही होय तौ संसार भ्रमण कैसे होइ? और कोऊ सुखी, कोऊ दुखी, कोऊ नीच कोऊ ऊंच ऐसा भेद काहे कू होइ? अर सर्वथा शुद्ध ही होय तो शुद्ध होने के अर्थि तपश्चरणादि साधन काहे कू कहा? तातैं इह निश्चय भया जो संसार अवस्थानि विषैं तौ आत्मा अशुद्धता करि युक्त है। बहुरि सम्यग्दर्शनादि उपायकरि अशुद्धता का नाश करै तब शुद्ध होय है।

आगे कहै है कि जो पुरुष शरीरादिक विषै निस्पृह है सो ही निस्पृह कहिये और नाँही।

ममदमहमस्येति प्रीतिर ईतिरिवोत्थिता।
क्षेत्रे क्षेत्रीयते यावत् तावत् काशा तपःफले ॥ २४२ ॥

अर्थ— इह शरीर मेरा अर मैं याका, इह प्रीति उपद्रव की करनहारी ईति समान अनादि की लगा है। जौ लगि क्षेत्र कहिए शरीर ता विषैं इह आप क्षेत्री कहिए स्वामी होइ रह्या है, तौ लगि तप का फल जो मोक्ष ताकी कहा आशा?

भावार्थ—इह तन मेरा क्षेत्र, अर मैं याका क्षेत्री कहिये धनी। इह मेरा मैं याका, ऐसी प्रीति ईति समान उपद्रव की करनहारी जो लाग है तो लगि मोक्ष की कहा आशा? अतिवृष्टि अनावृष्टि

मूसक टीडी सूवा, अपना कटक, पर का कटक ए सप्त ईति उपद्रव की करनहारी तौ लगि किसान कूं अन्न की कहा आशा ? तैसें जीव कै देह विषैं नेह है तौ लगि मुक्ति की कहा आशा ?

आगै कहै है-प्रीति के योगतैं जीव कैं जड सू एकता की बुद्धि उपजै सोई ससार का कारण है। अर या प्रीति के अभाव तैं मुक्ति है, ऐसा दिखावै हैं।

मामन्यमन्यं मां मत्वा भ्रान्तो भ्रान्तौ भवार्णवे ।
नान्योहमहमेवाहमन्योन्योन्योहमस्मि न ॥२४३॥

अर्थ—भ्रान्ति के होतैं आपकू अन्य जे कायादिक तिनरूप जान्या अर कायादिक कू अपना रूप जान्या, याही विपरीत ज्ञानकरि भव समुद्र विषैं भ्रम्या। अब तू यह जानि'—मैं पर पदार्थ नाही, मैं जु हूँ सो मैं ही हूँ, अर पर पदार्थ पर ही हैं। तिनिमैं मैं नाही, मो मैं ते नाही।

भावार्थ—या जगत विषैं सब ही पदार्थ अपने अपने स्वभाव ही कू धारै हैं। काहू द्रव्य का काहू द्रव्य सू सबध नाही, सब जुदे जुदे है। अर मैं अनादि काल तैं मिथ्यात्व रागादिक के योग तैं देहादिक पर पदार्थनि कू अपने जानता भया सो वै तौ मेरे तीन काल मैं न होय। अर मैं वृथा अपने जाने याही तैं ससार विषैं भ्रम्या। अर अब सम्यग्ज्ञान के प्रभावतैं मैं यह जानी जो यह अन्य पदार्थ मैं नाही, यह जड, मैं चैतन्य, मेरै इनकै कहा सबध ? सो ये ही ज्ञान कल्याण का कारण है।

आगें कहै है कि भ्रान्ति दूरि भए दृढ़ निश्चय हो है जु कायादिक कूं अनुराग बुद्धिकरि विलोकै ताकै यह विलोकना कर्म बंध के निमित्त है। अर वैराग्य बुद्धिकरि देखै ताकै कर्मबंध का विनाश के अर्थि होय है।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ।

यन्मो जन्मनि यत्र यत्र निबिडं निष्पादितो वस्तुना
बाह्यार्थैकरतं पुरा परिणतप्रज्ञात्मनः साम्प्रतम् ।
तत्तत् तन्निधनाय साधनमभूद्वैराग्यकाष्ठास्पृशो
दुर्बोधं हि तदन्यदेव विदुषामप्राकृतं कौशलम् ॥२४४॥

अर्थ—या संसार में बाह्य पदार्थनि विषैं एक अद्वितीय है प्रीति जाकी, ताकैं जिन जिन मन वचन कायादिक वस्तुनि करि आगैं अति गाढा कर्मनिका बंध उपज्या, अर अब वैराग्य की हद कूं प्राप्त भया यथायत् पदार्थनि के पर ज्ञान रूप बुद्धि परिणई तब तेई वस्तु बंध के विनाशिबे कै अर्थि साधन रूप भई तातैं जो अज्ञान करि मैं रागादि रूप परणया सो अज्ञान तौ जुदा ही है। अर विवेकीनि का अपूर्व प्रवीणपणां है सो जुदा ही है।

भावार्थ—जब देहादिक पर वस्तुनि कू राग बुद्धि करि देखै था तब रागी कै तेई वस्तु बंध का कारण हुवा अर अब वैराग्य बुद्धि करि देखन लगा तब कायादिक मुक्ति के साधन रूप भई। तातैं राग भाव तजि वीतराग भाव का यत्न करना।

आगै बंध अर बंध का नाश जा भांति होय सो ही अनुक्रम दिखावै हैं।

अधिकः क्वचिदाश्लेषः क्वचिद्धीनः क्वचित्समः।
क्वचिद्विश्लेष एवायं बन्धमोक्षक्रमो मतः ॥२४५॥

अर्थ—कहु एक तौ कर्म का बंधन है अर निर्जरा अल्प है अर कहु एक बंध अल्प है निर्जरा विशेष है। अर कहु एक बंध तथा निर्जरा समान है। अर कहु एक केवल निर्जरा ही है। इह बंधने का वा छूटने का अनुक्रम है।

भावार्थ—या जीव कै मिथ्यात्व गुणस्थानै तौ कर्मनिका बंध बहुत हो है। अर निर्जरा तुच्छ है। अर पंचम गुणस्थानादि अगिले गुणस्थाननि विषैं बंध अल्प है, निर्जरा बहुत है। अर चतुर्थ गुणस्थान विषैं बंध अर निर्जरा दोऊ समान है। अर अकषायीनि कै निर्जरा ही है, बंध नाहीं। यह बंध अर निर्जरा की परिपाटी कही।

आगै बतावै हैं कि जाकै कर्म अपने कार्य करिवे तैं रहित भए, कर्मनिका यही कार्य जो नवे शरीर उपजावै सो अब उपजाय न सकै, जाकी इह दशा भई सो ही योगी।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।
स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्रवां ॥२४६॥

अर्थ—जा विरक्त कै पुन्य अर पाप, फल उपजाए बिना ही

खिरि गये पुन्य का फल स्वर्ग, पाप का फल नरक, सो ये कर्म ताकौं न देइ सके सोही जोगी, ताके निर्वाण ही है बहुरि आस्रव नांही।

भावार्थ—पुन्य पाप ही संसार भ्रमण के मूल कारण हैं। जैसे फल का मूल पुष्प है सो पुष्प ही खिरिगया, तौ फल कहां तैं होइ? तैसें जीवनि कै चतुर्गति फल का कारण शुभाशुभ कर्मनि का उदय है। सो महा मुनि कै शुभाशुभ कर्म ही खिर गये तौ नया शरीर कैसैं होइ? तातैं तिनकैं निर्वाण ही है।

आगे कहै हैं कि आस्रव का निरोध जो संवर सो प्रतिज्ञा के पालिये तैं होइ है।

> महातपस्तडागस्य संभृतस्य गुणाम्भसा।
> मर्यादापालिबन्धेऽल्पामप्युपेक्षिष्ट मा क्षतिम् ॥२४७॥

अर्थ—महातप रूप तालाव सम्यक्दर्शनादि गुणरूप जलकरि पूर्णता की प्रतिज्ञा रूप पालिके के बंधन विषैं रंचमात्र हू हानि मति देखि सके।

भावार्थ—जौ लगि पाल दृढ रहै, तौ लगि तलाव विषैं जल रहै। अर पाल के रंच मात्र हू छिद्र होइ, पाल फूटि जाय अर तलाव मैं जल न रहै। तैसें गुणरूप नीर तैं भरया तप रूप तलाव ताको प्रतिज्ञा रूप पाल खिरैं तौ गुण रूप जल न रहै।

आगे कहै हैं कि महापुरुषनि कै संयम रूप घर की हानि के ए कारण हैं।

दृढगुप्तिकपाटसंवृत्तिधृ तिभित्तिर्मतिपादसंभृति ।
यतिरल्पमपि प्रपद्य रन्ध्रं कुटिलैर्विक्रियते गृहाकृतिः ॥२४८॥

अर्थ—यती पद रूप घर कै महादृढ मनोगुप्ति, वचनगुप्ति कायगुप्ति रूप कपाट का प्रबध, अर उत्तम वृत्ति धीरता एही भींति, अर बुद्धि रूप नीव, गाढ़ी, सो कदाचि तुच्छ हू व्रत भग रूप छिद्र होइ तौ महा कुटिल रागादिक सर्प यतीपद रूप घर कू दूपित करै।

भावार्थ—जैसैं घर कै किवाड भी बहुत गाढा अर भींति हू गाढी अर नींवहू गाढी, परतु जो रच मात्र हू छिद्र होइ तौ सर्पादिक दुष्ट जीव निवास करै, तब रहने वालौ कौ निर्विघ्नता न होय, कबहूक प्राण ही जाय। तैसैं यती पद रूप घर के गुप्तिरूप कपाट, धैर्य रूप भींति, बुद्धि रूप नींव, परतु व्रत भग रूप अल्प हू छिद्र होइ तौ रागादिक कुटिल सर्प निवास करै, तौ अनेक पर्यायनि विषैं अनेक वार मरण करै।

आगै कहै हैं कि रागादिक दोषनि के जीतिवे कू उद्यमी भया है मुनि अर कदाचि पर जीवनि के दोष कथन करै तौ रागादिक कू पुष्ट करै।

स्वान् दोषान् हन्तुमुद्युक्तस्तपोभिरतिदुर्धरैः ।
तानेव पोषयत्यज्ञः परदोषकथाशनैः ॥२४९॥

अर्थ—अति दुर्द्धर तप करि अपने दोष हरिवे कू उद्यमी भया है। अर कदाचि ईर्षा के योग तैं पराया अपवाद करै, पराये

औगण गावै तौ पर दोष कथारूप भोजन करि रागादि दोषनिकूं पुष्ट करै।

भावार्थ—विवेकीनि कूं पराई निंदा करनी योग्य नांहीं। अर जो कदाचि पर निंदा करै तो जैसैं रस संयुक्त भोजन करि देह पुष्ट होय तैसैं परदोष कथन करि राग द्वेषादि दोष पुष्ट होय, तिनिकरि मुनिपद का भंग होय।

आगैं कहै हैं कि दोषनि कूं ढाकिकरि व्रत कूं आचरै हैं मुनि ताकै कर्म के वशतैं कदाचि चारित्रादि विर्षे कोऊ दोष उपज्या, अर वाकै गुण प्रगट करै तौ गुणनि की महिमा न होय।

॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥

दोषः सर्वगुणाकारस्य महतो दैवानुरोधात् क्वचि—
यातो यद्यपि चन्द्रलाञ्छनसमस्तं द्रष्टुमन्धोप्यक्षम्।
द्रष्टाप्नोति न तावतास्य पदवीमिन्दोः कलङ्कं जग—
द्विश्व पश्यति तत्प्रभाप्रकटितं किं कोप्यगात्तत्पदम्॥२५०॥

अर्थ—सर्व गुणनि की खानि जो महा पुरुष ताकै पूर्व कर्म के वश तैं कोई सूक्ष्म गुणादि विर्षे चंद्रमा के लांछिन समान अल्प हू दोष उपज्या तो ताकै देखने कूं अंध कहिये जगत के अविवेकी मूढ दृष्टी लोक हू समर्थ होइ। जगत की दृष्टि मैं वह दोष आवै। अल्प ही दोषकरि गुणवंत का पद कलंकित होय। जैसैं चंद्रमा का कलंक चंद्रमा की प्रभा ही नैं प्रगट कीया सो समस्त जगत देखै

है। कोऊ चद्रमा कै स्थानक तौ न गया, देखि न आया। तैसै महापुरुष का औगुन तिनके गुणनि ही प्रगट किया। कोऊ तिनकै स्थानक जाय देखि न आया।

भावार्थ—जहा अनेक गुण होइ तहा दोष न सभवै। जैसैं चन्द्रमा की प्रभा विषैं कलक न सोह्या सो प्रगट भास्या। तैसैं मुनिपद मैं औगुन न सोह्या सो प्रगट भास्या। लोग कहै देखो एते गुण जिनमैं तिनमे इह दोप कैसै सभवै। अर कोऊ कहै जहा अनेक गुण होइ तहा अल्प दोष की कहा वार्त्ता? अपने ताईं तौ पराए गुण ही ग्रहने। ताका समाधान। उच्चपद विषैं नीच क्रिया सोहै नाही। जैसैं उपवास करि एक कण हू भक्षण करै तौ ताकू लोग भ्रष्ट कहै। अर अव्रती निरतर भोजन करै है ताकी कोऊ निंदा न करै। तैसैं अव्रती मैं अनेक दोप हैं तौऊ तिनिकी कोऊ कथा न करै? अर संयमी मैं रच मात्र हू दोष होय तौ ताकी निंदा होय, जो ऐसी पदवी मैं ऐसा नीच कार्य किया। तातैं पदवी अनुसार क्रिया करनी योग्य है।

आगै कहै हैं कि असूया कहिए ईर्ष्या पराये गुण विषैं द्वेप का आरोप पराए अनहोतैं औगुन प्रगट करै। अपने अनहोते गुन प्रगट करै, अपनी महिमा कै अर्थि तेला आदि अनेक उपवास आचरै सो अधिक विवेक दशा होइ तब इह वृत्ति आछी न भासै अविवेकीनिकौ आछी भासै।

यद्यदाचरितं पूर्वं तत्तदज्ञान चेष्टितम्
उत्तरोत्तरविज्ञानाद्योगिनः प्रतिभासते ॥२५१॥

अथ—पूर्वे जा जा आचरण किया पर दोष आप अपने गुण प्रगट करै सो सब जोगीश्वर के उत्तरोत्तर उत्कृष्ट दशा के होते अज्ञान चेष्टा भासै।

भावार्थ—जो पराए औगुन गावना अर अपने गुन प्रगट करना ये ही सो अज्ञानीनि कू बुरी न भासै, ज्ञानतें जोगीनि कू बुरी भासै।

आगे कहै हैं जे उत्तम ज्ञान की परणति सू रहित हैं अर तप उत्कृष्ट करै हैं। तोऊ तिन के शरीरादिक विषै ममता बुद्धि होय है, ताकरि कहा होय है? सो कहै हैं।

॥ हरिणीछंद ॥

अपि सुतपसामाशावल्लीशिखा तरुणायते
भवति हि मनोमूले यावन्ममत्वजलार्द्रता।
इति कृतधियः कृच्छ्रारम्भैश्चरन्ति निरन्तरं
चिरपरिचिते देहेऽप्यस्मिन्नतीव गतस्पृहाः ॥२५२॥

अर्थ—निश्चय सेती महातपस्वीनि हू के आशा रूप वेलि की शिखा तरुणताकू आचरै, जौ लगि मन रूप मूल विषै ममता रूप जल की आर्द्रता है तौ लगि आशा वेलि कैसे सूखे। ऐसा जानि विवेकी पुरुष या अपनी देह विषै हू अत्यंत उदास है शरीर के जीवे मरिबे की वांछा नाहीं। यद्यपि शरीर सू चिरकाल परिचय है तथापि मुनि के ममता नाहीं, देहतें निस्पृह है। कष्ट साध्य जे

त्रिकाल योगादिक तिनकरि निरंतर शरीर कू दमैं ही है। शीतकाल मे जल कै तीर, उष्णकाल मैं गिरिकै शिखर, वर्षा काल मैं तरुतल निवास करै सो त्रिकाल योग कहिये।

भावार्थ—जैसै वेलि की जड़ अशुद्ध भाव सो ममता रूप जल तैं सजल रहै तौ आशारूप वेलि की शिखा सदा तरुण ही रहै।

आगै याही अर्थ कू दृष्टांत द्वार करि दृढ़ करै हैं।

॥ रथोद्धता छंद ॥

क्षीरनीरवदभेदरूपतस्तिष्ठतोरपि च देहदेहिनोः।
भेद एव यदि भेदवत्स्वऽलं बाह्यवस्तुषु वदात्र का कथा ॥२५३॥

अर्थ—जो जीव और शरीर ही मैं निश्चय सेती भेद है तौ अत्यंत ही जुदे जे पुत्र कलत्रादि अथवा शिष्यादिक बाह्य वस्तु कहौ तिनकी कहा कथा ? वै तौ प्रगट ही है। अर-जीव और देह क्षीर नीर की नाई यद्यपि अभेद रूप तिष्ठै हैं, तथापि निश्चय सेती जुदे ही हैं।

भावार्थ—तैजस कार्माण तौ सब ससारी जीवनि कै सदा लगि ही रहे हैं। कबहू जुदे होते नाहीं। जब जीव मुक्त होइ तब वे छूटे। अर आहारक शरीर कबहू एक मुनि कै होइ है। अर मनुष्य तिर्यंचनि कै औदारिक, देवनारकीनि कै वैक्रियिक। सो इनिका संबंध होइ है, छूटै है। अनादि काल का शरीर सू संबंध जीवकै है। जीव अर शरीर-क्षीर नीर की नाई मिलि रहे हैं,

तेऊ जुदे, तौ पुत्र कलत्रादिक अर शिष्यादिक की कौन बात ? वे तौ प्रगट जुदे ही हैं। ऐसा जानि सर्व तैं नेह तजो।

आगे या शरीर के संयोग तैं आत्मा कै जो होइ है सो दिखावै हैं।

तप्तोऽहं देहसंयोगाज्जलं वाऽनलसंगमात्।
इह देहं परित्यज्य शीतीभूताः शिवैषिणः ॥२५४॥

अर्थ—कल्याण के अर्थी जे महामुनि ते ऐसा जानि देह सू नेह तजि, आनंद रूप भए। कहा जान्यां ? जैसैं अग्नि के संयोग तै जल तप्तायमान होय, तैसैं देह के संयोग तैं मैं तप्तायमान भया। इह जानि कल्याण के अर्थी महा मुनि देह सू ममत्व तजि आनंद रूप भए।

भावार्थ—या जगत विषैं इह जीव जेते दुःख क्लेशादि भोगवै है, ते शरीर के संबंध तैं भोगवै है। तातैं शरीर सू अनुराग तजि मोक्षाभिलाषी जीवनि कू वीतराग भाव आचरना योग्य है। जाकरि बहुरि शरीर का संबंध न होय।

आगै शरीरादि विषैं ममता भाव का कारण महा मोह ताके त्याग का उपाय कहै हैं।

अनादिचयसंवृद्धो महामोहो हृदि स्थितः।
सम्यग्योगेन यैर्वान्तस्तेषामूर्ध्वं विशुध्यति ॥२५५॥

अर्थ—जिन महा पुरुषनि सम्यग्योग कहिये स्वरूप विषैं चित्त का निरोध, सोई भई औषध, ता करि अनादि कर्मनि के संचय करि हृदय विषै तिष्ठता महा मोह सो वमि डारथ्या, तिन ही का परलोक शुद्ध होय।

भावार्थ—जैसैं औषधि के योगकरि उदर विषैं तिष्ठता अजीर्ण जिनने वम्या तिनहीं कै रोग की निवृत्ति होइ। रोग चिरकाल तैं अजीर्ण के सचय करि बढ्या है सो औषधि के योग ही तैं दूरि होय। तैसैं विभावनि करि बढ्या जो कर्म-विकार सो सम्यग्ज्ञान ही करि निवृत्ति होय।

आगै महा मोह के अभाव कूं होते मतैं जे मुनि इन वस्तुनि कूं या भांति देखै हैं तिनकै कौन सुख कै निमित्त न होइ? सब ही सुख कै निमित्त होइ।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

एकैश्वर्यमिहैकतामभिमतावाप्तिं शरीरच्युतिं
दुःखं दुष्कृतिनिष्कृतिं सुखमलं संसार-सौख्योज्भनम्।
सर्वत्यागमहोत्सवव्यतिकरं प्राणव्ययं पश्यता
किं तद्यन्न सुखाय तेन सुखिनः सत्यं सदा साधवः ॥२५६॥

अर्थ—जे एकाकीपने कौं एक अद्वितीय चक्रवर्त्तिपना मानै है, अर शरीर के विनाश कूं मन वाछित पदार्थ की प्राप्ति मानै है, अर दुष्कर्म की निर्जरा शुभ का उदय ताहि दुःख मानै है, अर सर्वथा ससार के सुख का परिहार ताहि सुख मानै है, अर सर्व

त्याग कू महा तप माने है, अर संग्रह कू प्राण-त्याग माने है, यह दृष्टि जिनकी है तिनकौं ऐसा कौन पदार्थ जो सुख के निमित्त न होय ? सब ही सुख के कारण होहि। या कारण साधु सदा सुखी ही है, यह बात सत्य है।

भावार्थ—जगत विषैं जे परीमहादिक दुःख दायक सामग्री हैं तिनिही कू जिन सुख का कारण जाणि अंगीकार करी तिनकै और दुःख का कारण कौन है ? तातैं जे सकल प्रपञ्च तैं छूटे ते ही सदा सुखी हैं।

आगे कोऊ प्रश्न करै है कि कर्म के उदय करि उपज्या दुःख ताहि भोगवै तिनिकै चित्त विषैं खेद की उत्पत्ति है तातैं कैसैं सुखीपना है ? ताका समाधान करै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥

आकृष्योग्रतपोबलैरुदयगोपुच्छं यदानीयते
तत्कर्म स्वयमागतं यदि विदः को नाम खेदस्तव ।
यातव्यो विजिगीषुणा यदि भवेदारम्भकोरिः स्वयं
वृद्धिः प्रत्युत नेतुरप्रतिहता तद्विग्रहे कः क्षयः ॥२५७॥

अर्थ—जो कर्म उदय न आया ताहि तपके बल करि उदय मैं ल्याय क्षय करै है। अर जो स्वयमेव उदय आया कर्म तौ खेद काहे का ? मुनि कै खेद का नाम नांही। जैसैं जीत की है इच्छा जाकै सो वैरी परि आप करि जीतै। अर जो वैरी ही युद्ध का आरंभ

करि आप परि चलाय आवै तो तिनिकै कहा हानि ? इह तौ आधक उछाह है।

भावार्थ—जे जोधा शत्रु परि जाय शत्रु कू जीतै तिनि परि जो शत्रु ही चलाय आवै तो तिनकै कहा हानि ? त्यौं ही महा मुनि तप के बल करि कर्मनि कूं उदय मैं ल्याय खिपावै तिनिकै स्वयमेव कर्म उदय मैं आवै, ता विषैं कहा खेद ?

आगै कहै हैं कि कर्म के उदय विषैं खेद न मानै जे मुनि ते कर्मनि की निर्जरा करते शरीर सूं भी भिन्न होने का यत्न करै।

॥ स्रग्धराछंद ॥

एकाकित्वप्रतिज्ञाः सकलमपि समुत्सृज्य सर्वं सहत्वाद्
भ्रान्त्याऽचिन्त्याः सहायं तनुमिव सहसालोच्य किंचित्सलज्जाः।
सज्जीभूताः स्वकार्ये तदपगमविधिं बद्धपल्यङ्कबन्धा
ध्यायन्ति ध्वस्तमोहा गिरिगहनगुहागुह्यगेहे नृसिंहाः ॥२५८॥

अर्थ—जे नरसिंह पुरुषनि मैं प्रधान पर्वतनिकी गुफा, गहन वन, एकात स्थानक ता विषैं तिष्ठै आत्म-स्वरूप कूं ध्यावै है, नाश किया है मोह जिनने, एकाकी रहिवे की है प्रतिज्ञा जिनकै सर्व ही तजि करि सकल परीषह सहै हैं। अचिंत्य है महिमा जिनकी, शरीर कू सहाई जानि तत्काल कछू इक लज्जा कू प्राप्त भए है। जो ए जड़ हमारी कहा सहाई होयगा ? भ्राति करि अब तक सहाई जान्या, सो सहाई नाही। अपने कार्य विषैं आप उद्यमी भये, पल्यकासन बाधि निज स्वरूप का ध्यान करै हैं शरीर तैं

रहित होय वे की विधि विचारै हैं। जिनके यह विचार है हमारे शरीर बहुरि उदय न आवै, निरादरा करि तजिवे कू उद्यमी भये हैं।

भावार्थ—सर्व ससारी जीवनिकै शरीर का ममत्व है सो पुन पुन शरीर कू धरै हैं। अर जे निरादरा करि शरीर कू तजै हैं तिनकै शरीर बहुरि उदय न आवै, परम पदकू पावै।

आगे कहै हैं कि कर्मनि की अर नये नये तन धारण की विधि के दूर होवे का चितवन करते सते आप परम उत्तम गुणनि करि मंडित हैं सो हम कू पवित्रता के करणहारे होहू।

॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥

येषां भूषणमङ्गसङ्गतरजः स्थानं शिलायास्तलं
शय्या शर्करिला मही सुविहितं गेहं गुहा द्वीपिनाम्।
आत्मात्मीयविकल्पवीतमतयस्त्रुट्यत्तमोग्रन्थय—
स्ते नो ज्ञानधना मनांसि पुनतां मुक्तिस्पृहा निःस्पृहा ॥२५६॥

अर्थ—जिनके अंग मैं रज लागि रही है वही आभूषण है, अर शिलातल ही स्थानक है, अर कंकरेली पृथ्वी सय्या है, अर जिन गुफानि मैं सिंहादिक रहै तेई तिनकै घर हैं, अर ये देहादिक मेरे अर मैं इनिका ऐसे विकल्प तैं रहित है बुद्धि जिनकी, अर टूटि गई है अज्ञान रूप ग्रन्थि जिनकै, ते ज्ञान धन मोक्ष के पात्र परम निस्पृह हमारे मन को पवित्र करो।

भावार्थ—जे विषयाभिलाषी शरीर के अनुरागी हैं ते आप ही

बूडि रहे हैं औरनि कूं कैसैं त्यारै ? अर जो विरक्त है, रागादिक तैं रहित हैं, ते तरण तारण समर्थ हमारे रागादिक मल हरि हमारे मन कूं पवित्र करो।

आगै कहै हैं वहुरि वै साधु कैसै है ?

॥ शार्दूलविक्रीडितछन्द ॥

दूरारुढतपोनुभावजनितज्योतिःसमुत्सर्पणै—
रन्तस्तत्त्वमदः कथं कथमपि प्राप्य प्रसादं गताः।
विश्रब्धं हरिणीविलोलनयनैरापीयमाना वने
धन्यास्ते गमयन्त्यचिन्त्यचरितैर्धीराश्चिरं वासरान् ॥२६०॥

अर्थ—अतिशय पर्यौ तपके प्रभाव तैं उपजी ज्ञानज्योति ताके प्रकाश करि वह निजात्म तत्त्व ताहि क्यौं ही प्राप्त होय करि अति आनद कूं प्राप्त भये है। अर विश्राम कू पाये है वन के जीव जिनतैं, हिरणी के चचल नेत्र तिनिकरि विश्वास सूं देखिए है। धन्य वे धीर जे चितवन मैं न आवै, ऐसे चारित्र तिनिकरि बहुत दिन वन विषै वितीति करै है।

भावार्थ—जे निज स्वरूप विषैं मगन होय करि परमशात दशा कूं प्राप्त भये हैं ते धन्य हैं। वन के जीव भी तिन सूं भय न करै सबनि कू प्रिय हैं।

आगै ऐसी बुद्धि उनकी कहा करै, सोई कहै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

यषां बुद्धिरलक्ष्यमाणभिदयोराशात्मनोरन्तर
गत्वोच्चैरविधाय भेदमनयोरारान्निभाम्यति ।
यैरन्तर्विनिवेशिता' शमघनैर्बाढं बहिर्व्याप्तय—
स्तेषां नोऽत्र पवित्रयन्तु परमा पादोत्थिताः पांशवः ॥२६१॥

अर्थ—जिनको बुद्धि जगत की आशा अर आत्मा दोऊनिके मध्य प्राप्त भई। कैसे है दोऊ, नांही लख्या जाय है भेद जिनिका, सो इन मुनिनिकी बुद्धि दोऊनिके मध्य प्राप्त होइ भलै प्रकार भेद किये बिनि विश्राम कू न प्राप्त भयो भेद किया ही कैसे है। ये महामुनि सांत भाव ही है घन जिनके, अर बाह्य पदार्थनि विषै चित्त की वृत्ति जाय भी सो जिनि अंतरग विषै थापी तिनके चरण कमल की परम रज या जग विषै कौन कौ पवित्र न करै ? सब ही कू पवित्र करै सो हमको पवित्र करहु।

भावार्थ—जड़ चेतन का अनादि सबंध है, एक स हाय रहे हैं, सबनि कू एक से प्रतिभासै हैं। जे महा पुरुष भेद विज्ञान करि दोऊनि कू न्यारे जानि जड़ सू निर्ममत्व होय जगत की आशा तजै हैं तिनके चरण कमल की रज तीननि कू पवित्र करै है।

आगै कहै हैं जे बाह्य वृत्ति का निरोध करि कर्म के फल कू भोगवै हैं तिनिके परिणाम की विशेषता की प्रशंसा करै हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

यत् प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृता कर्माशुभं वा शुभं
तद्दैवं तदुदीरणादनुभवन् दुःखं सुखं वागतम् ।
कुर्याद्यः शुभमेव सोप्यभिमतो यस्तूभयोच्छित्तये,
सर्वारम्भपरिग्रहग्रहपरित्यागी स वन्द्यः सताम् ॥२६२॥

अर्थ—जीव नै पूर्व जन्म विषै जे शुभ अथवा अशुभ कर्म उपार्जे तिन कर्मनि कूं दैव कहिये। तिनकी प्रेरणा तैं जीव सुख दुख भोगवै है। सो इनि जीवनि मैं जो अशुभ तजि शुभकौं आदरै सोऊ भला कहिए। अर जो योगीश्वर शुभ अशुभ दोऊनि ही के विनाशिवे अर्थि सर्व आरंभ परिग्रहरुप क्रूर ग्रह का त्यागी होय सो सत्पुरुषनि करि वदनीक है।

भावार्थ—जगत के जीव पाप विषैं प्रवीण हैं। कोई एक शुभ परिणामी दीखै है सोऊ भला कहिए है। अर जे शुभ अशुभ दोऊ ही तजि करि केवल शुद्धोपयोग रूप आत्म-स्वरूप विषैं तल्लीन हैं, तिनकी महिमा कौन कहि सकै? ते सत्पुरुषनि करि वदनीक हैं।

आगै कोऊ प्रश्न करै है कि सुख दुख कर्मनि के फल भोगवै हैं, तिनिके नवे पुन्य पाप बधते होहिंगे। तातैं दोऊनिका नाश कैसैं होइ? ताका समाधान करै हैं।

॥ शिखरणीछंद ॥

सुखं दुःखं वा स्यादिह विहितकर्मोदयवशात्
कुतः प्रीतिस्तापः कुत इति विकल्पाद्यदि भवेत् ।

उदासीनस्तस्य प्रगलति पुराणं नहि नवं
समास्कन्दत्येषः स्फुरति सुविदग्धो मणिरिव ॥२६३॥

अर्थ—सुख अथवा दुख होइ है सो पूर्वोपार्जित कर्म के उदय तैं होय हैं। सो जो कदाचि सुख विषैं प्रीति होय, दुःख विषैं आताप मानै तौ नवे कर्म अवश्य बंधै। अर जे महा पुरुष हर्ष विषाद न करै कौनसौं प्रीति करिये अर कौन की आतापकारी मानिये, ऐसे विचारतैं जे अति उदासीनता रूप हैं, तिनके पुरातन कर्म तो खिरै, अर नवे न बंधै, ते विवेकी महामणि की नांई सदा प्रकाश रूप ही हैं।

भावार्थ—कर्म का उदय जीवनिकै आवै है ता विषैं जो हर्ष विषाद करै सो नवे कर्म बंधै, अर जो हर्ष विषाद न करै तौ नव न बधै, पूर्व कर्म फल दे खिरिजाय यह निश्चय है।

आगे पुराने कर्म की निर्जरा विषैं अर नवे कर्म के संवर विषैं जो कह्या हुवा सो दिखावै हैं।

॥ मालिनीछंद ॥

सकलविमलबोधो देहगेहे विनिर्यन्
ज्वलन इव स काष्ठं निष्ठुरं भस्मयित्वा।
पुनरपि तदभावे प्रज्वलन्नुज्ज्वलः सन्
भवति हि यतिवृत्तं सर्वथाश्चर्यभूमिः ॥२६४॥

अर्थ—जैसैं अग्नि काष्ठ कूं सर्वथा भस्मकरि ताके अभाव

विषैं अति निर्मल प्रज्वलै, तैसैं निर्मलज्ञान देह गेहादिक का अभाव करि तिनिके अभाव विषैं विमल प्रकाश करै है। यती का आचरण सर्वथा आश्चर्य का स्थानक है।

भावार्थ—ज्ञान प्रगट भए गेह कौं तजि, देह सौं नेह तजै, सकल परिग्रह का त्यागकरि, वीतराग अवस्था धरि, ज्ञान ही निर्मल प्रकाश करै। मुनि की अलौकिक वृत्ति है। सो पूरणज्ञान मुनि ही कै होय, गृहस्थ कै अल्प होय।

आगै कहै हैं कि मुक्त अर ससार दशा जीव कै साधारण है। अर जे ज्ञानादि गुण के नाश करि मुक्ति मानै है तिनिकी श्रद्धा निराकरण करता कहै हैं।

गुणी गुणमयस्तस्य नाशस्तन्नाश इष्यते।
अत एवहि निर्वाणं शून्यमन्यैर्विकल्पितम् ॥२६५॥

अर्थ—गुणी कहिए आत्मा सो ज्ञानादि गुण मई है, ज्ञानादिक का नाश सो आत्मा का नाश। जैसे उष्णता के अभाव तैं अग्नि का अभाव। कई एक दीप के अत होने तुल्य निर्वाण मानै है सो निर्वाण नाहीं। ज्ञान की पूर्णता सोही मुक्ति है, द्रव्य है सो गुण मई है। गुण का नाश सो द्रव्य का नाश।

अजातोऽनश्वरोऽमूर्तः कर्ता भोक्ता सुखी बुधः।
देहमात्रो मलैर्मुक्तो गत्वोर्ध्वमचलः स्थितः ॥२३६॥

अर्थ—आत्मा कबहू उपज्या नाही। अर कबहू मरै नाहीं।

भर बाके कोऊ मूर्ति नांही अमूर्तीक है, व्यवहार नय करि कर्मनिका कर्त्ता है। निश्चय नय करि अपने स्वभाव का कर्त्ता है। अर व्यवहार नयकरि सुख दुःख का भोक्ता है, निश्चय अपने स्वभाव का भोक्ता है। अज्ञान करि इन्द्रिय जनित सुख कू सुख मानै है, निश्चय परम आनंदमयी है ज्ञान रूप है। व्यवहार नयकरि देह मात्र है, निश्चय चेतना मात्र है। कर्ममल रहित लोक के शिखर जाय करि प्रभू अचल तिष्ठे है।

भावार्थ—आत्मा केवल ज्ञानानंद मई है, सकल उपाधि रहित है। परंतु परकौं आपा मानि भ्रांति तैं सब मैं भ्रमै है। जब अपना स्वरूप जानै, तब निरुपाधि ज्ञान रूप अविनाशी होय तिष्ठे। आत्मा ज्ञान स्वरूप है।

आगै कोऊ प्रश्न करै है इन्द्रिय जनित सुख के अभावतैं कैसैं सिद्धनि कू सुखी कहै ? ताका समाधान करै हैं।

स्वाधीन्याद् दुःखमप्यासीत् सुखं यदि तपस्विनाम् ।
स्वाधीनसुखसंपन्ना न सिद्धाः सुखिनः कथम् ॥२६७॥

अर्थ—जो मुनिनि कै स्वाधीनपने तैं आप कलेश रूप दुःख हू सुख भया तौ सिद्धनि कू सुखी क्यों न कहिए। वे तौ सदा स्वाधीन सुख मई हो है।

भावार्थ—तत्वदृष्टि करि जगत के जीव दुःखी तिन मैं सम्यग्दृष्टी मुनि ही सुखी कहे तौ सिद्ध तौ केवल आनंद रूप ही है।

आगै ग्रंथ के अर्थ कूं पूर्णकरि ग्रंथ की आज्ञा प्रमाण जे प्रवर्त्तैं हैं तिनिकू फल दिखावै है।

॥ मालिनीछंद ॥

इति कतिपयवाचां गोचरीकृत्य कृत्यं
चरितमुचितमुच्चैश्चेतसां चित्तरम्यम् ।
इदमविकलमन्तः संततं चिन्तयन्तः
सपदि विपदपेतामाश्रयन्तु श्रियं ते ॥२६८॥

अर्थ—कै यक वचन की रचना करि उदार है चित्त जिनका ऐसे महामुनि तिनकै चित्तकौ रमणीक निर्दूषित इह आत्मानुशासन ग्रंथ भलै प्रकार रच्या है, सो महा पुरुषौं के गुण अंतःकरण कै विषैं निरंतर चिन्तवतैं शीघ्र ही आपदा सूं रहित अविनाशी लक्ष्मी पावै हैं।

भावार्थ—जो जैसा चिंतवन करै तैसा ही फल पावै। महापुरुषों के गुण चिंतवता आपहू शुद्ध होय। जैसैं सुगन्ध पुष्प के योग तैं तिलहू सुगध होय।

आगै कहै हैं कि ग्रंथ की समाप्ति विषैं ग्रंथ का कर्ता अपने गुरु के नाम पूर्वक अपनौ नाम प्रगट करै है।

जिनसेनाचार्यपादस्मरणाधीनचेतसाम् ।
गुणभद्रभदन्तानां कृतिरात्मानुशासनम् ॥२६९॥

अर्थ—जिन-सेना जो मुनि मंडली ताके आचार्य श्री गणधर देव तिनके चरण कमल के सुमरण विषैं आधीन है चित्त जिनका ऐसे गुणमि करि भद्र कहिए कल्याण रूप, मदंत कहिए पूज्य पुरुष, जैन के आचार्य तिनकी कृति है इह आत्मानुशासन। अर दूजा अर्थ जिन सेनाचार्य के चरण कमल तिनके स्मरण विषैं आधीन है चित्त जिनका ऐसैं गुणभद्र पूज्य तिनि करि किया है इह आत्मानुशासन का वर्णन।

भावार्थ—जिनवर की सेना के आचार्य सब मैं मुख्य गणधर देव हैं। तिनकी भक्ति विषैं है आसक्त चित्त जिसका, ऐसे गुणनि-करि भद्र कहिए कल्याणरूप मुनिराज जैन के आचार्य, तिनका भाख्या इह ग्रन्थ है। अथवा जिनसेनाचार्य का शिष्य जो गुणभद्र ताका भाख्या है। ए दोऊ अर्थ प्रमाण हैं।

आगे कहै हैं कि श्री ऋषभदेव तुमको कल्याण के कर्त्ता होहु।

ऋषभो नाभिसूनुर्यो भूयात्स भविकाय वः
यज्ज्ञानसरसि विश्वं सरोजमिव भासते ॥२७०॥

अर्थ—नाभि राजा के पुत्र श्री ऋषभदेव तुमको महा कल्याण के निमित्त होहु। जाके ज्ञान रूप जल विषैं सकल जगत कमल तुल्य भासै है।

❁ इति आत्मानुशासन शास्त्र संपूर्ण। ❁